श्रीभागवत—दर्शन :—

भागवती कथा

(द्वादश खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

—:※:—

लेखक:—
श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक
सङ्कीर्तन-भवन
प्रतिष्ठानपुर, झूसी (प्रयाग)

—:※:※:संशोधित मूल्य २-०० रुपया

तृतीय संस्करण] चैत्र, सं० २०२४ वि० [मूल्य १) ६५

मुद्रक—संकीर्तन प्रेस, वंशीवट वृन्दावन ।

विषय—सूची.

विषय द्वादश खण्ड पृष्ठाङ्क

सिंहावलोकन १ से १० तक

कीर्तनीयो सदा हरिः

सचित्र

भागवत चरित

(सप्ताह)

रचयिता—श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी

श्रीमद्भागवत के १२ स्कन्धों को भागवत सप्ताह के क्रम से ७ भागों में बाँटकर पूरी कथा छप्पय छन्दो में वर्णन की है। श्रीमद्भागवत की भाँति इसके भी साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पारायण होते हैं। सैकड़ों भागवतचरित व्यास बाजे तबले पर इसकी कथा कहते है। लगभग हजार पृष्ठ की सचित्र कपड़े की सुदृढ़ जिल्द की पुस्तक की न्यौछावर ६)५० मात्र है। थोड़े ही समय में इसके २३००० के ५ संस्करण छप चुके है। दो खंडों में हिन्दी टीका सहित भी छप रही है। प्रथमखंड प्रकाशित हो चुका है। उसकी न्योछावर ८) है। दूसरा खंड प्रेस में है।

सिंहावलोकन

सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् ।
सोऽयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥
(श्री भा० ११ स्क० २२ अ० ४४ श्लो०)

छप्पय

हैं नट नागर श्याम करें क्रीडा नित नूतन ।
मोर मुकुट सिर धारि बजावें बंशी वन वन ॥
जो न मोह वश करें कृष्ण तिन तैं करवावें ।
सबहिं नचावत राम कृष्ण नाचें नचवावें ॥
तुमरे संग इ नाचि कें, तुमरो ई गुन गाइ के ।
तुमरो कथा सुनाइ कें, सोवें सबहिं भुलाइ के ॥

यहाँ प्रतिष्ठानपुर (झूसी) में इसी अनुष्ठान के निमित्त आये दो वर्ष ६ महीने २३ दिन आज हो गये । संकल्प कुछ और किया था हो गया कुछ और । विनायक बनाना चाहते थे, बन गया वानर । वैरागी बनाना चाहते थे, बन गये व्यापारी । छिप कर

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"जिन लोगों की वाणी, बुद्धि और आयु व्यर्थ है वे ऐसी बात कहा करते हैं कि यह वही दीप की लौ है, जो हमने कल देखी थी । यह वह नदी का जल है यह वही मनुष्य है । किन्तु वास्तव में ये सब वे नहीं । ये तो बदलते रहते हैं ।"

रहना चाहते थे, छपाई के चक्कर मे फँस गये। ससार ने सभी सम्बन्धो की ओर से आँखें मीच लेना चाहते थे, अब अधिकाधिक सम्बन्ध बढाने की चिन्ता बढ़ गई। भगवान् की कैसी माया है, लीलाधारी की कैसी लीला है। क्षण क्षण पल पल पर प्रत्येक वस्तु बदलती जाती है, किन्तु हम ऐसे मूढ हैं, कि उसकी ओर ध्यान नहीं देते। समझते हैं यह वही तो है। ससार के परिवर्तन ऐसी चतुरता से होते हैं, कि सहसा कोई उनका अनुभव नही कर सकता। सर्वथा बदलने पर ही प्रतीत होता है सो भी स्वार्थ वश। जाडा सहसा नही आ जाता, गर्मी के अनन्तर वर्षा होती है, कुछ ठडी प्रतीत होने लगती है, फिर गुलाबी जाडा पडता है तदनन्तर कडाके का। जाडे का सहसा अन्त भी नही होता, पहिले कुछ कम सर्दी होने लगती है। गरम वस्त्र सहन नही होते, फिर वसन्त ऋतु आती है, तब आग बरसने लगती है। मनुष्य जिस दिन जाडा पडता है उस दिन तो कहता है बडा जाडा है, किन्तु दूसरे दिन भूल जाता है। सर्दी मे गर्मी को भूल जाता है, गर्मी मे सर्दी को। याद भी कहाँ तक रखे एकसा ही चक्र है, कभी ऊपर कभी नीचे। सादृश्य मे भ्रम हो ही जाता है। नित्य ही हम त्रिवेणी स्नान करने जाते हैं, कहते है—"कल यही इसी जल मे नहाये थे। किन्तु कल का जल तो न जाने कहाँ चला गया, कहाँ बह गया हमे भ्रम सादृश्य से हो गया। कल के ही जल के समान बहुत सा जल आ गया। कल जिस देवदत्त को देखा था, आज भी उसे देखकर हम कहते है—यह देवदत्त हैं, किन्तु कल के देवदत्त मे और आज के देवदत्त मे आकाश पाताल का अन्तर पड गया। उसके प्रत्येक अणु परमाणु मे परिवर्तन हो गया। हमे परिवर्तन की प्रतीति तब होती है, जब उसके ओठो पर कालिमा छा जाती है, दाढी मूछो वाला बन जाता है, या काली दाढी मूछें सफेद हो जाती हैं।

सो उसे तो वह भी परिवर्तन नही दीखता। वह समझता है मै तो जैसा का तैसा ही हूँ। इसमे सत्यासा है, किन्तु भ्रम परा उसके मर्म को नही समझता, सादृश्य के कारण भ्रम में पड़ जाता है। ससार एक नाटक है। सभी छोटे बड़े जीव इस जगत नाट्यस्थली के पात्र हैं। सूत्रधार जिसे जैसा नाच नचायेगा उसे वैसा ही नाच विवश होकर नाचना ही पड़ेगा। इसमे अपनी इच्छा कुछ भी काम न करेगी। स्मरण करने की एक ही बात है। हम स्वय नही नाच रहे है, हमें कोई नचा रहा है। इन शब्दो को वाणी से तो प्रायः सभी कहते है, किन्तु अन्तःकरण से इसका अनुभव विरले ही करते है, जो करते है, वे तर जाते है, इस खेल मे मिल जाते है, उन्हे बन्धन नही विषाद नही, दु.ख नही, चिन्ता नही। बन्शी वारे के साथ चैन की बन्शी बजाते है और तान दुपट्टा सो जाते है। इसलिए साधन यही है। "कृतंस्मर" किये हुए को स्मरण करो। प्रतिक्षण सिंहावलोकन करो। या तो अपनी कोई इच्छा हो ही नही या जो हो जाय, तो उसी की इच्छा मानी जाय।

जीव जब भगवान्‌के अनुकूल होता है; उनके संकल्पमें अपना संकल्प मिलाकर कार्य करता है, तब तो उसे सफलता प्राप्त होती है। इसके विपरीत जीव का संकल्प कुछ है, सर्वेश्वर का संकल्प इसके विपरीत है, तो जीव का संकल्प वृथा है-व्यर्थ है। वह सफल न होगा। क्योकि एक के ही संकल्प से यह सम्पूर्ण सृष्टि-कार्य चल रहा है। वही सत्य संकल्प सबके अन्तःकरण मे प्रविष्ट होकर हृदय देश में विराज कर सबको नाच नचा रहा है। सबको चक्कर फेरी दिला रहा है। पुनः पुनः स्मरण करने से दृढ़ता आती है। हम दिन में रात्रि मे कितने मनोरथ करें

कितने बालू के किले बनाते हैं। वे बात की बात मे बिगड जाते हैं, क्षण भर मे ढह जाते हैं। हम मुँह ताकते ही रह जाते हैं। जो विश्व की रचना करके उसके अणु परमाणु मे प्रवेश कर गया है, जिसने बनाने का, पालन करने का और फिर बिगाडने का स्वय ही अपने नाम पट्टा लिखा लिया है, फिर हम उसके कार्यों मे हस्तक्षेप करते है, दुख करते हैं, कि हमारी इच्छा के विरुद्ध यह कार्य क्यो हो रहा है ? हम तो इसे जीवित देखना चाहते थे, यह क्यो मर गया ? तो यह अनधिकार चेष्टा है। जो हो रहा है उसे देखो। जिसका जो काम है वह करेगा ही, वह होकर ही रहेगा। तुम तो सूत्रधार की ओर दृष्टि रखो। किये का स्मरण करो। उससे शिक्षा ग्रहण करो। अपनी परवशता और प्रभु की स्वतन्त्रता का अनुभव करो। अपने कर्तृत्व को उसके कर्तृत्व मे मिला दो। अपना स्वर पृथक् अलापने से बेसुरा राग हो जायगा। अपनी ध्वनि उसकी वशी की ध्वनि में मिला दो। अपनी वशी को भी उसकी वशी मे एकीभूत कर दो। वशी वाला तो एक ही है।

हाँ,तो मैं क्या कह रहा था भला ? वही बात,यहाँ आये ढाई वर्ष से अधिक हो गया। सोचा यह था कि यह नेह आँखो से ही विशेष बढता है। किसी की ओर हम चर्म चक्षुओ से देखें ही नही, तो अन्त करण की आँखो से उसका यथार्थ रूप देखा जाता है। ये चर्म की आँखें बाहर के काले गोरे चर्म को तथा बनावटी चाकचिक्य को ही देख सकती हैं। इसी से लुभा जाती हैं, फँस जाती हैं। यदि इनको मीचकर भीतर ही भीतर अनुभव करें तो यथार्थता का बोध होता है। यथार्थता मे तो बन्धन है ही नही। इसलिये ऐसा नियम करने का निश्चय किया था कि किसी की ओर देखेंगे नही। कथा कर्तन में समय बितायेंगे। जो

समय मिलेगा उसमे अपने लेखन के व्यसन की पूर्ति करेंगे।

बहुत से ऐसे भाग्यशाली हैं, जिन्हे भगवान् मे, कथा कीर्तन मे बडा रस आता है, तन्मय हो जाते हैं। मेरा हृदय ऐसी कठिन धातु का बना है, कि मुझे कथा कीर्तन मे यथार्थ रस नही आता मान-प्रतिष्ठा के लिये या नियम की पूर्ति के लिये कथा सुनता हूँ, कीर्तन करता हूँ, किन्तु उसमे जैसा चाहिये वैसा रस नही आता है। मिथ्याचार, दम्भ दिखावट की मात्रा इनमे अधिक है। फिर भी एक प्रकार का व्यसन सा हो गया है, इच्छा से अनिच्छा से करना ही पडता है। इसी प्रकार मुझे लिखने का भी व्यसन है। कुछ लोग कहते हैं—' महाराज, आप बडा उपकार कर रहे हैं। साहित्य की बडी सेवा कर रहे हैं, कथा कीर्तन का बडा प्रचार कर रहे हैं।" इन बातो को सुनकर मुझे अभिमान न होता हो, सो बात नही। किन्तु जब मैं गभीरतापूर्वक सोचता हूँ, क्या मैं सेवा भाव से, परोपकार की प्रेरणा से, प्रचार दृष्टि से यह सब कर रहा हूँ, तो उत्तर मिलता है नही। यह सब कुछ नही, तुम अपनी वासना-पूर्ति के लिये ये सब व्यापार कर रहे हो।

आज से २०, २५ वर्ष पूर्व मैं साहित्यिक जीवन व्यतीत करता था, उस समय जितने साहित्य सेवियों से मेरा ससर्ग हुआ, जिनके नामो को मैं बडी श्रद्धा से सुनता और पढता था, उनके जीवन मे अत्यन्त व्यावहारिकता और वृथा विषयोमे तृष्णा देखकर मैंने अनुभव किया कि लेखन एक कला है। सभी सुन्दर लेखक सच्चरित्र और आदर्श जीवन व्यतीत करने ही वाले हो, यह आवश्यक नही। इसके पूर्व मेरी यही धारणा थी, कि जिनके लेखों को पढकर हम रो उठते हैं वे सब के सब आदर्श महापुरुष ही होगे। पहिले मेरी लेखक बनने की प्रबल इच्छा थी। कुछ ही दिनों मे लेखक बनने की मेरी इच्छा जाती रही।

साधु बनने की इच्छा हुई। प्रकाशकों के प्रति मेरे कैसे हो गये थे, उन्हें मैं अब कभी न बताऊँगा। क्योंकि उसे प्रकाशक मुझसे बहुत अप्रसन्न हो जायँगे, फिर आज कल भी एक प्रकार से प्रकाशक ही बन गया हूँ! अपने ही हाथ अपने पैरों में कुल्हाड़ी क्यों मारूँ।

मैंने कई बार ऐसे बड़े बड़े नियम किये कि लेखनी से न लिखूँगा, लेख न लिखूँगा, पुस्तकें न लिखूँगा। किन्तु रहा नहीं गया, इसलिये अबकी मैंने निश्चय किया था—कि लिखूँगा, अवश्य लिखूँगा—किन्तु भगवत् और भागवत चरित्र लिखूँगा। लिखने का जब व्यसन ही है, तो उसका उपयोग भक्त और भगवान् के पावन चरित्रों के लिखने मे क्यों न किया जाय? इसीलिये "भागवती कथा" का लेखन आरम्भ हुआ। वास्तव में मुझे भगवान् और भगवत् भक्तों के सम्बन्ध मे लिखने मे लिखते समय आनन्द आता है। व्यवहार मे तो मुझे रहना ही पडता है। अन्य व्यावहारिक बातें भी विवश होकर लिखनी पडती हैं, किन्तु उनमे उतना रस नहीं आता। दूसरो का मन रखने के लिये व्यवहार बनाये रखने के लिये ये सब लिखनी ही पडती हैं। मुझे कोई लेखनी दे दे और एकान्त मे बैठने का समय दे दे। किसी से भी मिलने न दे, तो मैं निरन्तर लिखता ही रहूँगा। भगवत् चरित्र तो अनन्त है, उसका अन्त नही, अवसान नही, सीमा नही, समाप्ति नही। किन्तु संभव है ऐसे मैं रह भी न सकूँ। कुछ धूम धडाका भी होते रहना चाहिये। उत्सव धूम-धाम ये सब होते रहते है, तो मन बदल जाता है। कुछ कटु अनुभव होते हैं, कुछ स्नेही बन्धु मिलते हैं, ये सब तो चटनी हैं। भावोद्दीपक हैं।

हाँ, तो मैंने कार्तिक मास से भागवती कथा का लिखना आरम्भ किया। ६ महीने में ८-१० खड लिख भी गये। लेखक का लिखने मे उत्साह तभी बढता है, जब उस गुण को जानने वाले गुणी उसकी कृति की प्रशसा करें। अब इस कल के युग मे प्रशसा तो तभी होगी, जब पुस्तक प्रेस मे छपकर प्रकाशित हो और विद्वानो के सम्मुख जाय। इसलिये लेखक के साथ प्रकाशन की भी चिन्ता हुई। यह प्रशसा मेरे लिये दुखद थी, किंतु ससार मे सुख ही सुख तो नही मिल सकता। सुख मे दुख मिला ही रहता है। पाटल के पुष्प मे काँटे रहते ही हैं। कडवी औषधि के समान मैंने प्रकाशन के लिये प्रयत्न किया। कथा लम्बी है प्रकाशक कोई मिला नही। सबने कहा—सकीर्तन भवन से ही प्रकाशन हो।" वाद विवाद के पश्चात् मैंने कहा-'अच्छा हो।' बस, फिर क्या था होने लगा धूम धडाका। यह ला, वह ला, स्थान बना, उसे बुला, सराश यह कि पूरी गृहस्थी जुटने लगी। पास मे पैसा नही था। काम आरम्भ कर दिया, सभी काम ऐसे ही आरम्भ हुए और सब प्रभु के प्रताप से पूरे भी हुए। यही एक मात्र भरोसा था। जिस समय भागवती कथा का काय आरम्भ हुआ था, उस समय कागद की कतरन मिलनी दुर्लभ थी। बीच मे कितने कितने विघ्न आये। कितनी २ असुविधायें हुई। भगवान् ने व्यवहार की कैसी कैसी लीलायें दिखाई, ये सब बातें बडी लम्बी है, क्षुद्र हैं, व्यावहारिक हैं। कथा कीतन प्रेमी बन्धुओ को इनसे बचते ही रहना चाहिये। इसलिये इन सब बातो को मैं छोड देता हूँ। इतना ही कहना चाहता हूँ कि साल भर मे तो नही, डेढ साल मे हम पूरे १२ खण्ड निकाल सके। जिनकी ऐसी शङ्का थी, कि कहीं हमारे रुपये खटाई मे न पड जायें उनकी शङ्का निर्मूल हुई। १२ खण्डो के जितने रुपये उन्होने

दिये थे उनकी प्रतियाँ उन पर पहुँच गई । मुझे इस बात का हर्ष है कि इस ग्रन्थ को साधारण से लेकर बडे बडे विद्वानो तक ने सराहा । मुझे तो अपने किये का पारिश्रमिक मिल गया । अब मेरी पाठको के चरणो मे यही प्रार्थना है, कि वे ऐसा आशीर्वाद द जिससे यह ग्रन्थ पूरा हो जाय ।

मुझे ही इसके प्रकाशन का झझट करना पडता है, इससे मुझे वडी असुविधा है । यह नीरस और मेरी इच्छा के विरुद्ध कार्य भ ावान् ने मुझे क्यो सौंपा, इसे वे ही जान । अब तक तो वहुत ही असुविधायें रही । अब कुछ परिस्थिति अनुकूल आई है, अब हमे कागद प्रतिमास स्थाई मिल जायगा । प्रबन्ध का कार्य भी एक सज्जन ने अपने ऊपर ले लिया है । ५ हजार रुपये ऋण रूप मे उन्होने अगले खण्डो के लिये दिये है, इस प्रकार मेरी आधी से अधिक असुविधायें दूर हो गई । छपाई की उचित व्यवस्था होने पर प्रतिमास दो खण्ड निकाल सकें इसकी व्यवस्था कर रहे हैं । सम्भव है इस व्यवस्था मे हमे साल ६ महीने लग जायँ ।

स्थान स्थान पर इसकी कथायें होती हैं । नित्य ही वहुतो के पत्र आते हैं, आप समय से पुस्तक क्यों नही निकालते । क्या आपका हमारी उत्सुकता का अनुभव नही होता ? अब मैं कैसे कहूँ, कि मुझे अनुभव नही होता । लिखने वाले सज्जन यदि लेखक होते तो उन्हे पता चलता कि लेखक अपनी कृति को छपी देखनेके लिये कितना लालायित कितना उत्सुक रहता है । पाठको से अधिक प्रकाशन की उत्सुकता तो मुझे है । इस भागवती कथा के पीछे मेरा तो सब कुछ बदल गया । न जैसा पहिले भजन, पूजन, पाठ करता था वैसा भजन पूजन पाठ ही होता है । पहिले भगवन्नाम के अतिरिक्त कोई दूसरा शब्द मुख से निकलता ही

नही था। अब व्यवहार मे अत्यन्त तन्मय हो जाने के कारण बीच बीच मे बहुत से व्यावहारिक शब्द स्वत ही निकल जाते है, बुद्धि व्यवसायात्मिका हो गई है। फिर भी मेरी इच्छा है भागवती कथा का प्रकाशन बन्द न हो। प्रतिमास दो दो खण्ड प्रकाशित हो सकें। प्रभु को कराना क्या है उसे तो वे ही जानें। परोपकार की दृष्टि से नही, मुझे तो कथा कीतन को धूमधाम मे आनन्द आता है। सवत्र भगवन्नाम कीर्तन का प्रचार हो स्थान-स्थान पर अखण्ड कीर्तनो का आयोजन हो। सभी भाषाओ मे भागवती कथा की जाय। जहाँ जहाँ से भागवती कथा प्रकाशित हो वहाँ वहाँ अखण्ड कीर्तन भी हो। ५, ६ वर्ष पूर्व जब दक्षिण की यात्रा मे हम गये थे, गुटूर मे श्री रामनाथ क्षेत्र में श्री सीताराम मन्दिर में अखण्ड कीर्तन आरम्भ हुआ था। वह अभी तक चल रहा है। अब वहाँ से तेलगु मे भागवती कथा का अनुवाद भी प्रकाशित होने लगा है। प्रथम खण्ड छपकर हमारे पास आ गया है। १।) मे वे किसी प्रकार भी नही छाप सके। बिना जिल्द की २) और सजिल्द की २।) दक्षिणा उन्होने रखी है। हमे आशा है कि इसी प्रकार गुजराती, मराठी, बङ्गला, तामिल अग्रेजी आदि भाषाओ मे भी उसके अनुवाद निकलेंगे और साथ ही वहाँ अखण्ड कीर्तन का भी आयोजन होगा। करने कराने वाले वे ही प्रभु हैं, उनकी इच्छा के बिना पत्ता भी नही हिल सकता। अन्त मे मुझे पाठको से यही प्रार्थना करना है, कि यदि आपको भागवती कथा मे रस आता है, तो आप उसका आस्वादन अकेले न करें। मीठी वस्तु को बाँटकर खाना चाहिये। अपनी पुस्तक को दूसरो को पढने को दें। अपने आस-पास के रहने वालो को बुला कर मिल कर कथा सुनें। अपने इष्ट मित्रो को इसके स्थाई ग्राहक बनावें। जो समर्थ हो

वे अपने परिवार मे इस पुस्तक को अवश्य रखें। क्योंकि बच्चे कहानियों के लोभ से इन्हें पढ़ेंगे, तो उनके धार्मिक भावो की अभिवृद्धि स्वतः ही होगी। भारत धर्मप्रधान देश है। इसमे धर्म सिखाया नही जाता। यहाँ के जलवायु के कणों मे ऐसे भाव भरे हैं कि उनसे स्वयं धार्मिक प्रवृत्ति होती है। केवल प्राचीन आख्यानों से उन्हें जागृत करना है, स्मरण दिलाना है।

अन्त में मेरी सभी भाई बहिनो के चरणों में प्रार्थना है कि मैं लोहे का कोल्हू ही बना रहूँ कि जिसमें से निकले तेल से दूसरे तो लाभ उठायें, वह सूखाही बना रहे। मेरे हृदय मे भी सरसता का सचार हो, मुझे भी भागवत और भगवद्‌भक्तो की कथाओ में अनुराग हो। मेरी भी नामगान में यथार्थ रुचि हो। मैं भ भगवान् के लिये रोऊँ। मेरी भी फूटी आँखें गीली हों। मेरे भी शुष्क हृदय में प्रेम की टीस उठे। मेरा भी मन माधव की ह में सिहर उठे। बोल दे भक्त और भगवान् की जय।

छप्पय

हे हरि! कब ये नयन रहें मद महँ मदमाते।
श्रवण श्रवण कब करें कथा रस महँ सरसाते॥
कब होवे हिय द्रवित रूप रस महँ डूब्यो नित।
निरखि अलौकिक छटा छक्यो कब रहे कठिन चित॥
कब हौं घायल सो बन्यो हाय हाय डकराउँगो।
कब सब तजि हिय हुलसि के, वृन्दावन कूँ जाउँगो॥

ध्रुवजी का तपस्या के निमित्त बदरिकाश्रम गमन

(२४६)

आत्मस्त्र्यपत्यसुहृदो बलमद्धकोश-
मन्तःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः ।
भूमण्डलं जलधिमेखलामाकलय्य
कालोपसृष्टमिति स प्रययौ विशालाम् ॥*

छप्पय

आये निज पुर करे यज्ञ बहु वैभव वारे।
पुण्य भोगतें पाप यज्ञ तप त सब जारे॥
सुत, दारा, धन, धान्य जानि नश्वर सब त्यागे।
राज पुत्रकूँ सौंपि सतत तपमें ई लागे॥
करे सुकृत सब सुख लहे, फिरि ध्रुव वनवासी भये।
तजि सबरे गृह भोग सुख, बदरी वन कूँ चलि दये॥

ससारी भोग यदि सुख बुद्धि से आसक्त होकर भोगे जायँ तो वे बन्धन के हेतु हैं उनसे ससार का आवागमन और

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुर जी ! ध्रुवजी अपने शरीर स्त्री, पुत्र, मित्र, सेना, सम्पत्ति सम्पन्न कोश, अन्य पुर, रमणीय विहारभूमि तथा समुद्र ही है मेखला जिसकी ऐसी पृथिवी के राज्य आदि सभी को कालकवलित समझ कर या करने बदरीवन को चले गये।"

दृढतर होता जाता है, किन्तु यदि वे ही पुण्य क्षय करने
निमित्त , अनासक्त भाव से भगवत् प्रीत्यर्थ धर्मपूर्वक भो
जाँय तो उनसे पुनरावर्तन नही होता। वे क्षेत्र मे बोने प
भी उसी प्रकार वा अकुरित नही होते, जैसे भुने हुए दा
उर्वरा भूमि मे यत्नपूर्वक बोने पर भी उत्पन्न नही हो
उनमे अकुर नही फूटते। वर्णाश्रम धर्म त्यागमय है, इसमे प
पग पर त्याग की महत्ता है। बाल्यकाल मे गृह को त्यागक
गुरुकुल मे निवास करो। वहाँ भोगो को त्यागो, सुख को त्याग
मान अपमान को त्यागो, रात्रि दिन गुरु की सेवा करते हु
अपने मनोबल को त्यागते हुए महात्याग की तैयारी करने
लिये ज्ञानार्जन करो। फिर आकर दारग्रहण स्त्री का सग्र
करो। यह सग्रह भी भोग के लिये नही, त्याग के लिये। प
महायज्ञ नित्य प्रति करके सम्पूर्ण भूतो के निमित्त कुछ न कु
त्याग करो। देवता पितर तथा ऋषियो के ऋण से उऋण ह
यज्ञादिक करके देवऋण से श्राद्धतर्पण और पुत्रोत्पादन क
के पितृऋण से, और वेदाध्यन ज्ञानार्जन करके ऋषिऋण
उऋण होना पडता है। जब उऋण हो गये, पुत्र के भी पु
हो गया तो घर, स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, सम्पत्ति, नगर, परिवा
सभी को त्याग कर वनवासी वन जाओ। ग्राम्य अन्न व
भी न खाओ। वन के फल मूलो पर ही निर्वाह करो
किन्तु वहाँ भी यज्ञादि धर्म तथा काया को शोधन करने वा
तप का तो अनुष्ठान करते ही रहो। अन्त मे उन सबको त्या
कर महात्याग की दीक्षा ले लो। परिव्राजक बन जाओ। अलि
सन्यास, वीर सन्यास दण्ड सन्यास, जो जिसके भी अधिकारी
उसी को ग्रहण करके इस लोक को ही नही आवागमन के चक्र
को ही त्याग दो। अर्थात् त्याग की भावना को भी त्याग क

निर्मुक्त बन जाओ।

महामुनि मैत्रेयजी कहते हैं—' विदुरजी ! ध्रुव ने ५ वर्ष की आयु मे ही अपने पूर्व जन्मोपार्जित तप के प्रभाव से श्रीहरि का साक्षात्कार किया था। भगवत् दर्शनो से उनके वेदमय शङ्ख के स्पर्शमात्र से ही उन्हे समस्त वेदशास्त्रो का ज्ञान हो गया था, फिर भी लौकिक रीति से उन्होने वैदिक सस्कार कराके विधिवत् वेदाध्ययन किया। भ्रमि और इला नाम की दो नारीरत्नो के साथ विवाह किया। उनमे पुत्र उत्पन्न किये। समस्त भूमण्डल का धर्मपूर्वक एकछत्र शासन किया। ३६ हजार वर्ष तक बिना बूढे हुए सासारिक भोगो को भोगते रहे। यज्ञादि करके ससार मे अपना यश बढाया, समस्त कर्मो को करके उन्हे कृष्णार्पण करते हुए वे उनके फलो मे आसक्त नही हुए। जब उन्होने ज्ञान दृष्टि से देखा, कि अब मेरा अन्त समय निकट आ गया है तो वे राज्य भोग आदि, से उपराम हो गये। यदि भोगो मे उनकी आसक्ति होती, तो उन्हे छोड ही नही सकते थे, विवश होकर यदि छोडना पडता तो उन्हे महान् कष्ट होता, किंतु वे तो सब कार्य अनासक्त होकर करते थे। अत उन्हे इन ससारी पदार्थो का मोह त्यागने मे तनिक भी कष्ट नही हुआ। उन्होने समस्त सासारिक सुख ऐश्वर्य और राज्य को उसी तरह त्याग दिया जैसे सप अपनी केंचुली को त्याग देता है। उन्होने विचारा—'क्षत्रिय होकर मुझे घर पर खटिया पर पडे पडे इस शरीर को नही त्यागना चाहिये। क्षत्रिय की दो ही मृत्यु सर्वश्रेष्ठ बताई है, या तो धर्म युद्ध में लडते लडते सम्मुख शत्रु के द्वारा मारा जाय या बन मे जाकर योगाग्नि से इस शरीर को भस्म करदे।'

युद्ध मे तो उन्हे परास्त करनेवाला कोई भूमण्डल पर था ही नही, अत उन्होने उसी उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया,

जिसमें जाकर धर्मात्मा ब्रह्मर्षि राजर्षि फिर लौटते नहीं। जिस दिशा मे समस्त धर्मात्मा पुरुष अपने प्राण त्यागने के निमित्त अनादि काल से जाते रहते हैं।

अन्त समय समझकर उन्होने अपने पुत्र को भूमण्डल के चक्रवर्तिपद पर स्वय अभिषिक्त कराया और वे सबसे अनुमति लेकर विशालापुरी को जाने के लिए उद्यत हुए। "महाराज ध्रुव राज्य पाट छोड कर वदरीवन जा रहे है" यह बात बात की बात मे समस्त देशांतरो मे फैल गई। प्रजा के लोग जो उनके राज्य मे परमसुखी थे, जिनका ध्रुवजी अपने सगे पुत्रों की भाँति पालन करते थे वे उनके समीप आ आकर रोने लगे और कहने लगे–"प्रभो! आप हमारा त्याग न करें, इसी प्रकार सदा हमारा पालन करते रहे! अन्त.पुर की स्त्रियां भी रो रही थी, कि महाराज, हमे यहां न छोडें। बूढी माता ध्रुवजी के साथ चलने का आग्रह कर रही थी; किन्तु ध्रुवजी ने अपना चित्त सब की ओर से हटा लिया था। सबको सब प्रकार से समझा-बुझाकर समस्त प्रजा को रोती छोडकर वे अपने नगर से निकल पड़े इस सम्पूर्ण प्रपच को वे मन से मिथ्या और गन्धर्व-नगर के समान मिथ्या भासने वाला समझते हुए सब की ममता छोड़कर चल पडे। उन्होने भूमडल का समस्त राजपाट, सभी सासारिक सुखो को शरीर से ही नही मन से भी त्याग कर दिया था इन सब को त्याग कर मुमुक्षुओं की एकमात्र शरण्य, ऋषि मुनियो से सेवित श्री वदरीवन की पावन भूमि मे वे पहुँच गये जब विशालापुरी के निवासी ऋषि मुनि और सिद्धो ने सुना कि राजर्षि ध्रुव अपना राजपाट छोड़कर वदरिकाश्रम मे तप करने आये हैं, तो उन्होने वड़े प्रेम से ध्रुवजी का स्वागत सत्कार किया। उनकी कुशल पूछी कन्द मूल फल खाने को दिये और

भगवती अलकनदा के निकट एक शान्त एकान्त स्थान मे उनके लिये पर्णकुटी बना दी।

वहां पहुँच कर ध्रुवजी उसी प्रकार प्रसन्न हुए, जैसे कोई पिजडे का पक्षी बन्धन से छूट कर अरण्य मे जाकर प्रसन्न होता है, जैसे मछली अगाध जल मे पहुँच कर प्रमुदित होती है, जैसे कन्या सत्कुल मे पहुँच कर सुखी होती है। विशालापुरी की तपोमय भूमि मे उनका चित्त स्वत. ही शान्त हो गया था। उन्होने कलकलनिनादिनी समस्त अघसहारिणी, विष्णुपादाब्ज सभूता भगवती अलकनन्दा मे जाकर विधिवत् स्नान किया। फिर शुद्ध चित्त होकर कुश कास के बने आसन पर मृग चर्म और वल्कल-वस्त्र बिछा कर बैठे। तदनन्तर उन्होने प्राणो को जीतकर मन और इन्द्रियो का निरोध किया फिर अविच्छिन्न रूप से भगवान् के स्वरूप का चिन्तन करते करते समाधि मे ऐसे तल्लीन हुए कि उन्हें ध्याता ध्येय तथा ध्यान का भान ही न रहा। वे आनन्द के अथाह सागर मे निमग्न हो गये।

उस भक्ति की भावमय समाधि मे सदा भावित रहने के कारण उनके दोनो कमल नेत्रोसे निरतर प्रेमाश्रु बहते रहते थे। ज्यो-ज्यो आँखो मे आँसू बहते थे, त्यो-त्यो हृदय द्रवीभूत होता था।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! जब तक आँखो से प्रेमाश्रु नही बहते तब तक हृदय पिलघता नही। करुणा उत्पन्न नही होती। जिनकी आँखे सूखी रहती हैं, उनका हृदय भी प्राय· शुष्क तथा रूखा ही बना रहता है। ऐसे लोग ज्ञानाभासी भले ही बन जायँ, भक्ति से तो वे सदा दूर ही बने रहते हैं। हृदय जब पिघलता है, तो वही आँसू बन कर बाहिर आता है। कुछ ढोगी आँसुओ के स्थान मे अभ्यासवश मीड माडकर पानी निकाल लेते हैं, वे तो दम्भी है, उनकी मुखाकृति से ही स्पष्ट हो

जाता है, यह सब ढोंग है। हृदय के निकले हुए अश्रुओं का भी पाषाण-हृदय पर भी प्रभाव पड़ता है। हृदय तो हृदय की भाषा को समझ जाता है। ध्रुवजी की आँखें सदा प्रेमाश्रु ही बहाती रहती थी। उनके सम्पूर्ण शरीर मे रोमाञ्च हो जाते। फुरहुरी आते ही शरीर के रोम उसी प्रकार खड़े हो जाते जिस प्रकार कुपित हुई स्याही के शरीर में काँटे खड़े हो जाते हैं। अब वे प्रेम मे अपने आपको ऐसे भूल गये कि उन्हे इस बात का भी ध्यान नही रहा, कि मैं पहिले कभी राजा रहा था। मैं स्वायंभुव मनु का पौत्र तथा महाराज उत्तानपाद का पुत्र हूँ, मेरा नाम ध्रुव है। अब तो वे प्रेममय बन गये। भगवान् का ध्यान ही उनका सच्चा स्वरूप हो गया।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! इस प्रकार ध्रुवजी निरतर भगवान् के ध्यान मे मग्न रहने से देश काल अवस्था सभी से ऊपर उठ गये। वे भगवत् चितन मे तदाकार हो गये।

छप्पय

वदरीवन महँ जाय अलकनंदा में न्हाये।
ऋषि मुनि दीन्हे कन्द, मूल, फल तेई खाये॥
रहे तहा, ध्रुव करें साध्यहित नित प्रति साधन।
प्रेम भाव महँ मग्न निरन्तर हरि आराधन॥
परम प्रेम की सब दशा, स्वतः प्राप्त तिनकूँ भई।
द्रवित हृदय सागर बन्यो, आखें वर्षा बनि गईं॥

—※—

ध्रुवजी की ध्रुवलोक प्राप्ति

(२४७)

स ददर्श विमानाग्र्यं नभसोऽवतरद् ध्रुवः ।
विभ्राजयद्दशदिशो राकापतिमिवोदितम् ॥
परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं पार्षदावभिवन्द्य च ।
इयेष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्मयम् ॥*
(श्री० भा० ४ स्क० १२ अ० १६, २६ श्लो०)

छप्पय

इक दिन लख्यो विमान उतरतो नभते आवत ।
चकाचौंध सी करत छटा चहुँ दिशि छिटकावत ॥
अरुण कमलदल नेत्र निहारे पार्षद हरि के ।
करि प्रनाम ध्रुव उठे तुरत आये ढिंग उनिके ॥
ध्रुव ! जीत्यो हरिपद तुमनि, बोले नद सुनन्द तब ।
भेज्यो दिव्य विमान हरि, चढें करें नहिं देर अब ॥

जो भगवान् की शरण हो गया है, सब कार्य जो उन्हीं की प्रीति के निमित्त करता है, सदा उन्हीं का चिन्तन करता रहता

* महामुनि मैत्रेय कहते हैं—"विदुरजी ! एक दिन ध्रुवजी ने चन्द्रमा के समान दशों दिशाओं को आलोकित करता हुआ, एक श्रेष्ठ विमान आकाश से उतरता हुआ देखा (विष्णु पार्षदों के कहने पर) ध्रुवजी ने उस विमान श्रेष्ठ की वन्दना तथा प्रदक्षिणा करके भगवान् के नन्द सुनन्द दोनों पार्षदों को प्रणाम किया, और हिरण्मय स्वरूप धारण करके उस पर चढ़ने को उद्यत हुए।"

है, ऐसे अनन्य भक्त की भगवान् को भी स्वयं बड़ी चिन्ता होती है। वैसे पापात्मा पुण्यात्मा पुरुष को धर्मराज यम के दूत लेने आते है। पुण्यात्मा को सौम्य भाव से सौम्य रूप से ले जाते हैं, पापात्मा को विकट रूप से गर्जन तर्जन करते हुए, डराते धमकाते दुख देते हुए ले जाते हैं। जो भगवान् के भक्त हैं, उन्हें वैकुण्ठ के विष्णु पार्षद ले जाते हैं, किन्तु जो अनन्य हैं, उनको लेने के लिये या तो भगवान् स्वय आते है या अपने प्रधान पार्षद नन्द सुनन्द को भेजते हैं। वे भगवान् के प्रतिनिधि बन कर ही आते हैं।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! विशालापुरी मे ध्रुवजी बड़े आनन्द के साथ भगवत् ध्यान मे निमग्न रहते थे। एक दिन उन्होने ज्यो ही आँख खोलकर आकाश-मण्डल की ओर देखा त्यो ही सहस्र सूर्य चन्द्रमा के समान एक बड़ा ही देदीप्यमान प्रकाश उन्हे अपनी ओर आता हुआ दिखाई दिया। उसके अपूर्व आलोक से दशो दिशायें आलोकित हो रही थी। ध्रुवजी ने देखा यह तो दिव्य विमान है। दूरसे पहिले उन्हे कोई प्रकाशमान ग्रह सा दिखाई दिया, ज्यो ज्यो वह समीप उतरता आता था त्यो-त्यो उसकी वस्तुएँ स्पष्ट दिखाई देती जाती थी। अब ध्रुवजी को उसमे दो दिव्य पुरुप दिखाई दिये। कुछ और उतर आने प्रतीत हुआ वे दोनो चतुर्भुज हैं। गदा का सहारा लिये हुए खड़े हैं। उनका सुन्दर सुहावना सुगन्धियुक्त श्याम शरीर है। चारो भुजाओ मे शख चक्र गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। वे किशोरावस्थापन्न हैं। कमल के समान खिले हुए उनके बड़े बड़े रसीले नेत्र हैं। उनके वस्त्राभूपणो की चमक दमक से सम्पूर्ण विमान आलोकमय बना हुआ है। उनके मस्तक प मुकुट, कानो मे कुण्डल, गले मे हार, बाहुओं मे अगद और बाजू

बन्द शोभित हो रहे है। उनके दिव्य आभूषणो के चाकचिक्य से उनकी ओर देखना असह्य हो गया है। ध्रुवजी समझ गये ये भगवान् बैकुण्ठनाथ के प्रधान पार्षद हैं, अत वे सभ्रम के साथ उनका स्वागत करने के लिये जैसे बैठे थे वैसे ही उठ खडे हुए। वे प्रेम मे ऐसे विह्वल हो गये, कि उनकी पूजा मे पहिले पाद्य दिया जाय या अर्घ्य उन्हे इसका भी ध्यान नही रहा। बस, ये भगवान के है, उनके प्रधान पार्षद हैं अत बार बार 'जय जय श्रीकृष्ण' कह कहकर उन्हे गद्‌गद कण्ठ से सिर झुका कर बार बार प्रणाम करने लगे।

नन्द सुनन्द दोनो पार्षदो ने देखा—ध्रुवजी का चित्त श्यामसुन्दर के चरणारविंदो मे ही लगा हुआ है, उन्ही के जगन्मगल मनोहर नामो का वे निरन्तर उच्चारण कर रहे हैं। अत्यन्त विनीत होने के कारण जो हाथ जोडे सिर झुकाये दीन भाव से पार्षदो के सम्मुख खडे हैं। उनको ऐसी नम्रता को देखकर भगवान् के पार्षद अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और बडी ही मधुर वाणी से ध्रुवजी की प्रशसा करते हुए उनसे कहने लगे—राजन्! हम निखिल जगत्‌नियन्ता भगवान् शार्ङ्गपाणि श्री हरि के दूत हैं।

ध्रुवजी ने अत्यन्त विनीत भाव से कहा—"हे देवप्रवरो! आपके वेषभूषा और तेज प्रभाव से ही मैं समझ गया था, कि आप भगवान् के परम अन्तरङ्ग पार्षद हैं। आपने मेरे ऊपर किस कारण कृपा की, इसे यदि आप उचित समझे, तो मुझसे कहे।"

यह सुनकर मुस्कुराते हुए विष्णु पार्षदो ने कहा—महाभाग! हमे भगवान् ने इस विमान के सहित इसलिये भेजा है, कि हम आपको अत्यन्त सत्कार के सहित विष्णुपद ले आवें।"

ध्रुव ने आश्चर्य की मुद्रा प्रकट करते हुए कहा—"मेरे ऐसे

भाग्य कहाँ जो भगवान् ने मुझे इतना मान दिया है, मुझे इस प्रकार स्मरण किया है ?"

पार्षदो ने कहा—"महाराज ! ऐसी विनम्रता यह आपके अनुरूप ही है। आपने तो ५ वर्ष की अल्पावस्था मे अच्युत को प्रसन्न कर लिया था। जिस विष्णुपद को कोई भी नही जीत सकता उसे आपने ५ वर्ष की अवस्था होने पर केवल ६ महीने के तप से ही जीत लिया। राजन् ! वह विष्णुपद साधारण स्थान नही है। तीनो लोको को प्रकाश प्रदान करने वाले सूर्य चन्द्रमा भी जिनका आश्रय लेकर घूमते हैं। जितने ग्रह, नक्षत्र और तारागण हैं, वे भी सदा उसी की प्रदक्षिणा करते रहते हैं उस परम पद के आप अधीश्वर हो जायेंगे। आज से वह आपके नाम से विख्यात होगा। उसे अब सब लोग ध्रुवलोक या ध्रुवपद कहा करेंगे। उस तीनो लोक से वन्दित पूजित और सत्कृत लोक को तुम्हारे पिता पितामह भी प्राप्त नही कर सकते हैं, उसी पद का आज से आप अधिकार ग्रहण करें। इसी लिये स्वय भगवान् ने इस विमान को आपके लिये भेजा है और हमें आज्ञा दी है, कि हम आपको बडे सत्कार के सहित ले आवें। हे आयुष्मन् ! अब आप विलम्ब न करें, चटपट इस पर चढ जायँ और खटपट हम चल दें और झटपट उस पद पर पहुँच जायँ।"

इतना सुनते ही ध्रुवजी को वडी प्रसन्नता हुई। अब उन्हे महाप्रस्थान करना है इस पृथिवी मण्डल को सदा के लिये छोडना है, भगवान् के परम दिव्य विमान पर चढना है, अत. उन्होने शीघ्रता के साथ विष्णुपदी भगवती अलकनन्दा मे स्नान किया। फिर अपने नित्य कर्मों से निवृत्त होकर वदरीवनवासी ऋषि मुनियों के चरणो में जाकर प्रणाम किया और उनसे इस लोक

त्यागने की आज्ञा माँगी। ध्रुवजी की ऐसी बात सुनकर
पियो को हर्ष भी हुआ और ध्रुवजी से वियोग हो रहा है
lलिये दु ख भी हुआ। उन्होंने ध्रुवजी को प्रसन्न मन होकर
नेकों आशीर्वाद दिये। सब ऋषि मुनि ध्रुवजी के महाप्रस्थान
। देखने के लिये बडे कौतूहल के सहित विमान को चारो ओर
घेर कर खडे हो गये। दिव्य विमान भूमि का स्पर्श नही
रता। अत. वह अधर ही आकाश मे खडा था। दोनो ओर
द और सुनन्द अपनी अपनी गदा के सहारे से खडे थे। ध्रुवजी
ब उस पर चढने को उद्यत हुए।"

यह सुनकर विदुरजी ने पूछा-"भगवन् ! सभी लोग परलोक
ाण करते समय इस पाचभौतिक शरीर को त्यागकर दिव्य
क्ष्म शरीर से जाते हैं, तो क्या ध्रुवजी ने भी अपना मानुषीय
रीर त्याग दिया था ?"

इस पर हँसते हुए मैत्रेय मुनि कहने लगे—"विदुरजी !
न्होने भगवान् को अपने हृदय मे धारण कर लिया है उनका
यह शरीर चिन्मय बन जाता है। उसे छोडे, न छाडे, उनकी
च्छा के ऊपर निर्भर है। ध्रुवजी ने तो काल भी जीत लिया
नके भी सिर पर पैर देकर वे इसी शरीर से ध्रुवलोक को
ए।"

विदुरजी ने पूछा—"महाराज, काल के सिर पर पैर कैसे
या ?"

मैत्रेय मुनि ने कहा—"विदुरजी ! जब काल ने देखा ध्रुवजी
इस लोक के भोग समाप्त हो गये हैं वे परलोक प्रस्थान करने
उपक्रम कर रहे हैं, तब तो काल शरीर रखकर मूर्तिमान
कर काँपता हुआ ध्रुवजी के समीप आया। उसे सिटपिटाये

हुए खड़े देखकर ध्रुव ने पूछा—"कहो भाई! कुछ कहना चाहते हो? क्या बात है?"

डरते डरते उसने कहा—"प्रभो! आप भगवद्भक्त हैं, सुना भगवान् के भक्त मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते। वे सब का सम्मान करते हुए लोकमर्यादा को बनाये रखते है?"

ध्रुवजी ने हँस कर कहा—"भैया, सीधी तरह अपना अभिप्राय कहो। द्राविड़ी प्राणायाम क्यों कर रहे हो? तुम चाहते क्या हो?"

काल ने कहा—"महाराज! मैं सबका अन्त करने वाला काल हूँ। मेरा नाम मृत्यु है। पृथिवी के जो भी प्राणी परलोक जाते हैं, मुझे ग्रहण किये बिना कोई नहीं जाता। इसी लिये इस लोक का नाम मर्त्यलोक है। आपसे तो मैं कैसे कहूँ, मेरा साहस नहीं होता कि आप इस शरीर का त्याग करें, किन्तु लोकमर्यादा की रक्षा तो आपको करनी ही चाहिए। मेरा उपयोग आप करें, मुझे व्यर्थ न बनावें।"

यह सुनकर ध्रुवजी मुस्कराये और बोले—"अच्छी बात है भैया! तुम भी अच्छे अवसर पर आ गये। तुम्हारा भी मुझे सत्कार करना ही है। यहाँ विमान के पास बैठ जाओ, मैं अभी आता हूँ।"

मृत्यु बड़ा प्रसन्न हुआ कि भगवद्भक्त ने मेरा अपमान नहीं किया, वह इस आशा से बैठ गया कि ज्यों ही ये विमान पर आरूढ होंगे, मैं इनके शरीर में प्रवेश कर जाऊँगा, इनका यह पांच भौतिक शरीर मेरे अधीन होकर यहाँ निर्जीव पड़ा रह जायगा, ये दिव्य रूप से विमान पर चढ़कर चले जायँगे। इसी आशा से वह बैठा रहा।

इतने में ही ध्रुवजी सब ऋषिमुनियो को प्रणाम करके शीघ्रता से आये। विमान तो ऊँचा था। इसलिये झट से मृत्यु के सिर पर पैर रखकर फट से विमान मे चढ गये और चट से सर्र-सर्र करके उड़ गये। मृत्यु अपना सा मुँह बनाये देखता का देखता ही रह गया, कि ध्रुवजीने अच्छा मुझे सीढी बना लिया।

मैत्रेय मुनि कहते है—' विदुरजी ! भगवान् के भक्तो की ही ऐसी सामर्थ्य है, कि वे मृत्यु के सिर पर पैर रखकर चले जाते हैं, उसकी कुछ भी चिन्ता नही करते।"

इधर सुवर्ण के समान जाज्वल्यमान शरीर से विमान पर चढकर जब ध्रुवजी चलने लगे तब स्वर्गीय देवताओ ने उनके ऊपर नन्दनकानन के दिव्य पुष्पो की वृष्टि की। आकाश मे देवताओ द्वारा दुन्दुभि, मृदग, पणव आदि वाद्य बजाये गये। अप्सराये नृत्य करने लगी, गन्धर्व गाने लगे, सभी मिलकर ध्रुवजी का जयजयकार करने लगे।

जब ध्रुवजी विमान से स्वर्ग जा रहे थे, तो उन्हे अपनी माता का स्मरण हो आया और सोचने लगे—"जिस माता के सदुपदेश से मैंने भगवत् आराधना करके श्रीहरि का साक्षात्कार किया तथा दुर्लभ विष्णु पद प्राप्त किया, उस माता को मर्त्य-लोक में ही त्याग कर अकेले स्वर्ग जाना मेरा अनुचित है।" भगवान् के पार्षद तो सर्वज्ञ होते है, वे ध्रुवजी के मनोभाव को समझ गये और हँसते हुए बोले—"महाभाग ! आप चिन्ता न करे। जिसने आप जैसे नररत्न को उत्पन्न किया है वह मर्त्यलोक मे कैसे रह सकती है। यह देखिये ऊपर आपकी माता आपसे भी पहिले उसी लोक को दिव्य विमान से जा रही है।" इतना कहकर ऊपर जाते हुए सुनीति देवी के विमान को पार्षदो ने दिखाया। उसे देखकर ध्रुवजी को अत्यधिक प्रसन्नता हुई।

अब तो ध्रुवजी का विमान अत्यन्त वेग से ऊपर उड़ रहा था। वह सूर्य आदि ग्रहों को भी नीचे छोड़ता हुआ ऊपर जा रहा था, मार्ग में उपदेव देव, ऋषिमुनि ध्रुवजी का जयजयकार करते जिस लोक में होकर भी वे जाते वहीं उनका धूमधाम से स्वागत होता, मालायें पहिनाई जातीं और स्वर्गीय दिव्य पुष्पों की उनके ऊपर वृष्टि होती।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी, इस प्रकार ध्रुवजी सबके द्वारा सर्वत्र सत्कृत हुए, त्रिलोकी को पार कर गये। फिर सप्तऋषियों के मण्डल से भी ऊपर श्रीहरि के परमधाम विष्णुपद में जाकर वहाँ के अधीश्वर बनकर सुखपूर्वक रहने लगे।"

छप्पय

आज्ञा सबतें लई चढ़ूँ ध्रुव जिही बिचारें।
आयो तबई काल प्रभो ! मोकूँ स्वीकारें॥
बोले ध्रुव—'तू बैठि मान राखूँ तेरोऊ।
भक्त करें सत्कार चाहि आवे ढिग कोऊ॥
मृत्यु मूर्धिपद दै चढे, हरि विमान चट चलि दयो।
अपनो सो मोहड़ो करयो, मृत्यु खिस्यानो रहि गयो॥

—❁—

ध्रुवजी का महत् माहात्म्य

(२४८)

नूनं सुनीतेः पतिदेवताया—
स्तपः प्रभावस्य सुतस्य तां गतिम् ।
दृष्ट्वाभ्युपायानपि वेदवादिनो—
नैवाधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः ॥*
(श्रीभाग० ४ स्क० १२ अ० ४१ श्लो०)

छप्पय

ध्रुव जीत्यो हरि धाम जाइ नहिँ पापी पावें ।
समदरसी शुभ शान्त शुद्ध जन ई जहँ जावें ॥
देव हु जिनके परम पुण्य को पार न पावे ।
गुरु हु गुरुता त्यागि शिष्य गुन गौरव गावें ॥
धन्य धन्य ध्रुव धन्य तव, जननी मातु सुनीति है ।
धन्य हृदय तुव जासु महँ, प्रभुपद पङ्कज प्रीति है ॥

जिन पर प्रभु प्रसन्न हो गये, उन्हे फिर ससार मे प्राप्य पदार्थ कौनसा रह गया । जिन्होने प्रभुप्रेम को प्राप्त नही किया उन्होने

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—' विदुरजी ! ध्रुवजी के प्रभाव का गान करते हुए उनके गुरु नारदजी ने कहा है, कि निश्चय ही सुनीति देवी अपने पति को देवता मानने वाली थी । जिनके पुत्र ध्रुवजी को उनकी तपस्या के फल से वह गति प्राप्त हुई जिसे भागवत धर्मो के जानने वाले वेदवादी मुनि भी प्राप्त नही कर सकते, फिर इन नरपति राजाओ की तो बात ही क्या है ?"

प्राप्त ही क्या किया। वे पुरुष धन्य हैं, उन्ही की माता यथार्थ मे माता कहलाने योग्य है, उन्ही का जग मे जीवन सफल है, उन्ही के पुरुषार्थ को पुरुषार्थ कहा जा सकता है जिन्होने अपने भक्तिभाव से भगवान् को प्रसन्न कर लिया है, उनका कृपा प्रसाद प्राप्त कर लिया है वे ही वन्दनीय, पूजनीय और प्रात. स्मरणीय हैं, उनकी पवित्रता से ही यह जग अपावन होने पर भी पावन बना हुआ है, उनके विमल चरित्रो से ही दु खमय ससार सुखमय बन गया है।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! ध्रुवजी के भाग्य को जितनी सराहना कीजिये, उतनी ही कम है, क्योकि उन्होने उस अक्षय विष्णुपद को प्राप्त किया जिसे वेदवादी मुनि भी अत्यन्त कठिनता के साथ अनेक जन्मो मे प्राप्त कर सकते हैं, फिर पुण्यहीन तपस्या और सत्कर्मों से रहित साधारण लोगो की तो बात ही क्या, वे शरीर से कौन कहे मन से भी उस लोक की कल्पना नही कर सकते। उस ध्रुवलोक को प्रकाश के लिये सूर्य चन्द्रादि ग्रहो की अपेक्षा नही वह स्वय ही अपने प्रकाश से प्रकाशित है। यही नही उसी के प्रकाश से त्रिलोकी मे प्रकाश फैला हुआ है। सूर्य चन्द्र उन्ही का आश्रय लेकर चक्कर काटते रहते हैं। उसमे कृष्णार्पण बुद्धि से निरन्तर शुभकर्म करने वाले पुरुष ही जा सकते हैं जो अन्य हिंसक, निर्दय, अशुचि, पापी प्राणियो के लिये दुर्विज्ञेय है, जिसमे समदर्शी, शात, शुद्ध, सरल अन्त.करण वाले, सर्वोपकारी, सभी के हित मे निरत रहने वाले ही रहते हैं, उस ध्रुवलोक की जितनी प्रशसा की जाय, उतनी ही न्यून है। उस लोक को सुनीतिनन्दन महाराज उत्तानपाद के यशस्वी भगवत्परायण परम भागवत पुत्र ध्रुव ने ही प्रभु की प्रसन्नता से प्राप्त किया। वह लोक तीनो लोको का

मुकुटमणि है, निर्मल चूडामणि स्वरूप है। अन्न मीजते समय जो गेहूँ की लाई मे जब बैलो की दाँय चलाते है, तो बीच मे एक खूँटा गाड देते हैं। उसी के आस-पास बैल घूमते रहते हैं। इसी प्रकार ध्रुवजी समग्र ग्रह, नक्षत्र तथा तारागण के मेढी भूत हैं। उनके सहारे ही ये सब घूमा करते है। यह सम्पूर्ण ज्योतिश्चक्र ध्रुव के ही सहारे स्थित है। ध्रुवजी आज भी आकाश मे अपनी माँ सुनीति के सहित सबके उत्तर दिशा मे दिखाई देते हैं। ध्रुवतारे समीप ही उनकी माता सुनीति का भी तारा स्पष्ट दिखाई देता है, वे निरन्तर अपनी भगवद् भक्ति के प्रकाश से प्रकाशित होते रहते है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! हम पीछे ही बता आये हैं कि जो कोई परम महत्व का कार्य करता है, उसकी पूजनीय और सम्माननीय गुरुजन भी सम्मान करते हैं, उन्हे बडाई देते हैं। देखिये भक्त भगवान् के दर्शन को जाता है, किन्तु भगवान् स्वय मधुवन मे ध्रुवजी के दर्शनो के निमित्त आये। पुत्र पिता को आगे से लेने जाता है, किन्तु महाराज उत्तानपाद स्वय अपने सुत को स्नेहवश आगे से लेने गये। शिष्य गुरु के गौरव और गुणो का गान करता है, किन्तु प्रचेताओं के सत्र मे गुरुओ के भी गुरु स्वय भगवान् नारद ने अपने शिष्य ध्रुव के गुणो का गान किया था। हरिगाथा के साथ ही साथ हरिदास ध्रुव के भी महत्व का बखान किया था।

इसे सुनकर विदुरजी बोले—"भगवन् ! देवर्षि नारद ने प्रचेताओ के यज्ञ मे किस प्रकार ध्रुव के गुणो का गान किया था, इस बात को विस्तार के सहित बताइये। इसे सुनने की मेरी बडी इच्छा है। ध्रुव के चरित को सुनते सुनते मेरी तृप्ति ही नही होती।"

यह सुनकर भगवान् मैत्रेय बोले—"विदुरजी ! प्रचेताओं ने अपनी राजधानी ब्रह्मावर्त मे ब्रह्मातट पर एक बड़ा भारी सत्र किया था। उस मे हरिगुणगान करने को स्वर्ग से गन्धर्व आये थे। उसी समय में भगवान् नारद जी ने भगवान् की महिमा गाते गाते प्रसङ्गवश अपनी वीणा जो बजाते हुए ध्रुव के सम्बन्ध मे यह गायन किया था। जिसे सुनकर सभी सभासद चकित तथा विस्मित हो गये थे। नारद जी ने अलाप भरकर यह गायन किया था—

(१)

सुनीती धन्य जगत के माही।
जिनके लाल भक्त चूडामणि कोऊ जिन सम नाही॥
क्रोधित सुत समझायो सब विधि सच्ची सीख सिखाईं।
शिक्षा पाइ गये ध्रुव वनकूँ, अति मनमहँ हरषाईं॥
जप व्रत साधे प्रभु आराधे, बन की मेवा खाई।
हरिपद पायो रोप गँवायो, लखि ध्रुव सुरदि सिहाईं॥

(२)

धन्य ध्रुव भक्तनि के सिर मौर।
सौतेली माँ वागवाण ने वेध्यो हियो कुठौर॥
क्रोधित ह्वै वनकूँ चलि दीन्हे छोड़ी पितु की पौर।
बालक ह्वै हरि हियमे धारे,तजी आश जग और॥
मधुवन गये मामि मेरी सिख, हरिजू आये दौर।
दुर्लभ पद पायो जिहि जगमहँ पाइ सकै नहिं और॥

नारद जी अपने शिष्य का गुन गाते हुए कहने लगे—देखो —"जगत की समस्तललनाओ मे परम पति परायणा श्री सुनीति देवी ही हैं, जिनकी कोख से ध्रुवजी जैसे परम भगवद्भक्त

नररत्न उत्पन्न हुए। ध्रुवजी ने अपनी अल्प कालीन तपस्या के प्रभाव से जो उत्तमोत्तम गति प्राप्त की उसे बडे बडे सदाचारी, व्रतधारी ब्रह्मचारी वेदपाठी भी पाने मे असमर्थ है, फिर निरन्तर विषय भोगो मे ही फँसे रहने वाले राजाओ की तो बात ही क्या। ध्रुवजी की अवस्था ५ ही वर्ष की थी, इस छोटी सी ही अवस्था मे सौतेली माता के वाग्बाणो से विद्ध होकर माधव को प्रसन्न करने मधुवन चले गये। मेरे उपदेश के अनुसार उत्तम उपासना की, जिसके द्वारा भक्तो के गुणगान से ही जीते जाने वाले उन अजेय अच्युत को अपने अधीन कर लिया। आश्चर्य की बात तो यह है, कि केवल ५ वर्ष की ही अवस्था मे और बहुत तपस्या भी न करके केवल ६ महिने मे भगवान् को प्रसन्न कर लिया और प्रसन्न करके वह पद पाया जिसे अन्य क्षत्रिय असख्यो वर्ष तपस्या करने पर भी सम्भव है प्राप्त न कर सके।" इस प्रकार ध्रुव का यशोगान करके नारद जी प्रचेताओ के सत्र से स्वेच्छापूर्वक चले गये।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! आपने मुझसे महाभागवत, साधु पुरषो के अग्रणी परमयशस्वी ध्रुवजी का चरित्र पूछा था, उसे मैंने अत्यन्त सक्षेप मे आपके सम्मुख सुना दिया। अब आप और क्या पूछना चाहते है ?"

विदुरजी ने कहा—'महाराज! इस ध्रुव चरित्र श्रवण का माहात्म्य और सुना दीजिये, जिससे श्रोताओ की इसके श्रवण मे रुचि हो, गान करने मे प्रीति हो, और माहात्म्य सुनकर हृदय मे उत्साह हो।"

इस पर शौनकजी बोले—"महाभाग विदुरजी! भक्तो के चरित्र के माहात्म्य का वरान करने की शेष शारदा की भी शक्ति नही, फिर मैं तो एक साधारण पुरुष हूँ। ध्रुवजी का चरित्र धन

धान्य, पुत्र पौत्र यशकीर्ति को देने वाला तथा आयु को बढ़ाने वाला है। यह परम प्रशसनीय पापनाशक और पावन है, सुनने से स्वर्ग तथा ध्रुवलोक की प्राप्ति कराता है, प्रभुपादपद्मो में प्रीति बढाता है, यह चरित्र विद्यार्थियों की विद्या की, धनार्थियों के धन की, पुत्रार्थियो के पुत्रो की, मनस्वियो के मान की, तपस्वियो के तप की, यशस्वियो के यश की वृद्धि करने वाला है इसके श्रवण मात्र से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं।"

विदुरजी ने पूछा—"महाराज इसे कब सुने ?"

मैत्रेय मुनि बोले—"इसके सुनने का कोई नियम नही। जब भी अवसर हो तभी सुने। प्रात.काल सुने, सायंकाल सुने, रात्रि में सुने, दिन में सुने। ब्राह्मण और द्विजातियो के समूह मे सुने, सुनावे, गावे गवावे। दृष्टान्त दे उनके गुणों का कीर्तन करे।"

विदुर जी बोले—"महाराज, रोज सुनने का अवसर न मिले तो ?"

मैत्रेय मुनि बोले—"तो क्या ? जब भी समय मिले तभी सुने। पूर्णिमा, अमावस्या, एकादशी, द्वादशी, श्रवण, नक्षत्र, क्षयतिथि, व्यतीपातयोग, संक्रान्ति आदि को सुने।"

विदुरजी ने पूछा—"महाराज, पूर्णिमा अमवस्या को अवकाश न मिले, किसी कार्यालय में काम करने जाना पड़ता है तो किस दिन सुने ?"

मैत्रेय मुनि बोले—"तब अवकाश के दिन रविवार को सुने। रविवार सातो दिनो मे श्रेष्ठ है। सुनने की अपेक्षा जो लोगो को इकट्ठा करके निष्काम भाव से सुनाता है, उस पर तो भगवान् इतने प्रसन्न होते हैं, कि उसे अपना आपा दे देते हैं, उसके अनुचर बन जाते हैं। उसके सभी मनोरथ स्वतःसिद्ध हो जाते हैं।"

मैत्रेय मुनि अत्यन्त हर्ष के साथ कहने लगे—"विदुरजी! तुम भी बडे भक्त हो, इसीलिये मैंने तुम्हे इस छोटे से मुनुमुना से वालक भक्त ध्रुव का चरित्र सुना दिया। भगवान् तुम्हारा कल्याण करें, मङ्गल करें, तुम्हारे कारण मेरी भी वाणी पवित्र हो गई। लिखने वाले की लेखनी धन्य होगी और सुनने वालो के कान पवित्र होगे बोलिये, और आप क्या सुनना चाहते हैं।"

छप्पय

अति पवित्र यह चरित जाहि जे निशिदिन गावें।
ते निश्चय ई पुरुष प्रेम प्रभुपद को पावें॥
जे श्रद्धाते पढे सुनें पढि सबनि सुनावें।
पाइ परम पद पुण्य जगत महँ नहिं फिरि आवें॥
वाल सुलभ क्रीडा तजी, तप करि अक्षय पद लह्यो।
उन ध्रुवजी को विदुर! यह,विमल चरित तुमते कह्यो॥

—※—

ध्रुवजी के वंश का वर्णन

(२४६)

के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत।
कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रमासत ॥*
(श्रीभा० ४ स्क० १३ अ० २ श्लोक)

छप्पय

अति आनन्दित भयो विदुर वर बोले बानी।
भगवन्! ध्रुवकी कही, कलित कमनीय कहानी॥
कहो, प्रचेता कवन कहाँ शुभ सत्र रचायो।
कैसे नारद जाइ वहाँ ध्रुव को गुन गायो॥
सुनि अति पावन प्रश्नकूँ, हँसि बोले मैत्रेय मुनि।
भये प्रचेता वंश ध्रुव, ताको बरनन विदुर! सुनि॥

जिस कुल मे एक भगवद्भक्त हो जाता है वह कुल का कुल परम पावन बन जाता है। जिस देश मे परम भागवत उत्पन्न हो जाता है, वह देश पवित्र तीर्थ हो जाता है। भक्त को उत्पन्न

* विदुरजी मैत्रेय मुनि से पूछते हैं—' भगवन्! पीछे आपने कहा था प्रचेताओं के यज्ञ में नारदजी ने ध्रुव के यश का गान किया था। तो वे प्रचेता कौन थे, किन के पुत्र थे? किस वंश मे उत्पन्न हुए थे? उन्होंने कहाँ यज्ञ किया था? इन सब बातों को कृपा करके आप वर्णन करें।"

करने वाली माता धन्य है, वह कुल धन्य है, वह वसुन्धरा प्रशसनीय है और वे पुरुष धन्य हैं जो भक्तों के कुल मे उत्पन्न होते है। श्रेष्ठत्व के कई कारण हैं। बहुत से विद्या से श्रेष्ठ होते हैं, बहुत से तप से, बहुत से शुभ कर्मो से, बहुत से ऐश्वर्य से, बहुत से धनजन आदि विभव से। किन्तु इन सब से उत्तम श्रेष्ठत्व उत्तम कुल का जन्म माना जाता है। धन आज है, कल नष्ट हो गया। ऐश्वर्य की भी यही दशा है तप और शुभ कर्म भी बुरे कार्य करने से नष्ट हो जाते है। यश भी अपयश के रूप मे परिणत हो जाता है, किंतु जिस कुल मे जन्म लिया है, उसका गौरव तो शरीर के अत होने तक बना रहता है। स्वय बुरे कर्म करने पर भी लोग कुल को नही भूलते इसलिए पूर्व युगो मे कुलीनता का बडा आदर किया जाता था। अकुलीन गुणी भी हो, तो लोग उसका उतना आदर नही करते थे जितना कुलीन गुणहीन का, क्योंकि वाह्य गुण न रहने पर भी उसका जो कुलागतशील है, वह तो नष्ट नही होता। कलि-काल मे तो कुलीनता रहती ही नही। लोग यश, ऐश्वर्य और धन के ही कारण श्रेष्ठ माने और जाने जाते है।

ध्रुवजी के अत्यत पवित्र चरित्र को सुनकर नैमिपारण्य निवासी मुनिगण अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। वे सब सूतजी की प्रशसा करते हुए बोले—"महाभाग। सूतजी! आपकी वाणी ही बडी मधुर है। कथा कहने की प्रक्रिया आपने अपने पिता से भली भाँति सीख ली है। आप कथा मे ऐसे सरसता के सम्पुट लगाते जाते हैं, कि चित्त ऊबता ही नही। अधिकाधिक उत्सुकता बढती ही जाती है। महाभाग विदुरजी ने पुण्यश्लोक महामहिम श्री ध्रुवजी के चरित्र के अनन्तर मैत्रेय मुनि से कौन-सा प्रश्न किया, कृपा करके आप हमे उस आगे के प्रसङ्ग को

सुनाइये। उन दोनो परम भागवतो मे जो संवाद हुआ होगा, वह अत्यत ही परम पावन पापनाशक और भक्तिवर्धक होगा। कृपा करके आप यहीं कथा का विराम न कर दें आगे इस प्रसङ्ग को चालू ही रखें।"

इतना सुनते ही सूतजी बोले—"मुनियो ! मैं तो आप लोगो को पाकर कृतार्थ हो गया। भगवत् कथाके प्रति इतनी तन्मयता इतनी उत्सुकता तो हमने आज तक किसी मे देखी नहीं। हे पवित्र कीर्ति वाले मुनियो ! मैं आपको आगे की कथा सुनाता हूँ, आप सव समाहित चित्त होकर श्रवण करें। महाभागो ! जब महामुनि मैत्रेयके मुखसे महामहिम्न ध्रुवजी का चरित्र विदुरजी ने सुना, तो उनके रोम-रोम खडे हो गये। तथा उनके हृदय मे भगवान् वासुदेव की भक्ति का उद्रेक हो आया। ऐसी प्रेम ही की नशा मे प्रसङ्गान्तर न होने पावे और कथा ज्यो की त्यो चालू रहे, यही सोच विचारकर उन्होने मैत्रेय मुनि से पूछा—"ब्रह्मन् ! आपने कहा था कि, प्रचेताओ के यज्ञ मे नारदजी ने ध्रुवजी के गुणो का गान किया था, तो कृपा करके यह बताइये कि ये प्रचेता कौन थे ? इनका जन्म किस वश मे हुआ था और इन्होने कहाँ पर यज्ञ किया था ?"

इतना सुनते ही मैत्रेय मुनि हँस पडे और बोले—"विदुर जी ! आप वया कथा के बडे रसिक है। कैसा प्रश्न कर दिया। इस प्रश्न मे तो अनेक कथाओ का समावेश हो जाता है। ये प्रचेतागण ध्रुवजी के ही वश मे हुए थे।"

इतना सुनते ही विदुरजी बोले—"भगवन् ! मुझसे महाभागवत् श्री ध्रुव के वश का वर्णन करें। उनके वश मे जो जो भी राजर्षि श्रेष्ठ पुरुष हुए हो, उनके उदार चरित्रो का आप बखान करें। ध्रुव के वश मे जो हुए होगे, वे साधारण लोग न

होंगे। वे तो भगवान् के अशावतार कलावतार ही होंगे। ऐसे पवित्र चरित्र पुरुषों का यश श्रवण से श्रवण पवित्र होते हैं।"

विदुरजी के प्रश्न को सुनकर मैत्रेयजी ध्रुव की कथा के ही प्रसग को चालू रखते हुए कहने लगे। *महाभागवत विदुरजी!* यह तो मैं पहिले ही आपको बता चुका हूँ कि मनु पुत्र महाराज उत्तानपाद के ध्रुव और उत्तम नामक दो सुत हुए, उत्तम तो बिना विवाह किये ही यक्षों के हाथ से मारे गये। इसलिए उनका वश तो चला नही। ध्रुवजी का वश आगे चला। उसी वश का वर्णन प्रचेताओं के यज्ञ मे श्री नारदजी ने किया था।

इस पर विदुरजी बोले—"महाराज! जिस वश का वर्णन देवर्षि भगवान् नारद ने किया हो, वह वश अवश्य ही श्लाघनीय होगा। क्योंकि नारदजी कोई साधारण ऋषि तो हैं नही। वे तो भगवान के अशावतार ही है, वे निरन्तर वीणा बजाते हुए विश्व के निमित्त चौदह लोकों मे घूमा करते है। उनसे बढ़कर ससारमे भागवत कौन होगा, जिन्होने पाचरात्र आदि शास्त्रों का निर्माण किया है, उनमे भगवान् की पूजा पद्धति–क्रिया योग का—निरूपण किया गया है। प्रचेताओ के बड़े भाग्य थे जो नारदजी ने आकर उनके यज्ञ मे उनके वश का वर्णन किया, ध्रुवजी के गुणो का गान किया। नारदजी ने ध्रुवजी के वश वर्णन के प्रसग मे जिन गुप्त भगवच्चरितो का वर्णन किया हो, उन सबको आप मुझे विस्तार के साथ सुनावें। आपके मुख से कथा सुनते सुनते मेरी तृप्ति नही हो रही है।"

विदुरजी के इस चातुरी के साथ किये हुए प्रश्न को सुनकर मैत्रेय मुनि कहने लगे—"व्यासनन्दन विदुरजी! यह तो मैं पहिले ही बता चुका हूँ कि ध्रुवजी की इला और भ्रमि नाम की दो रानियाँ थी। इला के गर्भसे उत्कल नामक पुत्र हुआ और

भ्रमि के गर्भ से वत्सर नामक दो पुत्र हुए। नियमानुसार राज्य सिंहासन पर उत्कल का ही अधिकार था। इसीलिये ध्रुवजी उन्हें ही राज्यसिंहासन देकर वन को चले गये। पिता के सम्मुख तो उत्कल जी ने कुछ आपत्ति की नहीं, क्योंकि पिता साक्षात् तीर्थस्वरूप देवता हैं, उनकी आज्ञा माननी ही चाहिये। किन्तु उनके जाने के पश्चात् उनकी राज्य करने की इच्छा नहीं हुई, अतः वे ऐसे अडबड कार्य करने लगे, कि सब प्रजा उनसे घृणा करने लगी।

इस पर विदुरजी ने पूछा—"महाराज! परम भगत ध्रुव जो के साक्षात् और सुपुत्र उत्कल जी ऐसे लोक विरुद्ध कौन से कार्य करते थे, जिससे समस्त प्रजा उनके विरुद्ध हो गई। वे ऐसे क्रूर कर्मा क्यों हुए।?"

इस पर मैत्रेय मुनि ने कहा—"विदुरजी! शास्त्रकारों का सिद्धान्त है, कि पवित्र धर्मात्मा श्री लक्ष्मी-सम्पन्न परिवार में योगभ्रष्ट पुरुष आकर जन्म लेते हैं। जैसे ध्रुवजी भी योगभ्रष्ट थे, उनके पुण्य अधिकशेष थे, अतः वे पृथिवी का शासन भी करते रहे और अन्त में ध्रुव लोक का भी शासन अब तक कर रहे हैं। किन्तु उनके पुत्र उत्कल तो पूर्व जन्म के कोई मोक्ष धर्मी पाप पुण्य से रहित कोई महायोगी थे। कोई सूक्ष्म सा पुण्य शेष रह गया था, उसी के फलस्वरूप आकर राजपुत्र हुए। किन्तु वे जाति स्मर थे। उन्हें पूर्व जन्म की सभी बातें याद थी। वे सोचने लगे—"यदि इस जन्म में भी मैं राज्य-भोगों में फँस जाऊँगा, तो मेरा आवागमन नहीं छूटने का। संसार में इसी प्रकार मरता और जन्म लेता रहूँगा। अतः कोई ऐसा उपाय करो, कि इस राज-काज से पिंड छूटे। प्रजा के लोग स्वय ही हमें राज गद्दी से हटा दें। हमें स्वयं राज्य छोड़ना

न पडे। यह सोचकर वे विपरीत आचरण करने लगे। वैसे उनमे कोई दोष नही था। जन्म से ही वे शान्तचित्त, असग, समदर्शी और सभी प्राणियो मे अपनी आत्मा को देखने वाले परम ज्ञानी और योगी थे। उनके पाप पुण्य रूपी सस्कार तो शेष रहे नही थे, किंचित् मात्र जो शेष थे, उन्हे राजपुत्र होकर वे भोग चुके थे, अब तो अखण्ड यागाग्नि से कर्मो के समस्त सस्कार भस्मीभूत हो जाने के कारण वे सम्पूर्ण भेदो से रहित, एकमात्र ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय, सर्वव्यापक, निर्वाणरूप ब्रह्म को ही अपना आत्मरूप मान कर आत्मा के सिवा कुछ भी नही देखते थे। अत वे राजा होकर ज्ञान की चरम स्थिति मे रहने लगे। मार्ग मे जिधर जा रहे है उधर हो चले जा रहे हैं। आगे वृक्ष है तो उससे हटते नही। कोई हिंसक जन्तु आ गया, तो उससे डरते नही। लोगो को सन्देह होने लगा, कि अवश्य ही यह अन्धा है, वैसे आँखें तो है इनमे प्रकाश नही। इसे दिखाई नही देता। किसी ने कुछ पूछा तो कुछ भी उत्तर नही, सब की बातें अनसुनी कर देते। लोग समझते कि इसे सुनाई भी नही देता। मन्त्री कुछ पूछते तो अ अ कर देते बोलते ही नही, उन्हे सन्देह होने लगा, यह गूंगा तो नही हो गया। देख रहे है तो देख ही रहे हैं, लेटे है तो लेटे ही हैं, बैठे हैं तो पहरो बैठे ही रहते हैं। सबने समझा यह तो पागल हो गया, ऐसा जड राजा क्या राज्य कर सकता है। इसीलिये सब बूढे मन्त्रियो ने कहा —"देवता जी! आप अब अपने पागल पने मे मस्त रहिये। इस राजसिंहासन को छोड़िये। इस पर हम दूसरे राजकुमार को बिठायेंगे।" उन्हे तो यह अभीष्ट ही था। राज्य छोडकर वन को चले गये।

अब सब मन्त्रियो ने मिलकर ध्रुवजी की दूसरी पत्नी अमि

के पुत्र वत्सर को राज्यसिंहासन पर बिठाया। वत्सर धर्मपूर्वक राज्य का पालन करने लगे। उनका विवाह स्वथि से हुआ। महारानी स्वथि अपने पति की परम प्रेयसी थी। उनके गर्भ से महाराज वत्सर ने ६ पुत्र उत्पन्न किये। जिनके नाम पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु और जय थे। इन सब मे पुष्पार्ण वडे थे, अत. नियमानुसार वे ही राजा हुए। उन्होने भी ध्रुवजी की भाँति दो विवाह किये। एक रानी का नाम प्रभा था दूसरी का दोपा। प्रभा के गर्भ से दिन के तीनो कालो के अभिमानी तीन देवता हुए, प्रात. मध्यान्दिन और साय इन नामो से प्रसिद्ध हुए। दोपा के गर्भ से प्रदोष निशथ और व्युष्ट ये रात्रि के तीनो कालो के तीन अभिमानी देवता हुए। इनमे व्युष्ट राजा हुए।

व्युष्ट की पत्नी का नाम पुष्करिणी हुआ। जिससे सर्वतेजस् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। महाराज सर्वतेजस् की भार्या का नाम अकूति था। उसके गर्भ से चक्षुमनु उत्पन्न हुए। चक्षुमनु की धर्मपत्नी का नाम नड्वला था जिसके गर्भ से परम तेजस्वी वीर्यवान् १२ पुत्र हुए। जो पुरु, कुत्सत्रित, द्युम्न, सत्यवान्, मृत, वत, अग्निष्टोम, अतिरात्र, प्रद्युम्न. शिवि, और उल्मुक है। इन नामो से जगत मे विख्यात हुए। इन सब मे उल्मुक राजा हुए। ज्ञात होता है ये सब के सब धर्मात्मा देवत्व को प्राप्त हुए। इसीलिये सबसे छोटे को राज्यसिंहासन मिला।

महाराज उल्मुक को धर्मपत्नी का नाम पुष्करिणी था, जिसके गर्भ से अङ्ग, सुमनस्, स्यातु, क्रतु, अङ्गिरस् और गय ये ६ परम धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुए। ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ होने के कारण अङ्ग को राजगद्दी मिली। महाराज अङ्ग ने मृत्यु की

कन्या सुनीथा से विवाह किया। जिसके क्रूरकर्मा परम दुष्ट वेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसने पृथिवी पर होने वाले सभी यज्ञयाग आदि धार्मिक वृत्त बन्द कर दिये।

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—'सूतजी! ध्रुवजी के वंश मे उत्पन्न हुए महाराज अङ्ग का हमे सम्पूर्ण वृत्त सुनावें। ऐसे विशुद्ध कुल मे उत्पन्न हुए महाराज अङ्ग के यहाँ वेन जैसा क्रूर-कर्मा कुमार कैसे उत्पन्न हुआ? महाराज के किस पाप का यह फल था। इन सब बातो को हमारी सुनने की इच्छा है, अत. सक्षेप न करें, सब बात विस्तार से बतावें।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"मुनियो! मैं महाराज अङ्ग का चरित्र सुना कर फिर वेन की क्रूरता का वृत्तांत बताऊँगा, आप सब समाहित चित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

ध्रुव के वत्सर पुत्र भये पुष्पार्ण तासु सुत।
तिनके बेटा व्युष्ट, सर्वतेजस् सुत तपयुत॥
आकूती महँ पुत्र, चक्षु मनु तिनके सुखकर।
मनु के उल्मुक भये, तिन्हीं के अङ्ग पुत्रवर॥
मृत्यु सुता को अङ्ग ने, पाणिग्रहण विधिवत् कियो।
ताही तें अतिक्रूरतर, वेनपुत्र पैदा भयो॥

मृत्युपुत्री सुनीथा

(२५०)

सुनीथाङ्गस्य या पत्नी सुषुवे वेनमुल्बणम् ।
यद्दौःशील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ॥*

(श्री० भा० ४ स्क० १३ अ० १८ श्लो०)

छप्पय

जो जो कारज करत सदा माता पितु दीखें ।
वे ई सबरे काज बालिका बालक सीखें ॥
सुता सुनीथा मृत्यु पिताकूँ सबकूँ मारत ।
निरखे नित प्रति दण्ड देत ताडत हुकारत ॥
तप सुशङ्ख वन महँ तपत, मृत्यु सुता तहँ जाइकें ।
तड तड ताडन नित करति, मारति तोत्र सिहाइकें ॥

बच्चो का स्वभाव अनुकरण शील होता है, बच्चे मातापिता को जो करते हुए देखते हैं, उसी को पहिले खेल खेल मे करते हैं, फिर वैसा करने की उनकी बान पड जाती है । कुछ सस्कारी

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी मृत्युपुत्री) सुनीया महाराज अग की पत्नी हुई, जिसने क्रूरकर्मा वेन नामक पुत्र को उत्पन्न किया । जिसकी दुष्टता से दुखित होकर राजर्षि महाराज अग अपने नगर को त्यागकर वन को चल गये ।"

बालक इसके अपवाद भी होते है, किन्तु प्राय ऐसा ही देखा गया है कि बच्चो के हृदय पर माता पिता के कार्यों का ही प्रभाव पडता है। इसीलिये तो हमारे यहाँ बात बात पर कुलीनता का ध्यान रखा जाता है। कुलीन पुरुषो से व्यवहार करो। विवाह सम्बन्ध करना हो तो दोनो कुल देखकर करो। जैसे कुल मे सम्बन्ध होगा सन्तान मे उसके थोडे बहुत सस्कार अवश्य ही आ जायँगे। इस विषय मे एक बहुत ही प्रसिद्ध आख्यायिका प्रसिद्ध है।

किन्ही महात्मा के यहाँ एक कुतिया रहती थी, भिक्षा से जो कुछ बच जाता महात्मा उसे डाल देते। महात्मा का उच्छिष्ट खाते खाते उसमे सुशीलता, सौम्यता तथा सरलता आ गई। किसी को देखकर भौंकती नही थी, कोई उपद्रव या कुतियापन का काय नही करती थी। महात्मा सिद्ध थे। उन्हे एक दिन दया आ गई। वे सोचने लगे—"देखो, कैसी सीदी सादी कुतिया है, किसी पाप से इसे यह योनि मिल गई है, नही तो इसमे कुतियापने की कोई भी बात नही। महात्माओ की लहर ही तो है। जिधर भी उमड पडे कृपावश। उन्होने गगा जल को मन्त्रो द्वारा अभिमन्त्रित करके उस पर छिडक दिया। देखते देखते वह अत्यन्त सुन्दरी कन्या बन गई। मुनि की कृपा से उसे अत्यधिक रूप लावण्य मिला था। जो भी उसे देखता, वही उसकी ओर देखता का देखता ही रह जाता। वही रहकर वह मुनि के आश्रम मे झाड़ू बुहारू देती। गौओ के गोबर से नित्य आश्रम को लीप देती।

किसी समय उस देश के राजा महात्मा के दशनो के लिये आया। उस अत्यन्त सुन्दरी कन्या को इधर से उधर अपनी प्रभा से आश्रम को प्रभावित करती हुई देखकर और झाड़ू

बुहारू मे व्यग्र निहार कर राजा ने पूछा—भगवन् ! यह कन्या-रत्न आपके यहाँ कहाँ से आ गया। यह तो महाराज जी राज-महल मे रहने योग्य है। आप बाबाजियो के यहाँ तो ऐसे रमणी-रत्न का दुरुपयोग ही है। इसके ये कमल की पखुडियो के समान कोमल कर क्या झाडू बुहारू और लीपने योग्य हैं।"

महात्मा जी समझ गये, कि लडकी राजा के मन पर चढ गई है। हँसते हुए मुनि बोले—"राजन् ! क्यो आप अपने मन को चचल करते हैं। आपके अत पुर मे अनेक अच्छे अच्छे कुलीन राजाओ के कुलो की कुलवती कन्यायें हैं। आप इसका क्या करेंगे। इसके कुल गोत्र का भी तो पता नहीं।"

राजा ने बडी उत्सुकता और आग्रह के स्वर मे कहा—"महाराज जी ! रत्न का क्या कुल गोत्र। रत्न तो रत्न ही है। अशुद्ध स्थान पर खडे हुए रत्न को क्या कोई छोड सकता है। शूद्र की घर की गो का दुग्ध क्या अपवित्र होता है। कन्यारत्न तो विशुद्ध होता है। आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो इस ललना रत्न को मुझे प्रसाद रूप मे दे दें। इसे मैं अपने हृदय का हार बनाकर अपने समस्त रानियो मे इसे श्रेष्ठ बना दूँगा। इसे कोई भी कष्ट न होगा।

महात्मा हँसे और बोले—"ले जाइये राजन् ! अपने राम को क्या माया मोह। अपने तो सकल्प से नित्य ऐसे रत्न बनते बिगडते रहते हैं। हमारे लिये जैसा ही कुतिया का रूप ऐसा ही इसका रूप।' राजा को बडी प्रसन्नता हुई। उसे ले गये और उसके साथ विवाह कर लिया। अपनी सब रानियो मे उसे सर्व श्रेष्ठ बना दिया। अन्त पुर मे वह अकेली महाराज के साथ रहने लगी। कैसी भी रानी बन गई थी, फिर भी कुतिया के सस्कार कहाँ जाते, यह तो महात्मा की विशेष कृपा थी जो

उसका रूप पदल दिया। सस्कार तो प्राय शरीर के अन्त होने पर ही, भोग समाप्त हाने पर ही बदलते है। राजा जब सो जाते तो वह धारे से उठकर दीपक के सब तेल को चाट जाती। राजा नौकरो को डांटते। "ऐसा दीपक क्यों रखते हो, जो प्रात तक नही जलता ?"

सेवको ने विनय के साथ कहा—"अन्नदाता ! हम जैसा सदा भरकर रखते थे वैसा ही रखते है, सम्भव है वायु के झोके से बढ जाता होगा।'

राजा ने प्रपनी वात पर बल देते हुए कहा—"बढ-कैसे जाता होगा। बढ जाता तो उसम तेल तो अवश्य रहता। उसमे एक बूंद भी तैल नही रहता।"

सेवको ने कहा—'प्रभो ! आप भले ही नित्य देख लिया करें। हमारा कुछ अपराध नही।"

यह सुनकर महाराज ने २-३ दिन देखा। सेवको की बात तो ठीक ही थी। एक दिन वे सोये नही किन्तु कपडे ओढकर ऐसे पड गए मानो गाढ निद्रा मे सो रहे हो। जब कुतिया रानी ने देखा राजा सो गये हैं, तो वह शनै शनै उठी और चपर चपर करके दीपक के सब तैल को चाट गई। अब तो राजा के आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। वे बराबर सोचते—"यह है कौन ? अरे, मेरे यहाँ खाने पीने की कुछ कमी नही, नित्य ५६ पदार्थ बनते हैं। फिर भी यह चोरी से छिपकर दीपक के तैल को चाटती है। अवश्य ही यह कोई राक्षसी है !" यही सब सोचते सोचते राजा को प्रात काल हो गया। वे शीघ्रता के साथ नित्य कर्मो से निवृत्त हुए और रथ जोतकर उस नई रानी को उसमे बिठाकर अकेले ही महात्मा के आश्रम को चले।

राजा वैसे बड़े कर्मकांडी थे महल के भीतर कभी कोई कुत्ता नहीं जा सकता। कुत्ते को बहुत अशुद्ध माना है। आज जब उनका रथ जा रहा था, तो एक गाँव के पास बहुत से कुत्ते हू हू करके रो रहे थे। अब तो इस कुतिया रानी से भी नहीं रहा गया। यह भी हहह हू···करके चिल्ला उठी। राजा बड़े डरे कि इस डायन से अच्छा मेरा पाला पड़ा। न जाने यह कौन है।

महात्मा के आश्रम पर पहुंचे। महात्माजी तो देखते ही समझ गये कुछ दाल में काला है। हँसते हुए बोले—"कहिये राजन्! क्या हाल-चाल है? आपकी नई रानी आपके अनुरूप व्यवहार करती हैं न?"

राजा ने खीजकर कहा—"अजी, महाराज! किस डाइन को आपने मेरे पल्ले बाँध दिया। अब उसकी लीला कुछ पूछिये मत। इस ग्रह से मेरा किसी भाँति पिंड छुड़ाइये।"

यह सुनते ही महात्माजी बड़े जोर से ठहका मार कर हँसते हुए बोले—"राजन्! कन्यारत्न में क्या दोप है? यह तो ललना-रत्न है।"

राजा व्याकुलता के साथ कहने लगे—"भगवन्! ऐसा रत्न यहाँ आश्रम में ही रहे। मेरे ऊपर तो कृपा हो। दया करके मुझे यह बताइये कि यह कोई भूतिनि है, कि पिसाचिनी है। या डाकिनी-साकिनी है?"

महात्माजी तो हँस पड़े और बोले—"राजन्! मैंने तो आपसे पहिले ही कहा था, विवाह कुल गोत्र देखकर करना चाहिये। यह नही है, कि जहाँ चटक मटक देखी वहीं फिसल पड़े। न तो यह भूतिनी न पिचाचिनी न डाकिनी न साकिनी है। यह

जो है, उसे मै आपको अभी बताता हूँ।" इतना वह कर महात्माजी ने फिर मन पढकर उसके ऊपर जल छिडका। उसी समय वह कुतिया बनकर पूँछ हिलाने लगी। राजा को बडा आश्चर्य हुआ और वे महात्मा की सिद्धि की प्रशसा करते हुए उनकी चरणधूलि सिर पर चढाकर चले गये।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! महाराज ध्रुव के वश मे जो उल्मुक नाम के राजा हुए, उनके ६ पुत्र थे। उनमे सबसे बडे का नाम अग था। जो कि बडे होने के कारण राज्य सिंहासन के अधिकारी हुए। उनका विवाह मृत्यु की कन्या सुनीथा के साथ हुआ। सुनीथा के पिता मृत्यु सबको मारने पीटने वाले थे, इसी लिये नाना के दोष से महाराजअग के पुत्र वेन बडे क्रोधी और क्रूर स्वभाव वाले हुए। सुनीथा की क्रूरता के कारण ऐसे क्रूरकर्मा सुत होने का उसे तपस्वी सुशख का शाप भी था।"

यह सुन कर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! सुनीथा को सुशख का शाप कैसे हुआ? सुशख कौन थे? फिर सुनीथा का विवाह महाराज अग के साथ कैसे हुआ। इन सब बातो को विस्तार से आप बतावें।"

यह सुन कर सूतजी बोले—"महाराज! यह तो बहुत बडा कथा प्रसग है। विस्तार के साथ वर्णन करने लग जाऊँ तो इसी मे बहुत समय व्यतीत हो जाय, अत मैं इस प्रसग को अत्यन्त ही सक्षेप मे आपके सम्मुख वर्णन करूँगा। आप इसे सावधानी के साथ श्रवण करने की कृपा करें।" इतना कह कर सूतजी सुनीथा के चरित्र को सुनाने लगे।

सूतजी बोले—"मुनियो! सब प्राणियो को मारने ताडने वाले मृत्युदेव के एक सर्वगुणसम्पन्ना सुनीथा नाम की कन्या

उत्पन्न हुई। मृत्युदेव उस परम सुन्दरी कन्या को अत्यंत स्नेह, बड़े लाड़चाव के सहित पालन करने लगे। लड़की जब कुछ बडी हुई तो अपने बाप की गोद में बैठकर सब बातें देखने लगी। मृत्यु का काम ही है, किसी को मारना, किसी को ताड़ना किसी को दुख देना। सुनीथा ने समझा मारना पीटना ही अच्छा काम है, यदि ऐसा न होता तो मेरे पिता सबको क्यो मारते।

जब लडकी सयानी हुई, तो वन-उपवनों में विहार करने जाती। वहाँ नंदन कानन के समीप के एक उपवन मे सुशंख नाम का एक बड़ा तपस्वी गन्धर्व एकान्त मे रह कर घोर तप करता था। गन्धर्व वैसे ही बड़े सुन्दर होते हैं, जिसमे वह सुशंख तो अत्यधिक सुन्दर था। यह सुनीथा जाती और उसे अकारण पीटने लगती। वह विचारा बड़ा गम्भीर था, बड़े स्नेह से पूछता— 'बच्चो ! मैंने तेरा क्या विगाड़ा है, तू मुझे क्यों पीटती है ?" किन्तु इसकी तो पिता के कार्य को देखते देखते मारने पीटने की बानि पड़ गई थी। इसलिये कुछ भी न सुनती। पीटपाट कर चली जाती।

१०। ५ दिन तो सुशंख सहते रहे। एक दिन उसने डाट-कर कहा—"लड़की, तू यहाँ मत आया कर।"

उसने कड़क कर कहा—"क्यों न आया करूँ, तेरे बाप का वन है, तू जानता नही मैं तीनों लोकों के स्वामी मृत्यु की पुत्री हूँ।"

सुशंख ने क्रोध मे भर कर कहा—"तू मृत्यु की नही, चाहे जिसकी लड़की हो। यदि तू कल से यहाँ आई तो फिर भला न होगा।"

सुनीथा ने मुँह मटकाकर सिर हिलाकर आँखे चढाकर गाल पिचकाकर कहा—"हम आवेगे, आवेगे अवश्य आवेगे, जो हमारी इच्छा होगी करगे, तू रोकने वाला कौन होता है ? कर लेना जो तुझे करना हो।" इतना कहकर वह चली गई। अपने बाप से भी उसने जाकर कह दिया। मृत्यु ने सोचा—"लडकी है, ऐसे ही लडलडा पडी होगी, इसलिये वे कुछ भी न बोले।"

दूसरे दिन फिर गई। सुशङ्ख ध्यान मे बैठे थे। इसने उन्हे मारना आरम्भ कर दिया। तब तो उसे बडा क्रोध आया। उसने डाटकर कहा—"क्योरी छोरी ! तू न मानेगी।"

सुनीथा ने आँखें नचाकर धृष्टता के साथ कहा—"हाँ नही मानेगी, कर ले हमारा क्या करता है।" इस पर उसे भी क्रोध आ गया। उसने क्रोध मे भर कर आचमन करके शाप दिया—"जा दुष्टे ! तू मुझ निरपराधी को मारती है, इसलिए तेरे गर्भ से एक ऐसा क्रूरकर्मा दुष्ट पुत्र उत्पन्न होगा, जो वेदमार्ग का दूषक, गौ ब्राह्मणो का निदक, यज्ञ सत्कर्मो से रहित और पापी होगा।"

इस शाप को सुनते ही सुनीथा की सब सिटिल्ली भूल गई। उसका मन उदास हो गया और खिन्न चित्त से अपने पिता के समीप गई। पिता से उसने आदि से अत तक सभी वृत्तान्त कह दिया। यह सुनकर पिता को बडा दुःख हुआ। उन्होने कहा—"बेटी ! उस शान्त, दान्त, परम तपस्वी, महान् तेजस्वी वनवासी समाधिस्थ महात्मा को तैंने अकारण दुख क्यो दिया। उनका शाप अन्यथा नही हो सकता।"

यह सुनकर सुनीथा भी बड़ी उदास हुई। वह सयानी हो गई थी। मृत्यु को रात्रि दिन उसके विवाह की चिन्ता लगी

रहती थी। वे उसके विवाह के लिये सब स्थानो में घूमे, किन्तु ऐसी शापित लड़की के साथ देवता, गन्धर्व, किंपुरुष, गुह्यक किसी ने भी विवाह करने को स्वीकार नही किया। इससे मृत्यु को भी बडी ग्लानि हुई। सुनीथा भी अपने भाग्य को धिक्कार देती हुई, पिता को प्रणाम करके तपस्या करने वन में चली गई। वह अत्यंत खिन्न मन से तपस्या करने लगी। बिना खाये शरीर को सुखाने लगी। उसी समय वन मे क्रीड़ा करती हुई, उसकी रम्भा आदिक सखी सहेली वहाँ आ पहुँची। उन्होंने जब सुनीथा को इस प्रकार खिन्न मन से शरीर सुखाते हुए देखा तो बडे स्नेह से वे पूछने लगी—बहिन ! तुम इतनी दुखी क्यों हो ? अपने दुख का कारण हमें बताओ। हम तुम्हारी भायेली सहेली है, हम शक्ति-भर तुम्हारे दुख को दूर करने का प्रयत्न करेंगे।"

अत्यंत उदास मन से सुनीथा ने कहा—'जीजियो ! मेरा दुःख ऐसा है, कि उसे कोई मेट नही सकता। मैंने अपने पाप कर्मों से स्वतः ही दुख मोल ले लिया है। मैंने निरपराध सुशङ्ख मुनि को कष्ट दिया है। उनके बार-बार निषेध करने पर भी जब मैं न मानी तो उन्होने क्रुद्ध होकर मुझे शाप दे दिया है, कि तेरे गर्भ से अत्यंत क्रूरकर्मा दुष्ट वेदनिंदक प्राणियों का हिंसक पुत्र उत्पन्न हो। इसी दोष के कारण मुझ से कोई विवाह करने को स्वीकार नही करता। मेरे पिता बड़े बलवान् हैं, तीनों लोको के स्वामी हैं, फिर भी पुत्री के पिता होने के कारण, उन्हें सबके सम्मुख नवना पड़ता है। उस समय मुझे बड़ी ग्लानि हुई, जब ये मेरा हाथ पकड़ कर देवता, गन्धर्व, यक्ष, गुह्यक, किन्नर सभी के पास गये, कि यह मेरी कन्या बड़ी सुन्दरी सुशीला और सर्वगुण सम्पन्न है, आप इसके साथ विवाह करलें

किन्तु पिता की प्रार्थना पर भी सबने कह दिया, इसे मुनि का शाप है, इसके गर्भ से क्रूरकर्मा पुत्र होगा, इसलिये हम अपने कुल मे कलक लगाना नही चाहते। हम इससे विवाह नही कर सकते।" इससे मेरा हृदय विदीर्ण हो गया है, अब मैं जीवित रहना नही चाहती। यही वन मे बिना कुछ खाये प्राण त्याग दूँगी।"

उसके ऐसे दुखः और आत्मग्लानिपूर्ण वचन सुन कर रम्भा बोली—"बहिन, तुम चिन्ता मत करो। जीव से अपराध तो हो ही जाता है। संसार मे कौन अपराध से बचा है? ब्रह्मा, विष्णु इन्द्र, रुद्र, सूर्य, चन्द्रमा तथा और भी ऋषि मुनियो तक से भूल हो गई है। अब देखो, बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेउ। शाप किसे नही हुआ। ब्रह्माजी को पूज्यत्व का शाप हुआ। विष्णु भगवान् को दशावतार होने का शाप शिवजी को कपाली नग्न होने का शाप, इन्द्र को सहस्रनेत्र होने का शाप, सूर्य को कुष्ट होने का, चन्द्रमा को क्षयी होने का। कौन शाप से बचा है। तुम इतनी दुखी क्यो होती हो। मैं तुम्हारी सहयता करूँगी और ऐसे सुन्दर पति से तुम्हारा विवाह कराऊँगी, जिसकी बराबर का पृथवी पर दूसरा कोई भी न होगा।"

यह सुनकर सुनीथा को बडी प्रसन्नता हुई। रम्भा ने उसे एक मोहिनी विद्या सिखा दी, कि जिस पुरुष की ओर भी वह आसक्ति सहित देख दे, वही उसके वस मे हो जाय। ऐसी विद्या सिखाकर अप्सराओ मे श्रष्ठ रम्भा अपनी सखी सहेलियो के सहित नदन वन मे ले गई।

इधर महाराज अग पुत्रकी कामनासे नन्दन वन में घोर तप कर रहे थे। रम्भा ने दूर से ही दिखाया, और हँसकर बोली —'यदि तुम्हें यह पुरुष पसद हो तो इससे साँठ गाँठ लगाऊँ

तपस्वी अग कामदेव से भी अधिक सुन्दर थे। सुनीथा का मन उनमे फँस गया। अब उसने अपनी मोहिनी विद्या क जाल उस तपस्वी अग पर डाला। एकान्त मे बैठ कर वीणा के स्वर मे स्वर मिलाकर सुमधुर स्वर से गान करने लगी। इधर तो सुनीथा की कोमल उगलियो के आघात से निर्जीव वीणा के तार झकृत हो रहे थे, उधर तपस्वी अग के हृदय मे भी स्मरशर के लगने से उनकी भी हृदतनी के तार झनझना उठे। वे ध्यान छोड कर इधर उधर देखने लगे। अवसर पाकर हँसती मुस्कराती मिथ्यावीणा दिखाती रम्भा ने जाकर कहा—"देव! क्या देख रहे हैं, आपके कान क्यो खडे है, आखो के पलक क्यो नही गिरते ?"

अग ने कहा—"इस वीणा की झकार के सुमधुर गान ने मेरा मन हर लिया है, मैं अपने आपे मे नही रहा हूँ।"

रम्भा ने कहा—"तो आप क्या चाहते हैं ? यह मेरी सखी बजाकर गा रही है। यही अपने सौन्दय की प्रभा से दशो दिशाओ को आलोकित कर रही है। क्या आप इस गायन को सुनना चाहते है ?"

तपस्वी अग बोले—"अहा, यह गायन तो मेरे कानो मे अमृत उडेल रहा है। यह गायन सुनने को मिले तो मै कृताथ हो जाऊँ।"

रम्भा ने कहा—"गाना ही मिले या और भी कुछ ?"

महामना अग बोले—"और क्या ?"

हँसते हुए रम्भा ने कहा—"यदि गाने वाली भी मिल जाय तब ?"

अत्यत प्रसन्नता प्रकट करते हुए राजा ने कहा—"तब, क्या पूछना ? 'नेकी और पूछ पूछ कर' चुपडी और दो दो,

मीठा और भरि कठौता।" तब तो मानो मेरी तपस्या की सिद्धि ही मूर्तिमती बनकर मुझे मिल जाय।"

तपस्वी अग का ऐसा अनुराग देखकर रम्भा उन्हे सुनीथा के पास ले गई। उसने तो मोहिनी विद्या से महाराज अग को वश मे कर रखा था। अग अपने आपे को भूल गये। अप्सरा गन्धर्वों ने मिलकर अग और सुनीथा का गान्धर्व विवाह कर दिया। महाराज ने अपने जीवन को धन्य धन्य समझा। इस पर रम्भा ने कहा—"महाराज, मेरी सखी के साथ छल मत करना मुझे एक वचन दो।" ये पुरुष बडे स्वार्थी होते है। जब इनका कोई प्रयोजन होता है, तो स्त्रियो से ऐसी बाते बनाते हैं मानो कितना स्नेह करते हैं। जहाँ प्रयोजन सिद्ध हुआ, कि फिर बात भी नही करते मुँह से भी नही बोलते।

महाराज ने दीनता से कहा—"नहीं, ऐसी बात मेरे विषय मे तुम मत सोचो। तुम जो कहोगी वही मैं करूँगा।"

इस पर रम्भा ने कहा—"महाराज, आप यही वरदान दें, कि मेरी सखी चाहे जंसा अपराध करे, इससे चाहे जितनी त्रुटि हो आप इसका जीवन भर त्याग न करें।"

रम्भा की यह बात सुनकर महाराज अग ने प्रतिज्ञा की। तब तो वे उन सबसे विदा होकर अपनी नई बहूरानी को साथ लेकर अपने नगर मे आये और बडे आनन्द के सहित सुनीथा के साथ आनन्द विहार करने लगे। सुनीथा के सौन्दर्य पर महाराज ऐसे लट्टू हो गये कि उन्होने उस पर अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। कालान्तर मे इसी सुनीथा के गर्भ से क्रूरकर्मा वेन का जन्म हुआ। जिसने समस्त वंदिक धर्मकर्मो को बन्द कर दिया था। जो बडा क्रूर, हिंसक, दुष्ट और वेदमार्ग के विपरीत आचरण करने वाला हुआ।

इस पर शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! हमने तो कथा प्रसंग मे सुना है महाराज अंग अत्रि के पुत्र थे और आप उन्हे ध्रुवजी के वश मे महाराज उल्मुक का पुत्र बता रहे हैं ?"

इस पर सूतजी ने कहा—"महाराज किसी कल्प में अंग श्री अत्रि के भी पुत्र हुए होगे, किन्तु इस भागवती कथा के प्रसग में तो वे उल्मुक के ही पुत्र हैं।

इस पर शौनकजी ने कहा—"हाँ, यह तो कल्पभेद से कुछ अंतर हो ही जाते हैं। अब आप हमे यह सुनाइये कि धर्मात्मा महाराज अंग के क्रूरकर्मा वेन पुत्र कैसे पैदा हुआ ?"

यह सुनकर सूतजी ने कहा—"अच्छी बात है, मैं भगवान् के अवतार महाराज पृथु के पिता वेन का चरित्र सुनाकर भगवान् पृथु का चरित्र सुनाऊँगा।

छप्पय

बरजे बहुत सुशङ्ख सुनीथा सदा सतावे।
दयो शाप अति क्रूर पुत्र तू दुष्टा जावे॥
भई खिन्न मुनिशाप समुझि नहिँ ब्याह भयो जब।
तप हित वन महँ गई, अंग सँग मेल भयो तब॥
रम्भा ने तिकड़म करी, अंग संग मन मिलि गयो।
भयो ब्याह रानी बनी, दुष्ट वेन ताकें भयो॥

महाराज अंग का पुत्रप्राप्ति के लिये यज्ञ

(२५१)

नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक् स्थितम् ।
अस्त्येकं प्राक्तनमघं यदिहेदृक् त्वमप्रजः ॥
तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप ।
इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥*

(श्री० भा० ४ स्क० १३ अ० ३१, ३२ श्लो०)

छप्पय

अग कर्यो इक राजसूय सुर नहिं आये ।
कारण पूछ्यो भूप विप्र अघ पूर्व बताये ॥
तिनकी आज्ञा, मानि यज्ञ पुत्रेष्टि रचायो ।
यज्ञेश्वर त भूप पात्र पायस को पायो ॥
सूँघि सुनीथा कूँ दयो, खाइ गर्भ ताके रह्यो ।
गर्भवती रानी लखी, मन प्रसन्न सब को भयो ॥

जब तक शरीर मे पूर्वकृत पाप हैं, तब तक पुण्य कार्य सिद्ध नही होते । इसीलिये यज्ञादि शुभ कर्मों के पूर्व प्रायश्चित्त

---

*मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! जब आवाहन करने पर भी अग के यज्ञ मे देवता नही आये तब राजा ने सदस्यो से इसका कारण पूछा । सदस्य कहने लगे—"राजन ! आपसे इस जन्म मे तो कोई

कराने की विधि है। पहिले प्रायश्चित्तादि करके शरीर-शुद्धि मन-शुद्धि हो जाय तब यज्ञादि शुभ कर्मो की दीक्षा का पुरुष अधिकारी होता है। अनधिकार चेष्टा व्यर्थ होती है, अत. सब कार्यो मे पहिले पात्रता की परम आवश्कता है।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी! महाराज अंग का मृत्युपुत्री सुनीथा के साथ विवाह हो गया। अब राजा ने सोचा—"मुझे स्वर्ग की कामना तथा यश ऐश्वर्य के निमित्त जैसे मेरे पूर्वज अश्वमेघादि यज्ञ करते आये है, उसी प्रकार मुझे भी यज्ञ करने चाहिये। क्योकि राजाओ का ऐश्वय यज्ञो के द्वारा ही प्रकट होता है। लोग उसके यश का वर्णन करते हुए कहा करते हैं "ये हयमेध याग है, उन्होने ३ बडे बडे अश्वमेघ यज्ञ किये हैं। जो पृथ्वी पर रह कर १०० अश्वमेध यज्ञ कर लेता है, वह स्वर्ग का राजा इन्द्र बन जाता है मैं भी एक विपुल द्रव्य लगा कर वृहद् अश्वमेध यज्ञ करूँ।"

राजा ने अपना अभिप्राय वेदज्ञ ब्राह्मणो को सुनाया। ब्राह्मण तो यह चाहते ही रहते हैं, किसी की धम मे वृद्धि हो, अधर्म मे क्षय हो, ब्राह्मणो को दक्षिणा मिले और १०। १२ दिन खूब माल घुटें। धूमधाम हो, चहल पहल हो, ब्राह्मणो ने एक स्वर से महाराज अंग के शुभ सकल्प का सब प्रकार से समर्थन किया।

अणुमात्र भी अपराध बना नही, किन्तु पूर्वजन्म का एक अपराध आपका अवश्य है, इसी से आप पुत्रहीन हैं। अत: पहिले आप सुंदर सतान प्राप्ति के लिये प्रयत्न करें। जब आप पुत्र की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ करेंगे तो यज्ञ भुक् भगवान् अवश्य आपको पुत्र प्रदान करेंगे। महाराज, आपका कल्याण हो, आप ऐसा ही करें।

अब फिर क्या था, होने लगी यज्ञ की तैयारियाँ। सजने लगे सत्र के साज, जमने लगे अश्वमेध के ठाठ। बढ़ने लगी ब्राह्मणों और दर्शनार्थियों की भीड़। ब्राह्मणों ने विधिवत् पूजन करके घोड़ा छोड़ा। विशाल वेदियाँ बनाई गईं, समस्त यज्ञ संभार जुटाये गए। बड़े बड़े वेद की विधि जानने वाले विप्रवर बुलाये गये। सर्व लक्षण सम्पन्ना सहधर्मिणी सुनीथा के संग अंग महाराज ने यज्ञ-दीक्षा ली। वे हाथ में मृग का सींग लिए हुए मौन-व्रत धारण करके यज्ञ-कर्म में प्रवृत्त हुए।

उस युग में देवतागण यज्ञों में प्रत्यक्ष आ-आकर अपना अपना भाग ग्रहण करते थे। देवताओं के भाग-विभाजन के समय विधिवत् आवाहनादि करने पर भी स्वर्गीय देवता महाराज अंग के अश्वमेध यज्ञ में नहीं आये। इससे राजा को बड़ा दुख हुआ। उन्होंने सकेत द्वारा ब्राह्मणों से पूछा—"मुझे कुछ आवश्यक बात निवेदन करनी है। मैं मौन व्रत को त्याग दूँ?"

ब्राह्मणों ने आज्ञा दी—'हाँ महाराज! आप कह सकते है' तब महाराज अंग बोले—'हे सदस्यगण! मैंने कितनी श्रद्धा सहित इस यज्ञ को आरम्भ किया है। कितनी पवित्र वस्तुएँ न्यायोचित प्राप्त द्रव्य द्वारा जुटाई है, कितने वेदविधि को जानने वाले विद्वान ब्राह्मण बुलाए हैं। फिर भी आवाहन करने पर भी देवतागण अपना भाग लेने क्यों नहीं आते?

इस पर आश्चर्य के सहित ऋत्विजों ने कहा—"राजन्! इसी बात का तो हमें भी आश्चर्य हो रहा है, कि देवतागण यज्ञ में क्यों नहीं आते। देवताओं के यज्ञ में न पधारने के तीन ही कारण हैं। या तो सामग्री अपवित्र, दोषयुक्त हो। अथवा यज-

मान के कार्य श्रद्धाहीन हो। या यज्ञ कराने वालो के यज्ञीय मंत्र सामर्थ्यहीन, ब्रह्मचर्य व्रतो से रहित, अशुद्ध और शक्तिहीन हों। इन तीनो बातो मे से यहाँ एक भी नही है। आपकी सामग्री बडी पवित्र है, बडी शुद्ध है। द्रव्य आपका अधर्म से उपार्जित नही है। न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते हुए उनसे षष्ठांश लिया गया है। हमारे मंत्र अमोघ हैं, हमने ब्रह्मचर्य व्रत पालन पूर्वक इनका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया है। फिर भी देवता नही आते महान् आश्चर्य है ?"

इस पर राजा ने कहा—"तब, महाराज! मेरा कोई पाप होगा। जिस पाप के कारण देवता नही आते।"

इस पर ऋत्विजो ने कहा—"राजन्! हम आप मे भी अणुमात्र पाप नही देखते। आप बाल्यकाल से ही बडे धर्मात्मा हैं, आपका वंशगत सदाचार बडा विशुद्ध है, आप नियम व्रतो का पालन करने वाले है। प्रतीत होता है, पूर्वजन्म मे आपसे कोई बाल हत्या आदि पाप बन गया है इसी कारण आपकी स्त्री के अभी तक कोई संतान नही हुई। बिना पुत्र के गति नही। पुत्रहीन पुरुष के कर्म निष्फल हैं। अत पहिले आप पुत्र की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ करें। हमारा विश्वास है कि यज्ञभुक् भगवान् आपकी भक्ति से सन्तुष्ट होकर अवश्य ही आपको पुत्र प्रदान करेंगे। जब आपके पुत्र हो जाय, तब फिर आप यज्ञ करेंगे, तो उसमे सब देवता आ आकर भाग लेंगे।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुर! सदस्यो के मुख से यह बात सुनकर राजा ने पुत्रेष्टि यज्ञ आरंभ की। ज्यो ही उन्होने भगवान् के निमित्त पुरोडास अर्पण किया त्यो ही अग्निकुण्ड से एक सुवर्णमय मनोहर माला पहिने, अपनी आभा से दशो

दिशाओ को आलोकित करते हुए विशुद्ध वस्त्रो से विभूषित हाथ मे सुन्दर सिद्ध पायस का पात्र लिये हुये दिव्य पुरुष प्रकट हुए। उनके प्रकट होते ही, सर्वत्र आनन्द छा गया। ऋत्विज्, सदस्य, ऋषि मुनि, तथा यजमान हाथो की अजलि बांधे हुए उनका अभ्युत्थान करने के निमित्त सहसा उठ खडे हुए। ऋत्विजो ने अत्यन्त ही सभ्रम के साथ कहा—"राजन ! आप बडी श्रद्धा के सहित इस खीर के पात्र को ग्रहण करे।"

ब्राह्मणो की अनुमति पाकर राजा ने अत्यन्त गौरव के सहित अजलि मे उस सिद्ध रायस-पात्र को ले लिया। दिव्य पुरुष तुरन्त अन्तर्धान हो गये।

तब ब्राह्मणो ने कहा—"आप इसे सूँघ कर अपनी पत्नी को प्रदान करे। आपकी महारानी इसे श्रद्धा सहित पायेगी, तो उनके अवश्य ही सन्तान होगी।"

ब्राह्मणो को ऐसी आज्ञा पाकर राजा ने उस खीर को सूँघा और सूँघकर अपनी रानी सुनीथा को दे दिया। सुनीथा ने भी उसे परमगुणयुक्त महान् समझ कर बडी श्रद्धा के सहित भक्षण किया। उसके भक्षण करते ही रानी के गर्भ रह गया। इससे समस्त प्रजा मे आनन्द छा गया।

अब तो सुनीथा को सुशङ्ख के शाप की बात याद आई। दिन रात्रि उस अपने पिता की ही बातें यद आती। वे सोचती—"मेरे पिता रात्रि दिन कैसा क्रूरता करते रहते हैं। सभी को सताते हैं, सभी को दड देते हैं, मारते है। उन्ही से मैंने भी बाल्यकाल मे यह बात सीख ली। तभी ता मैं निरपराध उन सुशङ्ख मुनि को मारती थी। उन्होने क्रुद्ध हाकर मुझे शाप दिया था—'तेरे क्रूरकर्मा हिंसक और सब को पीडा

पहुँचाने वाला पाप रूप पुत्र उत्पन्न होगा। सम्भव है, मेरे गर्भ मे वही पापी आया। हाय ! पापीपुत्र पैदा करके पिता माता सदा दुखी बने रहते हैं। दिन रात सुनीथा मृत्यु के ही स्वभाव को सोचती रहती थी, अत. गर्भस्थ बालक पर उन सस्कारो का बडा प्रभाव पडा।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! गर्भवती स्त्री, निरन्तर जिन विचारो मे निमग्न रहती है उसकी सतान भी प्राय· उन्ही विचारो की होती है। इसलिये गर्भवती स्त्री को कभी व्यर्थ की बुरी-बुरी बाते विचारनी नही चाहिये। न कोई पाप कर्म ही करना चाहिये। निरन्तर भगवत्चिन्तन करे और भक्तो के चरित्र श्रद्धा से सुनती तथा पढती रहे। ऐसा करने से उसकी सन्तान श्रेष्ठ होगी।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! एक सुनीथा पहिले से ही शापित थी, दूसरे वह निरन्तर मृत्यु का स्मरण करती रहती। तीसरे राजा के शरीर मे जितना पाप था वह सब कारणो से वह गर्भस्थ बालक अत्यन्त ही निर्दयी-क्रूर और वेद, विरुद्ध आचरण करने वाला नास्तिक हुआ। जिसे क्रुद्ध होकर ब्राह्मणो ने मार डाला

छप्पय

गर्भवती बनि सदा सुनीथा जिही विचारे।
होवे पापी पुत्र क्रूरता मन महँ धारे॥
अङ्ग अङ्ग को पाप सिमिटि वीरज महँ आयो।
शाप सुनीथा फल्यो क्रूर कर्मा सुत जायो॥
गर्भकाल महँ मातु जो, सोच सदा जैसो करे।
पूर्ण गर्भ के हात ई, सुत पैदा तैसो करे॥

अंग का क्रूरकर्मा पुत्र वेन

(२५२)

सः बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः ।
अधर्मांशोद्भवं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥
स शरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः ।
हन्त्यसाधुर्मृगान्दीनान्वेनोऽसावित्यरौज्जनः ॥*

(श्रीभाग० ४ स्क० १३ अ० ३९, ४० श्लो०)

छप्पय

भयो पापमति वेन सदा मदमातो भूमे ।
तीर कमन्टा लिये मृगनि मारत वन घूमे ॥
छोरनि बाँधे दुष्ट ऐंचि कें जल मे डारे ।
मग महँ मूरख पकरि मार मुक्कनि की मारे ॥
शठता सुत की सुनि सबहि, दुःख अङ्ग कूँ अति भयो ।
सोचें मनु के वश महँ, कुलकलक यह ह्वै गयो ॥

जन्मान्तरीय प्रबल सस्कार किसी प्रकार भी नही हटते । गरुडजी भगवान् के सखा है, सेवक हैं, भक्त हैं, वाहन हैं,

---

*मैत्रेय मुनि कहते हैं-"विदुरजी ! सुनीथा के गर्भ का बालक अधर्म के वंश में उत्पन्न होने वाले अपने नाना मृत्यु के ही शील स्वभाव वाला बालकपने से ही हुआ । नाना के सम्बन्ध से वह

फिर भी सर्पों के खाने का जो उनका स्वाभाविक संस्कार है वह नहीं छूटता। सर्पगण शिवजी के भूषण हैं। उनके अनुचर हैं, अमृतस्रव चन्द्रमा के समीप सदा रहते हैं। चन्द्रमा भगवान् भोलेनाथ के मस्तक के तिलक हैं, तो सर्प उनके मुकट हैं। इतना होने पर भी सर्पों का जो विष उगलने का स्वभाव है, वह नहीं छूटता। गौ को न कोई सिखाता है और न उसके दूध मे मधुरिमा लाने का कोई यत्न करता है, उसका दुग्ध प्रकृति से ही मधुर है। जो बच्चे पूर्व संस्कारों से दुष्ट होते हैं, वे बिना सिखाये ही दुष्टता करने लगते हैं। पापो के प्रबल संस्कारों के कारण ज्यों ही वे बोलने चालने लगते हैं, त्यों ही दूसरों को दुख देने लगते हैं।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! जब पुत्रेष्टि यज्ञ से सुनीथा के गर्भ रह गया, तब १० वें महीने में उनके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह जन्म से ही क्रूरकर्मा था।

इस पर विदुरजी ने पूछा—"महाराज! राजर्षि अंग के वीर्य से स्वयं साक्षात् यज्ञपुरुष की दी हुई खीर से उत्पन्न होने पर भी वह पुत्र क्रूरकर्मा, हिंसक तथा दुष्ट क्यों हुआ?"

यह सुनकर मैत्रेयजी बोले—"विदुरजी! राजा के अङ्ग में जो कुछ पाप था, वह सब उनके वीर्य मे आ गया, जब गर्भाधान संस्कार हुआ तो राजा निष्पाप हो गये। दूसरे उनकी रानी तो मृत्यु की पुत्री थी। मातृवंश का भी सन्तान पर बड़ा प्रभाव

अधार्मिक हुआ। कुछ बड़ा होने पर वह दुष्ट बालक हाथ में तीर कमान लिये वन में जाकर व्याध की भाँति भोले भाले हिरनों को मारता फिरता था। उसे देखते ही सभी प्रजा के लोग चिल्ला उठते थे वेन आ रहा है।

पडता है, अत सदा सत्कुलीन कन्या के ही साथ विवाह करना चाहिये। तीसरे सुनीथा को सुशङ्ख गन्धर्व मुनि का शाप भी था। इन सभी कारणो से अङ्ग का पुत्र वेन अत्यन्त ही दुष्ट हुआ। वेन कहते है पीडा को (वेनयति पीडयति इति वेन) जो सबको पीडा पहुँचावे वही वेन कहलाता है।

वह सियाना होते ही हिंसा मे प्रवृत्त हुआ। तीर कमान लिये जगलो मे घूमा करता। जिस जीव को भी देखता, उसे ही सडाक से मार देता। प्राणधारियो को मारते समय तडपते देखकर उसे बडी प्रसन्नता होती। कोई बालक जा रहा है उसे पास मे बुलाया। उसके कठ की गुठली को दबाने लगा। स्वाँस रुकने से बच्चे के प्राण छटपटाते, आँखें निकल आती, तो वह प्रसन्न होता और अत्यन्त जोर से दबाकर उसे मार डालता। किसी के मर्मस्थानो मे ऐसे घूँसे जमाता कि वह वही मर जाता, किसी के देखते ही ऐसा तक कर तीर मारता कि वह जहाँ का तहाँ टें कर जाता। किसी को गद की तरह ऊपर उछाल देता वह पत्थर पर गिर कर मर जाता। किसी को अलातचक्र की भाँति १०। २० बार घुमा कर दूर जल मे फेंक देता। वह डूब कर मर जाता। इस प्रकार उसे प्राणियो को मारने मे बडा सुख मिलता।

राजा ने जब देखा, मेरा पुत्र तो बडा दुष्ट है तब उन्होने उसे बुलाकर समझाया। 'देख, बेटा! किसी को मारते नही, सब मे समान रूप से श्रीहरि निवास करते है, सब उनके ही रूप हैं। जैसे अपने को पीडा होती है, वैसे ही दूसरो को भी होती है। धर्म का मूल तो दया है। जिसके हृदय मे दया है उसने स्वर्ग को जीत लिया है। बोल, कुछ आई समझ मे।' वेन ने कहा—"हाँ पिताजी समझ गया।"

महाराज अंग ने पूछा—"क्या समझा ?"

वेन बोला—"यही समझा कि जब से आपने बकना आरम्भ किया है तब से मैं इन चींटियों के बिल की ओर बड़े ध्यान से देख रहा हूँ। आपने बात आरम्भ करी तब से अब तक १७५८१ चींटी तो इसमें से निकली और घुसी कितनी इसे भूल गया।

यह सुनकर महाराज अङ्ग ने अपना माथा ठोका, कि यह दुष्ट किसी प्रकार न समझेगा। अब क्या करें, कैसे मेरे इस दुःख का अन्त हो। वे वेन के दुष्कर्मों को स्मरण करके अत्यन्त ही खिन्न रहने लगे।

एक दिन कोई महात्मा वहाँ से भूले भटके चले आये महाराज अङ्ग ने उनका स्वागत सत्कार किया। महात्मा तो स्वभाव से ही दयालु होते हैं, पर पीड़ा को देख कर उनका नवनीत के समान हृदय द्रवित हो जाता है और अपने सदुपदेशों द्वारा उसके हटाने का शक्ति भर प्रयत्न करते हैं। महात्मा ने राजा से पूछा—"राजन्! प्रतीत होता है, आपको कोई गहरी आत्मिक वेदना है। किसी अत्यन्त चिन्ता से आप दुखी हैं। अपने दुःख का कारण आप मुझे बतायें। राजा ने कहा—"भगवन् क्या बताऊँ, मेरे पूर्व जन्म के कोई ऐसे पाप उदय हुए हैं, कि मुझे सदा मानसिक क्लेश ही बना रहता है। मेरी चिन्ता का कारण मेरा पुत्र ही है। प्रभो! मेरा यह क्रूरकर्मा कुपुत्र ऐसा दुष्ट है, कि सदा सब को पीड़ा पहुँचाता रहता है। ऐसे पुत्र से तो पुत्रहीन होना हजारों गुना श्रेष्ठ है। वे पुरुष धन्य हैं, जिनके पुत्र नहीं हैं। यदि हैं भी तो सुपुत्र हैं। कुपुत्र के कारण होने वाला दुःख अनन्त पापों का फल है। जिन्होंने पूर्व जन्मों में प्रभु की प्रेमपूर्वक पूजा न की हो उन्हीं के यहाँ कुपुत्र का जन्म होता है। कुपुत्र के कारण अनर्थ ही अनर्थ होते हैं।

जिस कुल मे कुपुत्र उत्पन्न हुआ उस कुल की समस्त प्रतिष्ठा धूलि मे मिल जाती है। कितना भी यशस्वी कुल हो उसका यश नष्ट हो जाता है। कुपुत्र अधर्म करके स्वय ही पाप का भागी नही बनता, उसके पितर भी नरको की यातनायें सहते है। उसके कारण परिवार भर को अधर्म का भागी होना पडता है। फिर सबसे विरोध हो जाता है। नित्य ही लोग उलाहने ले लेकर आते हैं—"आज आपके लडके ने यह कर दिया, उसे मार डाला उसे जला दिया, उसे घायल कर दिया।" सभी आकर दोष देते हैं अपना विरोध प्रकट करते है।

सबसे बडी बात यह है, कि अहर्निश हृदय जलता रहता है, सदा मानसिक चिन्ता बनी रहती है। सदा सन्ताप की ज्वाला मे सतप्त रहना पडता है। इन सब कारणो से सभी सुख दुख रूप मे परिणत हो जाते हैं, समस्त आनन्द प्रमोद किरकिरा हो जाता है, भरा पूरा घर दुखमय प्रतीत होने लगता है। क्या करें कहाँ जायें।"

यह सुनकर सत हँस पडे और बोले—"राजन्! अपने घर मे कुपुत्र का जन्म बडे भाग्य से होता है। वे बडभागी पुरुष हैं, जिनके घर कुपुत्र हुआ हो।"

आश्चय के साथ राजा ने पूछा—"यह कैसे भगवन्! कुपुत्र का होना सौभाग्य का चिह्न कैसे?"

महात्मा बोले—"देखिये राजन्, सुपुत्र हुआ, तो वह अपने शील स्वभाव से, सेवा सत्कार से, सदाचार तथा श्रेष्ठ गुणो से पिता को वश मे कर लेता है। पिता सदा उसके सद्गुणो पर विमुग्ध बना रहता है, उसी के कल्याण की सोचता रहता है। उसे प्रसन्न करने को कभी घर से बाहर नही निकलता। दिन दिन उसके स्नेह बधन मे बँधता जाता है, मोह जाल मे

जकडता जाता है। उसे वैराग्य नही होता, घर द्वार, कुटुम्ब परिवार मे बढी हुई आसक्ति कम नही होती। उसका परलोक बिगड जाता है, मरते समय पुत्र पौत्रो का ध्यान करते हुए ही मरता है। इसलिये मरकर उसी परिवार मे उसे फिर पुत्र बन कर उत्पन्न होना पडता है। इसके विपरीत कुपुत्र सदा दुख देता है। मन से सदा वैराग्य बना रहता है। कुटुम्ब परिवार ससारी सभी सुख फीके पडते हैं। ऐसे समय भी जो घर को त्याग कर नही जाते,उनसे बढकर नीच पतित और कौन होगा? सो, राजन् कुपुत्र इसी लिये अच्छा है, कि वह ससार से वैराग्य उत्पन्न कराने का कारण होता है। इसलिये महाराज! आप मेरी बात मानिये, इस कुटुम्ब परिवार के मोह को छोडिये। सर्वात्मभाव से उन श्रीहरि के चरणो की शरण चाहिये आपका कल्याण होगा, आप सुखी होगे।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! इतना कहकर महात्मा तो चले गये। महाराज अङ्ग सोचने लगे कि अब मैं क्या करूँ।

छप्पय

समझायो बहु भाँति किन्तु वह वेन न मान्यो।
नहिं समझेगो दुष्ट अङ्ग यह निश्चै जान्यो॥
सोचें कुल महँ कोढ भयो खल मति सुत पापी।
कैसे त्यागूँ जाहि जिही चिन्ता चित व्यापी॥
कहा करूँ कछु बस नही, अब तजि घर हरकूँ भजूँ।
तजै दुष्टता जिह नही, सो जाकूँ हौं ही तजूँ॥

वेन की क्रूरता के कारण अंग का गृहत्याग

(२५३)

एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहात्,
निशीथ उत्थाय महोदयोदयात् ।
अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभि-
र्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥*

(श्री० भा० ४ स्क० १३ अ० ४७ श्लो०)

छप्पय

निबिड तिमिर-मय निशा नीद नृपकूँ नहिं आई ।
करिकें इत उत बात वेन की मात सुआई ॥
सबकूँ सोवत छोडि राजघर तें नृप निकसे ।
चन्द्रहीन लखि निशा असरुओ उडुगन विकसे ॥
जनमे जा घर मे नृपति बडे भये राजा भये ।
कचुल तजि अहि जाहि ज्यो, सुत दुखते त्यो भगि गये ॥

शरीर और शरीर से सम्बन्ध रखने वाली जितनी भी वस्तुएँ हैं, सब के साथ इस जीवात्मा की एसी आसक्ति हो

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं— विदुरजी ! कुपुत्र वेन के दुःख से इस प्रकार उदासीन होकर महाराज अङ्ग एक दिन आधी रात्रि के समय अपने समस्त ऐश्वयशाली घर को छोड कर चले गये। उन्हें

जाती है, कि इन्हे स्वेच्छा से कभी भी छोडना नही चाहता। घर की ईंट ईंट मे मोह हो जाता है, बेकाम की भी वस्तुएँ पडी हो तो उन्हे भी दूसरो को नही देता। पेडो मे, पत्तो मे, छोटी-छोटी चीजो मे इतना अपनापन हो जाता है, कि मिट्टी का घडा भी फूट जाय, तो ऐसा लगता है मानो हमारा हृदय फूट गया। इन सब चीजो मे इतना ममत्व होने पर भी अत्यत ज्ञानपूर्वक वैराग्य होने पर अथवा अत्यत शोक होने पर मनुष्य इन सबको भी तृण की तरह त्याग कर तत्काल चला जाता है। जिनको इस ससार की अनित्यता, क्षणभगुरता को देखकर भी वैराग्य नही होता, जो अपमान पर अपमान तिरस्कार पर तिरस्कार सह कर भी मोहवश, निंदित कुत्सित जीवन बिताते हुए गृह मे ही आसक्त बने रहते हैं, वे तो नर पशु हैं। नही तो सभावित मनस्वी पुरुष तो अपयश तथा अपकीर्ति की अपेक्षा मरण को ही श्रेष्ठ समझते है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—'विदुरजी! वेन बडा बली था, वह अब प्राप्तवयस्क हो चुका था। महाराज का इकलौता ही पुत्र था, सभी उसकी क्रूरता से डरते थे। मत्रीगण भी उसके सम्मुख कुछ नही कह सकते थे। बडा दुस्साहस, दुष्ट, क्रोधी और असहनशील था। इसीलिये सब उसके सम्मुख थर-थर काँपते थे। महाराज के बहुत समझाने पर भी जब वह न माना तब उन्होने निश्चय कर लिया कि अब इसको घर छोडकर मुझे यहाँ से चला जाना ही ठीक है। इसका दमन मैं कर नही सकता। समझाने से

उस दिन फिर नही आई थी। [illegible] की माता सुनीथा [illegible] गयी और [illegible] दूसरे ने भी उन्हें जाते हुए नहीं देखा।"

यह मानेगा नही इसलिये 'आप मरे जग की प्रलय।' आँखो की ओट हो जाने पर कुछ भी करता रहे। यह सब शोक मोह तो मुँह देखे का है। जब दीखेगा ही नही, अपनी ओर से कुछ भी करता रहे।" यह सोचकर वे घर से निकल भागने की सोचने लगे।

एक दिन अँधेरी रात्रि थी। राजा को चिंता के कारण नींद नही आई। उनको यही सोच था, कि मेरे वश की बढी हुई कीर्ति इस वेन रूपी पाप ने सदा के लिये नष्ट कर दी। इसने हमारे कुल मे ऐसा कलक पैदा कर दिया, कि हमारा दिगन्त व्यापी महान् यश इसने धूलि मे मिला दिया। अब मैं ऐसे निंदित तथा नास्तिक पुत्र के अधीन न हूँगा।" महारानी सुनीथा, नियमानुसार पति की सेवा शुश्रुषा करके शैया पर सो गई। महाराज ने जब देखा कि रानी गाढ निद्रा मे निमग्न हो गई, सेवक भी सभी सो गये, तब वे धीरे से वेष बदल कर राजमहल से निकले। सयोग की बात किसी को मालूम नही होने पाया। वे नगर के बाहिर निकल कर समीप के ही किसी ऐसे गुप्त स्थान में छिप गये जहाँ किसी को भी सन्देह न हो।

प्रातःकाल हुआ। महारानी ने शैया को शून्य देखा। हे हक्कीबक्की सी रह गई। दास दासी बुलाये गये, सब स्थानो मे खोज खबर की। राजा यहाँ राजा वहाँ ? किन्तु राजा अब यहाँ कहाँ? वे तो रात्रि मे ही नौ दो ग्यारह हो चुके थे। शीघ्र राज्य के बूढे मत्री बुलाये गये। प्रधान सेनापति आये। चारों ओर चर भेजे गये सवार दौडाये गये। मन्त्री स्वय सैकडो सेवको के साथ सदेहास्पद स्थानो मे गये, पुरोहित अपने शिष्य और सेवकों को लेकर दुखी होकर रोते-रोते राजा को खोजने लगे। वे सोचते थे—"जब तक महाराज अंग

राजा हैं, तभी तक दरबार मे हमारी कुछ पूछ है, कुछ दान दक्षिणा का डौलडाल है। जहाँ यह दुष्ट वेन राजा हुआ कि फिर तो सूखे शख बजेंगे। चना चबैना पर ही निर्वाह करना पडेगा। अत' वे बडी ममता से इधर उधर महाराज का अन्वेषण करने लगे। किन्तु सब मिलकर ढूँढने पर भी राजा को वे लोग उसी प्रकार न पा सके जैसे कुयोगी अपने अन्त करण मे स्थित परमात्मा को नहीं पा सकते। सर्वान्तर्यामी प्रभु कही तो दूर तो हैं नही, वे तो अत्यत समीप हृदय की कोठरी मे छिपे हुए हैं, लोग उन्हे ढूँढने काशी जाते हैं, प्रयाग जाते हैं, जगन्नाथ रामेश्वर, द्वारिका, बदरीनाथ न जाने कहा कहा भटकते फिरते हैं, किन्तु अपने भीतर खोज नही करते। इसी प्रकार राजा तो छिपे थे नगर के निकट ही, किन्तु नौकर चाकर, मन्त्री, पुरोहित उन्हें दूर-दूर ढूँढ रहे थे। किसी ने समीप मे खोज नही की।

जब राजा का कहीं भी पता न चला तो सेवको ने रोते-रोते महारानी सुनीथा के समीप तथा ऋषि मुनियो से निवेदन किया कि महाराज का कही भी पता नही चलता।

जहाँ कोई शासक न हो, राजा न हो वहाँ तो अराजकता फैल ही जाती है। राजा के चले जाने पर चारो ओर लूटमार होने लगी, चोर डाकुओ की बन आई, दिन दहाडे डाके पडने लगे। एक दूसरे की वस्तु लेने लगे। वेन इतना क्रूर था कि कोई भी मन्त्री उसको राजा बनाने के पक्ष मे नही था। किन्तु राजा के बिना शासन कैसे चले, किसकी आज्ञा मानी जाय ?

इस प्रकार देश में अराजकता देखकर सभी ऋषि मुनि एकत्र हुए। ऋषि मुनियो का एक विशेष आवश्यक अधिवेशन हुआ। विचार इस बात पर हुआ, कि महाराज अग

तो चले गये राजसिंहासन रिक्त होने से प्रजा मे अनेक उपद्रव हो जाते हैं, अतः अब क्या करना चाहिये।"

सब मन्त्रियो ने मिलकर कहा—"महर्षियो ! आप चाहे जिसे राजा बना दें, किन्तु महाराज अग का यह पुत्र वेन तो सर्वथा राज्यसिंहासन के अयोग्य है।"

मुनियों ने कहा—"भाई ! जब राजा का पुत्र विद्यमान है, तो उसके रहते हुए दूसरा राजा कैसे हो सकता है ? मनु वश के सिंहासन पर तो उनके वश का ही बैठेगा। महाराजा उत्तानपाद, ध्रुव ये इतने धर्मात्मा और पुण्यश्लोक हुए हैं, कि इनके वश का मूलोच्छेद हो नही सकता। अत जैसा भी है, वेन को ही राजा बना देना चाहिये।"

समस्त प्रजा ने, मन्त्रियो ने इसका विरोध किया; किन्तु मुनियो ने उनकी बात नही मानी।

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी, जब वेन इतना दुष्ट था, तब फिर मुनियो का उसे ही राजा बनाने का आग्रह क्यो था। किसी दूसर को राजा बना देते। जो दीप्तिमान् हो शोभायुक्त हो, वही राजा। किसी दूसरे को चुन लेत।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाभाग ! ऐसा भी होता है। राजा या राजवश के किसी पुरुप के अभाव मे दूसरे को भी राजा बना देते हैं। किन्तु उस समय ऐसी ही मान्यता थी, कि वशविच्छेद नही होना चाहिये। राजा के राज्यवश का विच्छेद तो पाप से होता है। कलियुग मे शुद्ध क्षत्रियवश रहेगा ही नही जिस जाति का भी जो भी बलवान् होगा वही राजा हो जायगा। यह अधर्म का चिह्न है। जब तक धर्म रहता है, तब तक कुल मर्यादा, वशपरम्परा का पालन किया जाता है। वर्णाश्रम धर्म मे सभी बातो मे संस्कारो की प्रधानता मानी जाती है। क्षत्रिय

वीर्य से क्षत्राणी मे क्षत्रिय सस्कारो द्वारा जो पुत्र होगा, वही क्षत्रिय होगा। उसे अपनी क्षत्रियोचित वृत्ति से ही आजीविका चलानी चाहिये। इसमे कभी-कभी अपवाद भी हो जाता है, किन्तु वह नियम नही अपवाद है। मुनि तो धर्मात्मा थे। वर्णाश्रम की मर्यादा को स्थापित करने वाले थे। उन्होने सोचा—"कैसा भी हो,है तो कुलीन राजवशका ही पुत्र। अभी बालकपन की कच्ची बुद्धि है, जब राजसिहासन पर बैठेगा, उत्तरदायित्व कन्धो पर आवेगा तब सब समझ जायगा। यही सब सोच समझकर महारानी सुनीथा की सम्मति से मन्त्रियो के विरोध करने पर भी भृगु आदिक मुनीश्वरो ने वेन को ही भूमण्डल के राज्यसिहासन पर अभिषिक्त कर दिया। क्योकि बिना राजा के सब लोग पशुओ के समान हो रहे थे। सम्पूर्ण ससार का कल्याण चाहने वाले मुनियो ने यही उचित समझा।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! विष की विष ही औषधि बताई है। प्रजा मे जो चोर डाकुओ का उपद्रव हो रहा था, वह वेन के राजा होते ही सब शान्त हो गया, क्योकि वेन बडे उग्र स्वभाव का था।

छप्पय

ढुँढवाये चहुँ ओर प्रभू को पतो न पायो।
तब ऋषि मुनि मिलि दुष्ट वेन कूँ नृपति बनायो॥
यद्यपि मत्री सचिव सबहि सहमत नहि जाते।
तऊ अङ्ग को तनय मुनिनि नृप कीन्हो ताते॥
एक गिलोय स्वभाव तें, कडवी फिरि नीमहिँ चढी।
तस सिहासन पाइके, वेन दुष्टता अति बढी॥

राजा बनने पर वेन की निरङ्कुशता

(२५४)

स आरूढनृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः ।
अवमेने महाभागान् स्तब्धः संभावितः स्वतः ॥
न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ।
इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥*

(श्रीभा० ४ स्क० १४ अ० ४, ६ श्लोक)

छप्पय

फिरै निरकुश भयो करे अपमान सवनि को ।
माने वेद न यज्ञ करे पूजन न सुरनि को ॥
ड्योडी दई पिटाय यज्ञ मख दान करो मति ।
मैं ई इन्द्र, कुबेर, वरुण, यम, रुद्र वृहस्पति ॥
मोइ छाँडि जे और कूँ, जप तप करिकैं भजिङ्गे ।
समभो मेरे खड्ग तें, प्रान तुरत ते तजिङ्गे ॥

शरीर को ही सब कुछ समझकर, ईश्वर की सत्ता न मानना, किसी को नमन न करना, मैं मेरी मे ही फँसे रहना, इसी का

---

*मैत्रेय मुनि कहते हैं—' विदुरजी ! वेन राजसिंहासन पर वैठते ही आठो लोकपालो की विभूति को पाकर अत्यन्त ही उन्मत्त हो गया । वह अपने आपको ही श्रेष्ठ समझकर उद्धततापूर्वक महाभाग ऋषियो का भी तिरस्कार करने लगा । उसने अपने राज्य मे डके की चोट यह

नाम नास्तिकता है। इस नश्वर शरीर से पृथक् आत्मा है, उसी अचिन्त्य शक्ति की सदा शरण ग्रहण करते रहना, हृदय, वाणी और शरीर से उन्हे निरन्तर नमो नम नमो नम करके नमन करते रहना, सब कुछ उन्ही का समझना इसी का नाम आस्तिकता है। आस्तिकता के विपरीत भाव को नास्तिकता कहते हैं मम मम' यही नास्तिकता है। 'न मम न मम'—'नमो नम नमो नम ' यही आस्तिकता है। ससार के विषय सुख जन्म पदार्थ प्रारब्ध कर्मानुसार नास्तिको को प्राप्त हो जाते है और आस्तिक भी ससारी वस्तुओ के अभाव मे दुखी देखे गये हैं, किन्तु मानसिक शान्ति विषयी नास्तिकों को कभी प्राप्त नही हो सकती। इसके विपरीत धनहीन आस्तिको पर ससारी सामग्रियाँ न रहने पर भी उन्हे मानसिक सन्तोष देखा गया है। अत सुख दुख का सम्बन्ध वस्तुओ से न होकर मन से है। तो भगवान् को प्रणाम करने मे ही है। जो ऐश्वर्य के मद मे भरकर ऐसा नही करते अत मे उनकी दुर्गति होती ही है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! जब वेन राजसिहासन पर बैठा, तो सबसे पहिले तो उसने मन्त्रियो की खबर ली। बूढे प्रधान मन्त्री को बुलाया। पूछा—'तुम प्रात काल शीघ्र क्यो नही आते ?" मन्त्री ने कहा—'देव ! मैं सध्या वन्दन, पूजा पाठ से निवृत्त होकर ही आता हूँ।"

वेन ने पूछा—'तुम किसकी पूजा करते हो ?"

प्रधान मन्त्री ने कहा—"प्रभो ! परमात्मा की पूजा करता हूँ।"

घोषणा करा दी कि "मेरे राज्य मे कोई भी द्विजातीय कभी भी किसी प्रकार का न यज्ञ करें, न दान दें, न हवन आदि करें। इस प्रकार उसने सब धर्मों को बद करा दिया।

वेन ने गर्व के साथ पूछा— 'परमात्मा कौन है ? कहाँ रहता है ?"

मन्त्री तो चक्कर मे पडे । इसे क्या उत्तर दें, फिर भी नम्रता के साथ बोले—"महाराज ! परमात्मा इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के स्वामी है, वे सर्वत्र रहते है ।"

गरज कर वेन ने कहा—"सब के स्वामी तो हम है, हम ही सब के ईश्वर हैं । हमसे बडा ईश्वर कौन है बताओ ?"

नम्रता के साथ बूढे मन्त्री ने कहा—"हाँ, आप तो सब के ईश्वर है ही किन्तु परमात्मा तो सभी के ईश्वर सबसे बडे है ?"

वेन ने कडक कर पूछा—"हमारा भी क्या कोई ईश्वर है ? हमसे भी कोई बडा है क्या ?"

बूढे मन्त्री ने सरलता के साथ कहा—"जब वह सबका ईश्वर है तो आपका भी है ।"

वेन ने गरज कर कहा—"कोई है ?"

प्रहरी ने प्रणाम करके हाथ जोडकर कहा—' देव की क्या आज्ञा है ।"

क्रोध मे भर कर वेन बोला—"इस बूढे को कारावास मे बन्द करो ।"

अब पुरोहित जी की बारी आई । पुरोहित जी को बुलाया । वे अपनी सफेद दाढी पर हाथ फेरते हुए डरते डरते आये । ज्योही आसन पर बैठना चाहते थे त्योही डाँटकर वेन बोला —"सामने कठघरे मे खडे हो ।"

बूढे ने मन मे सोचा—"इस नये राजा ने मेरी अच्छी पूजा की । वहाँ तो मैं सब से ऊँचे सिंहासन पर बैठता था, यहाँ ये मुझे अपराधियो के कठघरे मे खडा करता है । क्या करते खडे

हो गये। तब वेन ने पूछा—"तुम रोज इतना घी क्यों फूँका करते हो ?"

बूढे पुरोहित बोले—"महाराज, सदा से राजगृह मे हवन यज्ञ अग्निहोत्र होते रहते हैं, इसी लिए मैं घृतादि की आहुति देता हूँ।"

वेन बोला—"किसके लिये आहुति देते हो"

बूढे पुरोहित बोले—"महाराज, देवताओ के लिये आहुतियाँ देता हूँ।"

वेन अवहेलना के स्वर मे बोला—"कौन देवता ?"

पुरोहित ने कहा—"महाराज ! इन्द्र हैं, वरुण हैं, कुवेर हैं, यम है एकादश रुद्र है, अष्ट वसु हैं, ५६ मरुत हैं, १२ आदित्य हैं और भी सब देवता हैं। इन सबकी तुष्टि के लिये नित्य अग्नि होत्र आदि होने है।"

वेन ने गरज कर कहा—"मेरे पिता के सामने जो पोल चलती थी, वह अब नही चलेगी। वे तो बुद्धिहीन थे, बल वीर्य रहित थे, सब देवताओ के वावा गुरु तो हम है। तुम्हें जो कुछ हलुआ मालपुआ, खीर जो हवन करनी हो हमारे मुख मे करो। और सब देवताओ की आहुतियाँ बन्द करो। बोलो स्वीकार है ?"

सटपटाते हुए पुरोहित जी ने कहा—"महाराज ! यह आप कैसी धर्म विरुद्ध बाते कर रहे है ?"

अपनी बात पर बल देते हुए वेन बोला—"हमारा यही धर्म है, हम ही देवता हैं, हम ही ईश्वर हैं, हम ही सब यज्ञो के भोक्ता है, हमे ही वलि दो, हमारा ही पूजन करो। जो ऐसा करेगा वह तो हमारे यहाँ रहेगा। जो ऐसा न करेगा उसे हम अपने सेवक यमराज के दरबार मे भेज देंगे। बोलो—यह

रहकर हमारे मुख मे हवन करोगे या तुम्हारी बदली करदें।"

डरकर रुक रुककर बूढे पुरोहित ने कहा—"महाराज, मुझसे तो यह कार्य होगा नहीं।"

वेन ने कहा—"बधिक ! इस बूढ़े पुरोहित को इसके पुराने यजमान के समीप शूली द्वारा भिजवादो।"

यह सुनते ही बूढे पुरोहित को शूली पर चढ़ा दिया। अब तो सब के मुख फक्क पड गये। अब वेन जिससे भी पूछता वही मन्त्री कहता-'महाराज ! आप ही ईश्वर है, आप ही परमात्मा हैं। हम सब आपका ही भजन करगे।" जो इस प्रकार कहता उसे तो अपने राज दरबार मे रहने देता, जो तनिक भी चीचपड करता, उसे ही यमराज के दरबार मे पधारने का प्रवेशपत्र प्रदान कर देता। इस प्रकार पहिले उसने अपने प्रधान प्रधान कर्मचारियों और पदाधिकारियो पर आतंक जमाया।

जब वे सब अपने अनुकूल हो गये, तब वेन ने कहा –"हम दिग्विजय करने निकलगे। सम्पूर्ण सेना हमारे साथ चले।" तुरन्त उसकी आज्ञा का पालन किया गया। उसका सुवर्णमडित विजयध्वज रथ सजाया गया। अब तो वह निरंकुश हाथी के समान मदोन्मत्त मृगेन्द्र की भाँति चारो ओर अपने धनुष की टङ्कार करता हुआ घूमने लगा।

कही ऋषियो को यज्ञ करते देखता तो उनके पास जाकर पूछता—' इन्द्राय स्वाहा, के माने क्या ?"

ऋषि कहते—"स्वर्ग के जो देवता इन्द्र हैं उनके लिए अग्नि द्वारा हम यह हवनीय भाग पहुँचाते हैं। स्वाहा अग्नि की पत्नी है। इसलिए हम स्वाहा कह कर देवताओ को अग्नि द्वारा आहुति देते हैं।"

वेन कहता—"इन्द्र हम हैं, कुवेर हम है, वरुण हम हैं, यज्ञ-पुरुष हम हैं। अग्नि मे मत जलाओ, हमारे मुँह मे डालो। हमारी तोद को बढाओ। हमे ही माल खिलाओ। यज्ञीय पात्रो को तोड दो। इन तिल जौ चावलो को भून कर हलुआ बनाओ। वेदो को फेंक दो। सब एक हैं। सब के स्वामी हम हैं। हमारी आराधना करो। हमे पूजो।" ऋषि मुनि घबडा जाते और हाँ कह कर गोल मोल उत्तर दे देते।

किसी को दान करते देखता, तो कहता—"इन सण्डे मुसण्डे बेकार ब्राह्मणो को क्यो दान देते हो? जो देना हो हमे दो, कोष को बढाओ। कर मे वृद्धि करो, द्रव्य का व्यर्थ अपव्यय मत करो।"

किसी को जप करते देखता, तो पूछता—"क्या सटर सटर माला सटका रहे हो, किस मन्त्र का जप कर रहे हो?"

कोई कहता मैं एकाक्षर, द्व्यक्षर, चतुरक्षर, षडक्षर, अष्टाक्षर, द्वादशाक्षर, अष्टादशाक्षर आदि मन्त्रो का जाप कर रहा हूँ। कोई गायत्री मन्त्र का बताता, कोई प्रणव बताता। सब को सुनकर वह कहता—"ये सब मन्त्र पुराने हो गये। इन्हे छोडो अब परिवर्तन, संशोधन का समय है। सब लोग द्वयक्षर—"वेन" इसी का जाप करो। जो इस मन्त्र का जप करेगा, उसे तत्काल सिद्धि मिलेगी। जो स्वर्गीय देवताओ का यज्ञ करेगा उन्हे खड्ग के मार्ग से उन्ही के पास बलात्कार पहुँचा दिया जायगा। क्या कहते, लोग उसकी बात मान जाते। कोई आपत्ति करता उसका सिर तत्काल धड से पृथक् कर दिया जाता। इस प्रकार उसने सर्वत्र यज्ञ, दान, जप, तप, अग्निहोत्र आदि सभी वैदिक कर्मो को बन्द करा दिया। वह अपनी सेना के आगे आगे बड़ा भारी पर्वत के समान हाथी रखता। उस पर

बडा भारी नगाडा रखा रहता। उसमे सुवर्ण के दडे चोट से मार सर्वत्र घोषणा करता। "सावधान! सावधान! कोई मत करना, कोई दान मत करना। कोई यज्ञ अग्निहोत्र मत करना। कोई पूजा, पाठ, धर्म, कर्म मत करना। ईश्वर को कोई मत मानना। जो मानेगा उसका सिर धड से पृथक् कर दिया जायगा।"

इस प्रकार जब उसने समस्त पृथिवी मण्डल पर से यज्ञयाग बन्द करा दिये देवताओ के भाग बन्द हो गये, तब तो सर्वत्र अशाति छा गई। ऋषि मुनियो ने सगठन किया। चारो ओर इस आज्ञा के विरुद्ध सभाय होने लगी, विरोध की तैयारियाँ करने का उपक्रम होने लगा। समस्त ऋषि मुनियो ने मिलकर एक धर्मरक्षिणी सभा का विराट अधिवेशन किया। बडी देर तक विचार होता रहा। अध्यक्ष ने कहा—"देखो, भाई क्या करें वेन को राजा बनाकर भृगु आदि महर्षियो ने भूल की।"

इस पर एक मुनि बोले—"साधारण भूल नही की बहुत बडी भूल की। मैं तो वहाँ उपस्थित ही था। उसे राजा बनाने के सभी विरुद्ध थे। मन्त्री, पुरोहित अमात्य तथा बडे अधिकारियो ने इसका विरोध भी किया था, किन्तु इन मुनियो नें माना ही नही। उसे इतना विरोध होने पर भी राजा बना दिया। उसी का यह परिणाम है। आज वह ऐसे अत्याचार, पापाचार और कदाचार कर रहा है।"

इस पर एक बूढे से बहुत गभीर मुनि बोले—भाई देखो, बुद्धिमान, परोपकारी पुरुष अपनी बुद्धि से तो वही कार्य करते हैं, जिससे सभी लोगो का कल्याण हो। किन्तु पीछे उससे दूसरा अनर्थ हो जाय, तो यह दैवेच्छा। राजा के न रहने से सम्पूर्ण

देश मे अराजकता फैल जाती है। अराजक देश मे धर्म, कर्म, यज्ञ अनुष्ठान कुछ हो नही सकते। अत बुद्धिमान् पुरुष शक्ति भर प्रजा को राजा से शून्य नही होने देते। उस वेन को राजा इसीलिये बनाया था, कि प्रजा चोर डाकुओ की पीडा से बचे, किन्तु यह तो स्वय राजा होकर पाप करता है। जहाँ पाप होता है, वहाँ चोर डाकू अधम से स्वार्थ साधने वाले बढ जाते हैं। इसलिये अब तो प्रजाओ का दोनो ओर से मरण है। इधर राजा कष्ट दे रहा है उधर चोर डाकू लूट मार कर रहे हैं। इनकी तो वही दशा हुई जो दो पत्नियो वाले पुरुष की होती है। एक तो उसका हाथ पकड कर अपनी ओर खीचती है, दूसरी अपनी ओर। वह बिचारा दोनो के बीच मे पिसता है। चक्की के दो पाटो के बीच मे पडे अन्न की तरह, दोनो ओर से जलती लकडी के बीच मे बैठे जन्तु की तरह, प्रजा दुखित हो रही है। अब इस बात पर वाद विवाद करना तो छोडो कि इसे राजा क्यो बनाया था, अब तो सोचना यह है, कि किस प्रकार इसके अनाचारो से मुक्ति प्राप्त हो।"

इस पर एक मुनि बोले—"राजा कैसा भी हो, देवता बुद्धि से उसका पालन ही करना चाहिये।"

इस पर एक अत्यन्त तेजस्वी मुनि बोले—"आप कैसी बातें कर रहे हैं। धर्मशास्त्र का यह मत कभी नही है, कि अन्यायी राजा की सभी आज्ञाओ का बिना ननु नच किये पालन किया जाय। इस समय इसका पालन करना इसी प्रकार होगा जैसे शरीर के कपडो मे छिपे सर्प का दूध पिलाकर पालन किया जाय। अथवा विष मिले सुन्दर स्वादिष्ट लड्डुओं को पदार्थों के नष्ट होने के लोभ से खाया जाय। अथवा शरीर मे हुए जहरबाद वाले अग की लोभवश रक्षा की जाय। महानुभावो,

धर्मशास्त्र के वचनो का यथार्थ अभिप्राय समझना चाहिये। राजा वही माननीय और पूजनीय होता है जो धर्मपूवक प्रजा का पालन करता हो। यह मृत्यु की पुत्री सुनीथा का सुत स्वाभाव से ही दुष्ट है। हम सब ने सोचा सिंहासनारूढ होते ही स्यात् सुधर जाय, किन्तु जन्म का स्वभाव दुरतिक्रम होता है। इसलिये इसके विरुद्ध कुछ कार्यवाही करना चाहिये।"

किन्ही वृद्ध मुनि ने कहा— 'अजी, सब लोग चल कर उसे समझा बूझा दो। बात को व्यर्थ ही बढाना बुद्धिमानी का काम नहीं है।"

इतना सुनते ही दूसरे एक चढती अवस्था के मुनि बोले— "आप तो महाराज सबको अपना सा ही समझते है। लात का देव बात से नही मानता। समझाने बूझाने का इस पर कुछ भी प्रभाव न पडेगा। हमारी तो सम्मति है इस पर चढाई कर देनी चाहिये।

इस पर ढलती अवस्था एक गंभीर के से मुनि बोले— "मुनिवर ! मुझे आप क्षमा करेंगे। अभी आपका नूतन रक्त है। इसीलिये आप ऐसी उत्तजना पूर्ण बात कह रहे हैं। किसी राज्य शासन को परिवर्तित करने के तीन ही उपाय हैं। या तो दूसरा बलवान् राजा चढाई करके उसे परास्त करके शासन परिवर्तित कर सकता है। या सामादि उपायो से, अथवा सगठन करके शासक को इतना विवश कर दे कि वह शासन करने मे समर्थ ही न हो सके। बिना प्रजा के सहयोग के कोई शासक शासन नही कर सकता। तीसरा एक यह भी उपाय है, कि दैवी शक्ति का आश्रय लेकर उसे अपने प्रभाव से नष्ट कर दे। हम लोग क्षत्रिय नही जो अस्त्र शस्त्र लेकर चढाई करें। दूसरा ऐसा कोई राजा नही जिसे इसके विरुद्ध उभाड कर इसे नष्ट करा दें। प्रजा

में इतना साहस नहीं जो इसके विरुद्ध कार्य कर सके। अतः अब तीसरा ही उपाय है। आप इतने बड़े-बड़े ऋषि महर्षि, त्यागी, तपस्वी हैं। आप चाहें तो इसे अपनी दृष्टि मात्र से भस्म कर सकते है। अतः मेरी तो सम्मति है कि इस दुष्ट को शाप देकर भस्मसात् कर देना चाहिए।"

इस पर एक बहुत वृद्ध से मुनि बोले—"अरे, भैया! शापा-शापी क्यों करते हो, जो काम सीधे से शान्तिपूर्वक निकल जाय उसके लिये बहुत बखेड़ा बढाना बुद्धिमानी नहीं। शाप आदि देने से तप नष्ट होता है। मुनियों के लिये यह कार्य बड़ा निंदित है।"

इस पर वे ही गभीर तेजस्वी महात्मा बोले—"भगवन्! हम आपकी बात मानते हैं, शाप से तप नष्ट होता है। किन्तु अब आपके तप की कौन सी वृद्धि हो रही है? आप स्वेच्छा से यज्ञ नहीं कर सकते। दान नहीं दे सकते, शुभ कार्य नहीं कर सकते। गृहस्थी धूमधाम से विवाह यज्ञोपवीत आदि शुभ संस्कार नहीं कर सकते। ब्राह्मण भोजन नहीं करा सकते, जप तप कुछ भी तो नहीं हो सकता। यदि ऐसी ही दशा रही तो हम सबका तप, तेज नष्ट हो जायगा, वर्णाश्रम धर्म का लोप हो जायगा। लोग स्वेच्छाचारी होकर नास्तिक और पाखंडी हो जायँगे। वैदिक धर्म कर्म लुप्त हो जायेंगे, अतः जहाँ सर्वस्व जाता हो, वहाँ बुद्धिमानों को आधा भी देकर उसकी रक्षा करनी चाहिये। थोड़ी अपनी हानि से बहुतों को लाभ होता हो, तो लोक के कल्याणार्थ परोपकारी पुरुषों को अपनी हानि भी सह लेनी चाहिये। इसलिये हमारी सम्मति तो यह है कि उस पर दया दिखाना व्यर्थ है। उस पर अपनी दैवी शक्ति का प्रयोग करना ही चाहिये?"

इस सब वादविवाद को सुनकर उस सभा के अध्यक्ष बोले—"मेरी सम्मति तो यह है कि पहिले हम लोगो मे से कुछ विशिष्ट व्यक्ति चलकर उसे सभी ऊँची-नीची बाते समझावें। उसके कुल परम्परागत सदाचार को बतावें। धर्म का मर्म बताकर धर्म से होने वाले लाभों का वर्णन करें। प्रजा की ओर से उस पर दबाव डालें। नम्र शब्दो मे किन्तु निर्भीक होकर उसे उसका कर्तव्य बतावें। यदि वह मान जाय तब तो बहुत ही उत्तम है। जो गुड़ देने से मर जाय, उसे विष क्यों दिया जाय। यदि वह न माने तब निश्चय ही अपनी दैवी शक्ति का प्रयोग किया जाय।"

अध्यक्ष वृद्ध मुनि की बात सुनकर सभी एक स्वर मे साधु-साधु कहने लगे।

सभी चिल्लाने लगे—"यह उपाय अत्युत्तम है, ऐसा ही किया जाय, अभी चला जाय।" सर्वसम्मति से ऐसा ही निश्चय हुआ।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! उन्ही वृद्ध मुनि को आगे करके बहुत से ऋषि-मुनि महाराज वेन को समझाने के लिये उसकी राजधानी की ओर चल दिये।"

छप्पय

जब नास्तिकता करत वेन घूमे भुवि माँहीं।
तब सब ऋषि मुनि विप्र देवगण अति घबराई॥
कहें परस्पर—दुष्ट देहि अति सबनि यन्त्रणा।
धर्म कर्म कस होहि करहिं मिलि विप्र मन्त्रणा॥
सबकी सम्मति जिह भई, पहिले चलि समझाइंगे।
जो नहिं माने मन्द मति, तो फिरि ताहि बताइंगे॥

मुनियों का जाकर वेन को समझाना

(२५५)

नृपवर्ये निबोधैतद्यत्ते विज्ञापयाम भोः ।
आयुः श्रीबलकीर्तीनां तव तात विवर्धनम् ॥
धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनःकायबुद्धिभिः ।
लोकान्विशोकान्वितरत्यथानन्त्यमसङ्गिनाम् ।*

(श्रीभाग० ४ स्क० १४ अ० १४, १५ श्लो०)

छप्पय

यो निश्चय करि गये भूप ढिग मुनि उपकारी ।
बोले वचन विनीत, वेन सुनि विनय हमारी ॥
च्यों करवाये बद यज्ञ, व्रत, दान, धर्म वर ।
च्यों मेटी मर्यादा वेद की अतिशय सुखकर ॥
राजन् ! तुमरे राज्य महँ, होहिं यज्ञ जो विधि सहित ।
तो होवें सबई सुखी, प्रजा व्याधि पीडा रहित ॥

जिनका सभी श्रेणी के पुरुष स्वागत सत्कार करते हैं, जो सर्वत्र सभी स्थानों मे माने और पूजे जाते है, उन्हें यदि किसी

---

*मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! सब मुनियों ने राजा वेन से जाकर कहा—"हे नृपवर्य ! हम कुछ आपसे निवेदन करना चाहते हैं, उस पर कृपया आप ध्यान दें ! हमारा कथन आपकी आयु, श्री, बल और यश की वृद्धि के ही निमित्त होगा । जो निष्काम पुरुष

अभिमानी पुरुष से स्वय मिलने जाना पडता है, तो मरण के समान कष्ट होता है। अभिमानी तो अपनी ऐंठ मे उच्चासन पर डटा रहता है, ये सर्वत्र सत्कार पाने वाले पुरुष उसके सामने अत्यन्त सकोच के साथ जाते हैं, तब वह अपनी मूँछो पर और भी ताव देने लगता है। अपनी हेकडी को और भी जताता है। सम्माननीय पुरुषो को देखते ही उसका अभिमान अत्यधिक बढ जाता है तथा उसी के आवेश मे वह उनका अपमान करता है। उनसे अकडकर बाते करता है। भगवान् ऐसे पुरुषो का कभी स्वप्न मे भी मुख न दिखावें। किन्तु इस ससार मे कडवे मीठे सभी अनुभव प्रारब्धानुसार करने ही पडते हैं। सभावित पुरुषो को इससे दुखद, कडवा और लज्जाजनक दूसरा कोई भी प्रसग नही आता, फिर भी मनस्वी पुरुष समयानुसार इसे भी सहते हैं। परोपकार प्रवृत्ति वालो को पग पग पर ऐसे अपमानो को सहना पडता है, उन्हे यह तिरस्कार-जन्य विष का घूँट हँसते हँसते पान करना पडता है।

मैत्रेय मुनि कहते है—' विदुरजी ! सर्वसम्मति से सभी सम्माननीय ऋषि मुनि एकत्र होकर वेन की राजसभा मे गये। उस समय वेन राजसिंहासन पर बैठा हुआ मन्त्रियो से पूछ रहा था, कोई यज्ञ तो नही करता ? कोई इन बेकार ब्राह्मणो को दान तो नही देता ? कोई हाहु हाहू करके वेदपाठ करके लोगो के कानो को कष्ट तो नही देता ?"

मन्त्री हाथ जोडे हुए कह रहे थे—"देव ! और सबने तो

मन, वाणी, शरीर तथा बुद्धि के द्वारा जो आचरण करते हैं, उनका वह धर्माचरण शोकरहित लोक तथा अनन्त मोक्ष पद को प्रदान करने वाला होता है।"

आपके प्रबल पराक्रम के सम्मुख सिर झुका दिया है, किन्तु कुछ ऋषि मुनि अभी ......"

बीच में ही बात काटकर बोला—"हाँ, मुझे पता है, ये जटा दाढी वाले बडे बदमाश होते हैं। इन सबकी दाढ़ियाँ नुचवा दो। इन सबको रुण्ड मुण्ड करदो। इनके यज्ञपात्र छीन लो। सभी सामग्रियो को अग्नि मे जला दो। ऐसा विधान बना दो कि बिना पूछे कोई भी अग्नि मे घृत तथा अन्नादि न जलावे। सबके आहार की सख्या करदो। इतना ही अन्न मिलेगा। जिससे कोई ब्राह्मण भोजन, श्राद्ध, उत्सव, अतिथि पूजन न कर सके। उतना अन्न दो जिससे सबका पेट ही न भरे। वस्त्रो पर भी प्रतिबन्ध लगा दो। घृत, शर्करा सब नाप तोल कर मिले। हत्या की जड ये बाबाजी और निठल्ले ब्राह्मण ही हैं। इन्ही ने किसी को ऊँचा बना रखा है, किसी को नीचा। ऐसी ऐसी ठग विद्या की पुस्तकें बना रखी हैं, कि पैदा होने से लेकर मरने तक इनके ही पेट को भरते रहो। इनके ही मास को बढाते रहो। बच्चा पैदा हुआ, ब्राह्मणो को दान दो, नादी-मुख श्राद्ध करो, यह करो, वह करो। फिर छठी करो, नामकरण सस्कार करो, बाल बनवाओ तो भी चूडाकर्म मे इनकी ही तोद मे डालो। आज कर्णछेदन है, कल अक्षरारम्भ है, फिर यज्ञोपवीत है, समावर्तन है, विवाह आया। घर भर मे खल-बली मच जाती है, ग्राम भर मे कुहराम मच जाता है, सभी उद्विग्न हो जाते हैं। वर्षों पहिले से सामग्री जुटाते हैं। यह ला वह ला। चलियो रे, लइयो रे, मेरे विवाह है, लगन हैं पीरी चिट्ठी है। अरे विवाह हुआ कि कोई आफत आई। सप्ताहों पहिले से धूमधाम नौबत तुरई से कोलाहल। जब देखो तब पुरोहित जी थाली मे अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, कलाया, सुपारी

और दक्षिणा लिये पूजन को तैयार है। तेल चढे तो पूजन, कङ्गण बंधे तो पूजन, छीक ले तो पूजन, करवट बदलो तो पूजन ये सब पैसा पैदा करने के उपाय है। ऐसा लोगो को बाँध रखा है कि पुरोहित के बिना कुछ न हो, घर मे बच्चे भूखा मर रहे हैं, अन्न के बिना चिल्ला रहे हैं, किन्तु पुरोहितजी को गरमागरम पूडियाँ चाहिये। साग नही है अचार नही है। मीठे के बिना ब्राह्मण सन्तुष्ट नही। जब तक हलुए मे से घृत न टपके तब तब पितरो की तृप्ति नही। कैसा पाखंड रच रखा है। खिला पिला कर दक्षिणा न दो, तो सब खिला या पिलाया व्यर्थ गया। कैसी कैसी युक्तियाँ लगा रखी हैं। भोले भाले लोगो के ठगनेको कैसे कैसे श्लोक गढ रखे हैं। इन ब्राह्मणो का पेट क्या है समुद्र की वाडवाग्नि है। कभी यह भरता ही नही। घर मे मुरदा मरा पडा है ब्राह्मण को भोजन कराओ। महापात्र जब तक श्राद्ध न करा दे शव को फूँक नही सकते। अब साल भर तक श्राद्ध पहिले दिन का पिंड श्राद्ध दशाहश्राद्ध श्राद्ध तेरही श्राद्ध मासिक, श्राद्ध वर्षी, शैयादान जाने क्या क्या पाखड रचे रखे हैं। कभी देवता के नाम से, कभी पितरो के नाम से, कभी यक्ष गधर्वो के नाम से सर्व का ठेका इन बामनो ने ही ले रखा है। इन के पेट मे पहुँच गया मानो सब को मिल गया। हम तो यही करेंगे। चिट्ठियाँ भेजने को नौकर न रखा करेंगे। सब चिट्ठियाँ इन मोटी मोटी तोद वाले ब्राह्मणो के पेट मे डाल दिया करेंगे। यदि जिनके नाम की चिट्ठी है इनके पेट मे डालने से पहुँच जायगी तब तो हमारे पैसे बचेंगे। न पहुँची तो इनके पेटो को फडवा दिया करेंगे।"

इस प्रकार को न जाने कितनी ऊटपटाग बातें बक रहा

था। उसी समय दुर्भाग्यवश ऋषि मुनि भी पहुँच गये। दूर से ही देखा बड़े बड़े जटाधारी, दाढ़ी मूछ वाले, स्थूलकाय ऋषि, महर्षि, ब्राह्मण राजसभा की ही ओर चले आ रहे हैं। वे सब उँगलियों मे कुशाओं की पावित्रियां पहिने हुए थे। हाथों में कुशाओं का मूंठा ब्रह्मदण्ड लिये हुए थे। बड़े संकोच के सहित वे सिंहासन के समीप आये। देखते ही वेन का सम्पूर्ण शरीर क्रोध और द्वेष से जलने लगा। उसने सोचा—"ये ही धूर्त मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे हैं। मेरे चरों ने आकर बताया है, ये ही मेरी आज्ञा के विरुद्ध संगठन करके सभा कर रहे थे। व्याख्यान दे रहे है। अच्छी बात है, आज इन सबको समझूँगा। मुनियों को देखते ही लाल पीली आखें करके और अकड के साथ सिंहासन पर बैठ गया। ऋषियों का न तो स्वागत सत्कार ही किया और न उनसे बैठने को ही कहा।

बेचारे ऋषि मुनि खड़े के खड़े ही रह गये। वेन के इस व्यवहार से जो चढ़ती अवस्था के ऋषिकुमार थे, उनका रक्त उबलने लगा। किन्तु वृद्ध पुरुष तो बड़े गम्भीर होते हैं, वे तो समय की गति देखते देखते गम्भीर हो जाते हैं, आवेश में आकर सहसा किसी कार्य को नही कर डालते, अतः इतना अनुचित व्यवहार होने पर भी वे सहसा उत्तेजित नही हुए। क्रोध तो पहिले से ही उन्हें वेन के ऊपर आ रहा था, इसकी इस अशिष्टता से वह और भी बढ़ गया, किन्तु उसे उन्होंने गूढ रखा। क्रोध को छिपा कर ऊपर से हँसते हुए वे मुनि बड़े ही विनीत वचनों से उससे बोले—"हे राजराजेश्वर! हम आप से कुछ निवेदन करने आये हैं।"

अकड़कर वक्र दृष्टि से देखता हुआ अवहेलना के स्वर में वेन बोला—"कहो, क्या कहना चाहते हो?"

वृद्ध मुनि बोले—"राजन् ! हम जो कहे उसे आप कृ करके ध्यान पूर्वक सुनें। हम आपके हित की ही बात कहेंगे हमारी बात मानने से आपकी आयु की, बल की, यश औ शौर्य की वृद्धि होगी।"

कड़ककर वेन बोला—"बहुत भूमिका की आवश्यकता नही अपना प्रयोजन कहो।"

वृद्ध मुनि निर्भीक होकर बोले—"देखिये, राजन् ! आपक जन्म पवित्र मनुवंश मे हुआ है, आपके ही पूर्वज उत्तानपाद ध्रुव, उत्कल तथा आपके पिता महाराज अंग बडे ही धर्मात्म यशस्वी हुए हैं। *ससार मे सभी असार है, एकम त्र धर्म ही सा* वस्तु है। आपके पूर्वजो ने जिस धर्म का आचरण किया है, व धर्मलोप नही होना चाहिये। आपको अपने कुलागत सदाचा का सदा सर्वदा समाहित चित्त से पालन करना चाहिये महाराज ! मनुष्य मन, वाणी देह तथा बुद्धि द्वारा जो जिस ध का श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ निष्काम भाव से आचरण करते है व अनासक्त बुद्धि से किया हुआ निष्काम धर्म अक्षय लोकों म तथा मुक्ति को भी देने वाला होता है। जिस धर्म के द्वारा आ तक प्रजा का कल्याण हुआ है और आगे भी उसी के द्वारा होग वह धर्म आपके द्वारा नष्ट न हो। आप अपने पूर्वजो के प चिह्नो का अनुसरण करें। प्राचीन पुण्य पथ से स्खलित न हो जो पूर्वजो के पुनीत पथ से भ्रष्ट हो जाता है, वह अवश्य ह ऐश्वर्यहीन होकर दुखी होता है। अत. आप सनातन राजध का अनुसरण करें। उसकी अवहेलना न करें।"

वेन ने कहा—"सन तन राजधर्म नाम की कोई चिड़िया या कोई दो चार पैर वाला अन्य जन्तु ?"

धैर्य के साथ वृद्ध मुनि बोले—"राजन् ! सनातन राजधर्म न तो चिड़िया है न कोई इन चर्म चक्षुओं से दिखाई देने वाला दो हजार पैर का जन्तु । वह तो एक सर्वव्यापक देव है । दुष्ट मंत्री दुष्ट राजकर्मचारी, अधम अधिकारियों तथा चोर डाकुओं से प्रजा की रक्षा करना न्यायानुकूल प्रजा से षष्ठांश कर लेकर उसके पुण्य कार्यों में सहयोग देना यही सनातन राजधर्म है। इस धर्म का पालन करने वाला राजा इस लोक तथा परलोक दोनों में सुख पाता है । जिस धर्म प्रधान राजा के राज्य में वर्णाश्रम धर्म का, युगों के विशिष्ट विशिष्ट धर्मों का, तत्तद्युगों के अनुरूप तत्तद् यज्ञों द्वारा यज्ञपुरुष का यजन किया जाता है, उसी धार्मिक राजा पर भूतभावन भगवान् प्रसन्न होते हैं ?"

वेन ने अवहेलना के स्वर में पूछा—"भूत-भावन भगवान् कौन है ? कहाँ रहता है ?"

मुनि बोले—"राजन् ! वे सर्वात्मा हैं सब स्थानों में सब प्राणियों के भीतर बाहर वे निवास करते हैं । वे सब के ईश हैं।"

वेन ने कड़ककर कहा—"क्या सम्पूर्ण जगत् का एक मात्र जगदीश्वर मैं नहीं हूँ ?"

वृद्ध मुनि ने कहा—"महाराज ! आप अवश्य जगदीश्वर हैं, किन्तु वे श्रीहरि तो जगदीश्वरों के भी ईश्वर हैं । यदि वे प्रसन्न हो जायँ तो संसार में यह लौकिक तथा पारलौकिक कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।"

वेन बोला—"तुम लोगों को मेरी प्रसन्नता अप्रसन्नता का महत्व अभी मालूम नहीं है।"

मुनि बोले—"हाँ राजन्, हमे मालूम है। आप चाहे जो कर सकते हैं। किन्तु जिनके पादपद्मो मे इन्द्रादिक देवता अपने मणिमय किरीटो के द्वारा सदा प्रणाम करते हैं, अजलि बाँधे सभी लोकपाल सदा खडे रहते है, और अत्यत आदर के सहित अनेको भेंट समर्पण करते हैं, उन श्रीहरि के सम्मुख आप कुछ भी नही हैं। वे वेद-स्वरूप श्रीहरि द्रव्यमय तथा तपोमय हैं। सम्पूर्ण लोक और लोकपाल उन्ही के अश भूत है, वे यज्ञस्वरूप हैं, अपने अपने उत्कर्ष के निमित्त सभी उनकी नाना यज्ञो द्वारा उपासना करते है। उन भगवान् की न आपको बराबरी करनी चाहिये, न उनकी आज्ञा के विरुद्ध कोई आचरण करना चाहिये। आपके राज मे बडे बडे यज्ञ हो। सर्वत्र ब्राह्मणो का सम्मान हो। श्रीहरि के उद्देश से अनेक उत्सव हो। भगवान् के अगभूत सभी देवताओ का पूजन हो। चारो ओर दान, धर्म, पुण्य और पावन काय हो। सुन्दर सुन्दर स्वादिष्ट पदार्थों द्वारा वेदपाठी ब्राह्मण सन्तुष्ट किये जायँ, ऐसा यदि आप करेंगे तो देवता आपको प्रसन्न होकर अनेक दुर्लभ वर देंगे यदि आप उनका तिरस्कार और अपमान करेंगे, तब फिर गोविन्दाय नमो नम हो जायगा। ये बडी लाल लाल आँखें फटी की फटी ही रह जायँगी।"

मैत्रय मुनि कहते है—"विदुरजी! मुनियो की ऊपर से नम्र दिखाई देने वाली किन्तु भीतर से दृढता और साहस से भरी बातें सुनकर वेन *आग बबूला हो गया* उसके रोम रोम

से क्रोध की चिनगारियाँ निकलने लगी। वह क्रोध करके ऋषियों की ओर थोड़ी देर तक देखता का देखता ही रह गया। कुछ बोला नहीं।

छप्पय

हैं मनु को अति विमल वंश ध्रुव जनमे जामे।
भये भूप उत्तानपाद हरिपद रत तामे॥
वर्णाश्रम शुभ धर्म करो पालन तुम ताकूँ।
उज्जवल कुल की कीर्ति करो कलुपित च्यौं वाकूँ॥
वेन कोप की अगिनि महँ, मुनिगण-वच घृत सम भये।
बोल्यो करिकें कोप अति, ये आये मम गुरु नये॥

वेन द्वारा मुनियों का अपमान और उसकी अपमृत्यु

(२५६)

बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः ।
ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥
अवजानन्त्यमी मूढा नृपरूपिणमीश्वरम् ।
नानुविन्दन्ति ते भद्रमिह लोके परत्र च ।।*

(श्री भा० ४ स्क० २४ अ० २३, २४ श्लो०)

छप्पय

फिरि यो बोल्यो वेन बड़े मूरख हो तुम सब ।
मैं ई सब को ईश मोइ पूजो तुम मिलि अब ॥
मोइ छोडि के और ईश कोई मति जानो ।
मूरखता कूँ तजो, महेश्वर मोकूँ मानो ॥
जो अब बक बक करी तो, लूगो जीभ निकारकें ।
जीवित चाम उतारिकें, भुस दुंगो भरवाइके ॥

अहकारी को उपदेश देना, उपदेश की दुर्दशा करना है। जो जानते नही भोले भाले हैं, उन्हे समझाया जा सकता

---

*मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! मुनियो की बातें सुन कर वेन बोला—"तुम लोग बड़े मूख हो रे ! तुम सब अधर्म को धर्म माने बैठे हो। तुम तो उसी कुलटा स्त्री की भाँति हो जो अपने भरण

है। जिनमे बुद्धि है विवेक है। किन्तु किसी बात में उन्हें सन्देह है, उनकी समझ नही आती, उन्हे और भी सरलता से युक्तियो द्वारा, शास्त्रीय प्रमाणो तथा बडे बडे सत महात्मा तथा महा-पुरुषो के जीवन सम्बन्धी उदाहरण देकर समझाया जा सकता है किन्तु जो वास्तव मे हैं तो मूख, परन्तु अपने को माने बठे हैं बडा पडित ऐसे अभिमानी ज्ञानलवदुर्विदग्ध पुरुषो को समझाने मे कोई समथ नही। अभिमान तथा अहकार के कारण वे सब को तुच्छ समझते हैं। जो उनकी हाँ मे हाँ मिलाता रहे, वह तो ठीक, जिसने उनके विरुद्ध तनिक भी चीचपड की वही उनका शत्रु। उसे नष्ट करने, सताने के लिये वे प्राणपन से प्रबल प्रयत्न करते हैं। अत ऐसे अधकचरे अभि मानी मूर्खों को तो कोई महाशक्तिशाली अपनी प्रबल शक्ति द्वारा ही अन्याय से रोक सकता है। दूसरे साधारण लोगो की शक्ति के तो वह बाहर हो जाता है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—',विदुरजी! जब ऋषि मुनियो ने आकर अत्यन्त विनीत किन्तु दृढता के स्वर मे वेन को समझाया, उसे उसका कर्तव्य बताया, धर्म का निष्कटक सुखकर मार्ग उसे सुझाया, तब उसे बडा क्रोध आया। उसने दांत पीसते हुए, टेढी भौं करके लाल लाल क्रोध भरे नेत्रो से उन्हें देखते हुए गरज कर बोला—तुम सब लोग बडे मूर्ख हो रे! जो मेरे सम्मुख आकर ऐसी धृष्टता करते हो? तुम लोगो का इतना साहस? ऐसी हेकडी? अब तुम्हारी पोल नही चलेगी

पोषण करन वाले पति को छोडकर जार पति की उपासना करती है। जो तुम्हारे जैसे मूर्ख पुरुष मुझ राजा रूप परमेश्वर का अनादर करते है, वे न इस लोक म सुखी होते हैं न परलोक म।"

मेरे पूर्वज तो सब के सब मूर्ख थे, जो तुम सब बेकारो को इस प्रकार सिर पर चढा रखा था। तुम्हे ही सर्वेसर्वा बना रखा था। तुमने भी उन्हे भली प्रकार काठ का उल्लू बना रखा था। जब कहो, तब वे पानी पीवें, जब मुहूत बताओ तब आगे पैर रखें। मेरे सामने तुम्हारी दाल नही गलेगी। अब वह अधेर न चलेगा। अब मारे कोडो के तुम्हारी चमडी उधेड ली जायगी। तुमने समझ क्या रखा है। तुम मुझे क्या समझते हो। ईश्वर तो मैं हूँ, तुम सब का स्वामी तो मैं ही हूँ मूर्खो! अरे, तुम तो उस व्यभिचारिणी जारिणी दुष्टा स्त्री के समान हो, जो अपने प्रत्यक्ष पति को छोडकर जार पति की सेवा करती है। पति का अपमान करने वाली वह कुलटा स्त्री गर्हित है, निंदित है। उसी प्रकार तुम भी निंदित हो। छि छि तुम लोगो को लज्जा नही आती। चले है हमे सिखाने के लिए। बकरे की सी दाढी हिलाकर २ तुम सब की दाढियो को नुचवाऊँगा। जीवित ही खाल खिचवाऊँगा आधा जमीन मे गडवा कर कुत्तो से नुचवाऊँगा, तुम्हारी खालो मे भूसा भरवा भरवाकर राजसभा के द्वार पर लटक-वाऊँगा, जिससे फिर कोई ऐसा दुस्साहस न कर सके। अपने ईश्वर मुझ राजा का अपमान करके तुम्हें न इस लोक मे सुख मिल सकता है न परलोक में, क्या तुम लोग मुझे नरपति, जगदीश्वर, सब लोको का स्वामी नही मानते।"

वेन की ऐसी क्रोध—भरी बातें सुनकर ऋषि मुनि तो चुप हो गये। पीछे खडे हुए युवक ऋषि बडे कुपित हुए। आगे के बडे बूढे मुनियो ने हाथ के सकेत से उन्हे रोका। इस पर वेन फिर बोला—"तुम लोग बोलते क्यो नही ? मेरी बात का उत्तर क्यो नही देते ? क्या तुम लोग मुझे ईश्वर नही मानते ?"

इस पर वृद्ध मुनिशांति के साथ बोले—"देव । यह हम कब कहते हैं आप ईश्वर नही । आप नरपति हैं, लोको के ईश्वर हैं, राजा है । फिर भी भगवान् यज्ञपति आप से भी श्रेष्ठ हैं । आपके भी पूजनीय हैं आप ········

बीच मे वेन घुडककर बोले—"कौन यज्ञपुरुष ? अरे, मूर्खों यज्ञपुरुष तो मैं ही हूँ । व्यभिचारिणी स्त्री की भाँति पाप मत करो । मुझे ही अपना पति मान कर जारूप उस यज्ञपुरुष को भूल जाओ । ईश्वर परमात्मा मैं ही हूँ, मेरे ही निमित्त यज्ञ करो, मेरे ही नाम का जप करो, मेरी ही पूजा करो, मुझे ही भट दो, मेर ही मुख मे आहुति दो । क्यो तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गई है । मुझ प्रत्यक्ष देव को छोडकर तुम कल्पित देव के पीछे क्यों पडे हो ?'

गभीर होकर वृद्ध मुनि बोले—तब, आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन त्रिदेवो को नहीं मानते हैं ?"

वेन बोला—'मानते क्यो नही, हम तो मानते हैं । तुम सब मूर्ख ही नही मानते । मैं सृजन करता हूँ इसलिये ब्रह्मा हूँ, समस्त प्रजा का पालन करता हूँ अत विष्णु हूँ, तुम जैसे दुष्टो का सदा सहार करता रहता हूँ अत रुद्र हूँ । तीनो देव मेरे शरीर मे वास करते है ।"

सिर हिलाते हुए उपेक्षा के स्वर मे मुनि बोले—तब आप अन्य देवो को लोकपालो को भी न मानते होगे ?"

वेन बोला—' तुम लोगो के मस्तिष्क मे गोबर भर रहा है या कीचड भरी है ? अरे पूर्व दिशा का मैं पालन करता हूँ अत मैं इन्द्र हूँ, दक्षिण का पालन करता हूँ अत यमराज हूँ, उत्तर का पालन करता हूँ, अत कुबेर हूँ, पश्चिम का पालन करने से मैं ही वरुण कहाता हूँ, वायव्य दिशा का पालन करने

से वायु, ईशान के पालन करने से ईश, नैऋत्य का अधिपति होने से निऋ ति तथा आग्नेय दिशा का स्वामी होने से अग्नि हूँ सूर्य चन्द्रमा, पृथिवी सब की शक्ति मुझमे है। इसीलिये राजा को सर्वदेवमय कहा है। राजा जो चाहे सो कर सकता है। जिसे चाहे दड दे सकता है। प्रसन्न होने पर रक को राव बना सकता है। अप्रसन्न होने पर कुबेर को भिखारी कर सकता है। ब्राह्मण देवताओ! तुम अपनी कुशल चाहते हो, तो मेरी बात मानो, इस मूर्खता और मत्सरता को छोड दो। प्राचीन प्रथाओ को तोड दो, आस्तिकता के प्रवाह की मेरी ओर मोड दो। मुझे ही सब कुछ मानोगे, तो तुम्हारा कल्याण है, नही तो तुम सब की हड्डी पसली पृथक पृथक करके कोल्हू मे पिलवा दूँगा। तुम्हे अपने नाना का अतिथि बना कर उनके पास भिजवा दूँगा। समझे कुछ? बोलो, क्या कहते हो?

युवक मुनि दाँत पीसने लगे। वृद्धो के ओठ फडकने लगे। सब की आँखो के डोरे लाल हो गये। वृद्ध मुनि फिर गरज कर बोले—तुम वेद को भी नही मानते

वेन बोला—मेरी वाणी ही वेद है। मेरी आज्ञा ही वेद वाक्य है। यदि तुम मुझे बलि न दोगे, मेरा पूजन न करोगे तब तुम इस पृथिवी पर नही रह सकते। अब बहुत हो गया। अधिक बकबक करने की आवश्यकता नही। एक बात का उत्तर दो। मुझे ईश्वर मानते हो या और किसी ईश्वर की आशा लगाये हो। यदि और की आशा है, तो मैं अभी तुम्हारी खबर लेता हूँ। देखें वह तुम्हारा कल्पित ईश्वर तुम्हारी रक्षा करता है या नही।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! वेन की यह बात असह्य

हो गई। सभी मुनि अपने को रोकने में असमर्थ हो गये। सभी ने एक स्वर से कहना आरंभ कर दिया—इस दुष्ट को मार डालो, इस विपरीत बुद्धि वाले मूर्ख को अब इस उच्चासन पर न रहने दो। इस भ्रष्टमंगल नीच को सिंहासन से नीचे पटक दो। यह महापापी स्वभाव से ही दुष्ट है पाप ही इसका परम इष्ट है। यह सनातन वैदिक धर्म से भ्रष्ट है। यह स्वपच और चाडालों से भी निकृष्ट है। वेद और ब्राह्मणों की निंदा करने वाला यह पापी अत्यंत ही अशिष्ट है। यदि यह इसी प्रकार जीता रहा तो यह सम्पूर्ण संसार को भस्म कर डालेगा। सब को मार डालेगा। यह अब राजसिंहासन के योग्य नहीं। जिन श्रीहरि की कृपा से ही इतना ऐश्वर्य प्राप्त है उन्ही भगवान् की यह निंदा करता है। इसका आज अंत कर देना चाहिये। इस प्रकार सब के क्रुद्ध होने पर वह घबड़ा गया। आगे के मुनियों ने पिछले उत्तेजित हुए मुनियों को रोक कर, वेन की ओर क्रोध भरी दृष्टि से देख कर एक बार 'हुँ' ऐसा शब्द किया। 'हुँ' शब्द के होते ही वेन सिंहासन से मर कर उसी प्रकार नीचे गिर पड़ा, जैसे केले का वृक्ष पहाड़ से कटकर गिर पड़ता है।

इस पर कुछ मुनि बोले—"जा बेटा, अपनी ननसाल में आनन्द से रह। अपने नाना मृत्यु के घर मे आतिथ्य ग्रहण कर, वह नानी की हाथ की पूड़ियाँ उड़ा।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! वह दुष्ट मरा हुआ तो पहिले ही से था। वेद और ब्राह्मणो की निंदा करने के कारण वह हत प्राय तो था ही केवल ब्राह्मणो की हुंकार तो निमित्त मात्र थी।

इस प्रकार वेन को अपने शाप से ननसाल का रास्ता दिखा कर सभी ऋषि मुनि उसी दशा मे मृतक छोडकर अपने अपने आश्रमो को चले गये।

छप्पय

सुनत कुपित मुनि भये पुकारें मारो मारो।
राजासन तें खेंचि दुष्ट कूँ वेगि उतारो॥
पाइ परम ऐश्वर्य नीच अतिशय इतरावे।
करे वेद अपमान आज वाको फल पावे॥
यो कहि भरिकें क्रोध मे, सब मुनि मिलि हुँकृत करी।
तुरत वेन की देह तहँ, प्रानहीन ह्वैकें गिरी॥

अराजकता निवारण के निमित्त ब्राह्मणों का उद्योग

(२५७)

ब्राह्मणः समदृक्छान्तो दीनानां समुपेक्षकः ।
स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभाण्डात्पयो यथा ॥
(श्री भा० ४ स्क० १४ अ० ४१ श्लो०)

छप्पय

छाडि ताहि निरजीव गये निज निज आश्रम मुनि ।
मातु सुनीथा दुखित भई निज पुत्र मृत्यु सुनि ॥
राज्य माहि बहु भई अराजकता अति भारी ।
लूटपाट व्यभिचार कलह चोरी अरु जारी ॥
मुनिनि देश देख्यो दुखी, दया हिये उमड़ी प्रबल ।
होहि तहाँ तप कस जहाँ, निरबल कूँ ताडैं सबल ॥

देश के वातावरण का सभी सहृदय पुरुषों पर प्रभाव पड़ता है। प्रभाव तो जड चेतन सभी पर पडता, किन्तु जड उसे व्यक्त नही कर सकते, उसके प्रतिकार के लिये प्रयत्न नही कर सकते। सहृदय पुरुष देश की दुर्दशा देख कर दुखी होते है। उत्थान तथा उन्नति देख कर हर्षित होते हैं। जब तक हमे

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! ब्राह्मण चाहे शांत स्वभाव का कैसा भी तपस्वी क्यो न हो, यदि वह अपने सम्मुख दुखी हुए दीनो की सामर्थ्य रहने पर उपेक्षा करता है, तो उसका ब्रह्म तेज उसी प्रकार बह जाता है जैसे फूटे घड़े का पानी बह जाता है।"

र का भान है, सुख दुख का अनुभव है, तब तक प्रभु-प्रीत्यर्थ
ाकार और दयाकरनी चाहिये। यह कहदेना सब अपनेप्रारब्ध
ोग भोग रहे है, यह अकर्मण्यता का चिन्ह है। प्रारब्ध का
भोग रहे है, यह ठीक है। किन्तु तुमको किसी की
ध को मेटने की कामना से नही अपनी दयावृत्ति को
ा के लिये, सबमे वे ही सर्वान्तिर्यामी विराजमान है, इस
ा को दृढ करने के निमित्त प्रभु-प्रीत्यर्थ परोपकार करना
ये। जो ऐसा नहीं करते दीनो पर दया नही दर्शाते, अपने
ो होते हुए अन्याय का, सामर्थ्य होने पर भी विरोध नही
, उसके प्रतीकार के लिये शक्ति भर प्रयत्न नही करते
जप, तप, नियम, व्रत, सयम सभी व्यथ है।

ैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी! जब सभी ऋषि अपनी
: से वेन को निर्जीव करके उसे वही मरा का मरा छोड कर
ाये, तब सम्पूर्ण राजसभा मे सन्नाटा छागया। सभी हृदय
ान्न थे, कि अच्छा हुआ यह कटक कट गया, किन्तु फिर
ाष्टाचार के लिये शोक प्रदर्शित करने लगे। शीघ्रता के
यह समाचार सुनीथा देवी को अन्त पुर मे दिया गया।
ो की हुँकार के द्वारा अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार
ही माता दौडी आई। अपने दुरात्मा मृतक पुत्र को देखकर
छाती फटने लगी। सभी ने कहा—"अब जो हो गया सो
ा, अब इनका दाहसस्कार करना चाहिये।'

ह सुनकर महारानी सुनीथा ने दृढता के स्वर मे कहा—
मेरे पुत्र का दाहसस्कार न होगा। जिन मुनियो ने कोप
मारा है, वे ही कभी कृपा करके इसे जिला भी सकते हैं।
र सकते है, वे ही प्यार भी कर सकते हैं। मेरे बच्चे की
ब मिलकर रक्षा करो। इसे मृतक मत मानो। समझो यह

सो रहा है। महारानी की आज्ञा का सभी ने पालन किया। बहुत बडे कडाह् मे तेल भरकर उसमे अनेक औषधियाँ सुगन्धित द्रव्य डालकर वेन के शव को सुरक्षित रखा। सुनीथा उसकी बडे यत्न से जीवित की भाँति देख रेख और सेवा शुश्रूषा करने लगी।

इधर वेन के मरते ही चोर डाकुओ की बन आई। राज्य सिंहासन खाली हो जाने से चारो ओर अराजकता बढ गई। जिधर देखो उधर ही लूटपाट मच रही है, मारधाड हो रही है। राज्य के कर्मचारी मनमानी कर रहे हैं। सब से घूस लेने लगे हैं। रक्षक चोरो से मिलकर डाका डला रहे हैं। बलवान् निर्बलो के धन को स्त्रियो को बलात्कार हर कर ले जा रहे हैं। न किसी को किसी का भय है' न सकोच। सभी मनमानी कर रहे हैं। धर्म कर्म से हीन तो सब पहिले ही से थे। अब तक वे धर्म बुद्धि से पापो से निवृत्त नही थे। भय के कारण अवसर न मिलने से वे चोरी जारी से दूर थे। अब अवसर पाते ही वे बित्तापहरण, व्यभिचार आदि करने लगे, दूसरो के धन, पशु तथा स्त्रियो को हरने लगे।

एक समय सभी ऋषि मुनि भगवती सरस्वती के निर्मल जल मे स्नान करके अग्निहोत्र आदि से निवृत्त होकर परस्पर मे कृष्णकथा कर रहे थे। उस समय उन्हे अनेक अराजकता-सूचक उत्पात दिखाई दिये। इससे मुनियो के मन मे चिन्ता हुई कि कही राजा के बिना देश मे फिर अराजकता तो नही फैल गई। इतने मे ही वे क्या देखते हैं, बहुत से डाकू हाथी घोडो पर चढे हुए लोगो का धन लिये हुए भागे जा रहे हैं। उनके साथ मे अनेक स्त्रियाँ हैं जिन्हे वे बलात्कार पकड लाये हैं। वे रो रही हैं, चिल्ला रही हैं, सर्वत्र हाहाकार मचा है। इस करुण

क्रन्दन को सुनकर मुनि का हृदय करुणा के कारण द्रवीभूत हो उठा। उनमे से किसी ने आँसू बहाते हुए कहा—"अरे, यह तो बड़ा अनर्थ हुआ, हम लोगो को इसका कुछ उपाय करना चाहिये।"

इस पर एक बोले—"अजी अब हर समय उपाय ही करते रहोगे या कुछ जप, तप. पूजा, पाठ भी करोगे। यह तो ससार है, कोई मरता है, कोई जीता है, कोई दुखी है, कोई किसी को प्यार करता है, कोई सतान पैदा करता है, कोई वध कर देता है। सभी कर्मों के अधीन हैं। जीव ही जीवो का जीवन है। अतः इन झझटों को छोडो, राम राम करो। कोई राजा हो हमे क्या हमें राज्य तो करना नही, भजन करना है, सो चुपचाप बैठकर भजन करो। अब इन्ही सब झझटो मे फँस गये तब तो भजन पूजन हो चुका।"

इसके सुनते ही एक बडे सौम्य गम्भीर मुनि बोले—"आपने भजन का अर्थ क्या समझा है? भगवान् की आराधना भगवान् अग्नि मे ही बैठे हो दूसरे स्थान मे न हो सो बात तो है नही अखिलात्मा श्रीहरि तो सब मे समान रूप से व्याप्त हैं। कोमल दयावान हृदय मे उनका प्रादुर्भाव होता है। जैसे सूर्य सर्वत्र समान भाव से प्रकाश करते हैं। किन्तु काँच मे उनका प्रकाश स्पष्ट दिखाइ देता है। पाषाण में तम के आधिक्य से वे कम प्रकाशित होते हैं। अतः जो लोक के ताप से तप कर जीवो पर दया दर्शाता है, श्रीहरि उसके हृदय मे शीघ्र ही आ जाते हैं। दीन दुखियो पर दया करना यह उस अखिलात्मा अच्युत की परमाराधना है।

अपने सम्मुख कोई कष्ट पा रहा हो, मर रहा हो और उसे निवारण की जिसमे शक्ति हो, शक्ति रहने पर भी जो उसकी

उपेक्षा कर देता है, उसका जप, तप, सयम, नियम, तीर्थव्रत, यज्ञ, अनुष्ठान, योग, समाधि, मौन, वेदाध्ययन, कथावार्ता तथा अन्य भी शुभ कर्म व्यर्थ हैं। इसलिये हम लोगों को मिलकर इस विषय मे उद्योग करना चाहिए। प्रजा को दस्युओं के चगुल से निकालना चहिये। यह अराजकता शान्त हो। इसके लिये पूर्णरीत्या प्रयत्न करना चाहिये। शीघ्र ही किसी को राजा बना देना चाहिये।"

इस पर एक दूसरे मुनि बोले—"आप राजा किसे बनावेंगे? वेन तो अपने पाप के कारण मारा ही गया। महाराज अग के वही एक पुत्र था। राजपुत्र के अभाव मे धर्मपूर्वक अन्य राजा कैसे बन सकता है? कलियुग हो तब तो चाहे जो राजा बन जाय। किन्तु वर्णाश्रम धर्म के पालन के लिये तो यह अत्यावश्यक है कि विशुद्ध राजवश का क्षत्रिय ही नरपति हो सके।"

इस पर उन सब के कुलपति ने कहा—"देखो, भाई! वेन अपने पाप से मारा गया। यस सत्य बात है, किन्तु महाराज स्वायभुव मनु का पुण्य साधारण नहीं है। वश तो पाप के कारण नष्ट होता है। जिस वश मे पाप बढ जाता है, उस कुल का नाश हो जाता है अथवा उसकी कुलागत विशुद्ध परम्परा नष्ट होकर सकरता आ जाती है। महाराज मनु के पुण्य का इतना प्रभाव अभी तक है, कि अग का वश नष्ट न होना चाहिये। राजर्षि अग की वशपरम्परा निर्मूल न होनी चाहिये। क्योंकि इस वश में उत्तानपाद ध्रुव आदि बडे-बडे भगवत्परायण राजर्षि हो चुके हैं।"

भगवान् कुलपति की यह बात सुनकर सब ने एक स्वर से कहा—"हाँ, हाँ, अवश्य इस विषय मे उद्योग होना चाहिये। त्रिकालज्ञ मुनियो के तप मे, उनके अमोघ मत्री मे अतुलनीय

सामर्थ्य है, वे जो चाहे कर सकते हैं। जीवित को मृतक बना सकते हैं, मृतक को जीवित कर सकते है।"

तब सब मुनियो ने कहा—'तब राजधानी मे चलें और इस विषय मे जो उचित हो वह करें।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! ऐसा निश्चय करके सभी ऋषि महर्षि अपने अपने डंड कमण्डलु लिये राजधानी की ओर चलने लगे। ऋषियो के समूह को राजधानी की ओर जाते देखकर सबको विश्वास हो गया कि अब जगत् का कल्याण होगा। जिस विषय मे त्यागी, विरागी, तपस्वी उद्योग करते हैं, वह अवश्य ही सफल होता है।"

छप्पय

मुनि समदरसी शान्ति, शान्ति हित सब पुर आये।
देखि वेन को मृतक देह अति हिय हरषाये॥
वेन जाघ कूँ युक्ति सहित मुनि मथिवे लागे।
निकस्यो कारो पुरुप निरखि मुनि नहिँ अनुरागे॥
वेन देह कलमप कढ्यो, पृथक् देह ते ह्वै गयो।
मुनिनि निपीद कह्यो वचन, सो निपाद सज्ञक भयो॥

वेन अंगमन्थन से भगवान् पृथु का प्रादुर्भाव

(२५८)

अयं तु प्रथमो राज्ञां पुमान्प्रथयिता यशः ।
पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥*
(श्री भा० ४ स्क० १५ अ० ४ श्लोक)

छप्पय

मथी भुजा फिरि युगल भये लक्ष्मी नारायन ।
पृथुल कीर्ति पृथु पुरुष, अर्चि कमला जगपावन ॥
तेज, वीर्य, बल प्रभा सुलक्षण लखि मुनि हरषे ।
गावें गुन गन्धर्व सुमन सुर नभतें बरषें ॥
दक्षिण करतें पृथु भये, बायें त लक्ष्मी भई ।
प्रभु प्रकटे सुनि प्रजा की, चिन्ता सबरी नसि गई ॥

मन्त्रो मे बडी शक्ति है, तप का बडा प्रभाव है। कलियुगी पुरुष इन बातो का कभी विश्वास कर ही नही सकते। पूर्व के युगो मे मत्र सजीव तथा अमोघ होते थे। महर्षि वैशम्पायन के कहने से उनके शिष्य याज्ञवल्क्य ने जो उनसे वेदमत्र पढे थे, वे

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! वेन के बाहुओ के मथने से जो दिव्य पुरुष उत्पन्न हुआ उसे देखकर ऋषि मुनि बोले—'यह समस्त राजाओ मे प्रथम पुरुष होगा जो अपने यश का विस्तार करेगा। यह परम यशस्वी राजा 'पृथु' के नाम से विख्यात होगा।"

सब उगल दिये । वे सब तेजस्वी मत्र सजीव होकर घूमने लगे । तब गुरु की आज्ञा से तीतर बनकर उनके शिष्यो ने उन्हे ग्रहण किया । जिससे तैत्तरेयी शाखा प्रसिद्ध हुई । अब इन बातो पर कौन विश्वास करेगा ? ऋषियो ने महाराज को एक पुत्र प्राप्ति के लिये यज्ञ कराया था । एक कोरे घडे मे मन्त्रो से अभिमन्त्रित करके जल रखा था, कि प्रात काल रानी को इस मत्रपूत जल को पिलायेंगे, इसे पीते ही उसके गर्भ रह जायगा । सयोग की बात राजा को रात्रि मे प्यास लगी । बिना जाने उस मत्रपूत सम्पूर्ण जल को राजा पी गये । अब क्या हो सकता था । मत्रो की शक्ति तो व्यर्थ जाने वाली नही थी । राजाको ही गर्भ धारण करना पडा और उन्ही की कुक्षि को फाड कर जगत् प्रसिद्ध महाराज मान्धाता हुए । विश्वामित्र जी ने अपने तप के प्रभाव से नये स्वर्ग की ही रचना करदी । साराश यही है, कि तपस्वी सदाचारी वेदज्ञ ऋषि मुनि सब कुछ कर सकते है । उनके लिये भगवत्कृपा से कोई बात असभव नही ।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! अराजकता को निवारण करने के निमित्त तथा मनुवश को अविच्छिन्न बनाये रखने के निमित्त वे सभी मुनि मिलकर महाराज अग की पत्नी—वेन की जननी—सुनीथा देवी के समीप गये । वहाँ जाकर मुनियो ने पूछा—'देवि ! अब क्या किया जाय ? आपका वश नष्ट नही होना चाहिये ।"

हाथ जोड कर सुनीथा देवी ने विनीत भाव से कहा—"महर्षियो ! आप मे सभी शक्तियाँ हैं, आप जो चाहें कर सकते हैं । इसी आशा से मैंने अपने पुत्र का मृतक शरीर सुरक्षित रख छोडा है ।"

प्रसन्न होकर मुनियो ने कहा—"अच्छा अभी वेन का शरीर है, तब तो काम बन गया। उसी को मथकर हम पुत्र उत्पन्न करा देंगे। तुम उसे यहाँ लाओ।"

मुनियो की आज्ञा का पालन किया गया। वेनका मृत शरीर उनके सामने लाकर उपस्थित किया गया। उनमे से एक वृद्ध से अनुभवी मुनि बोले—"देखो! इस वेन के शरीर मे पाप भी है, मनुवंश का विशुद्ध रक्त भी है। ऐसा यत्न करो, कि पाप पाप अलग हो जाय, तब इस विशुद्ध हुए अग से विशुद्ध राजा उत्पन्न करना।"

यह सुनकर दूसरे मुनि बोले—"इसके शरीर मे तो ये सब दूध पानी की भाँति एक हो गये हैं, उन्हे पृथक् कैसे किया जा सकता है?"

इस पर वे ही मुनि बोले—"देखो, सुवर्ण मे कान्ति भी है, मल भी है। अग्नि से तपा कर उसे पिघला कर मैल पृथक् कर दिया जाता है, जब मलहीन सुवर्ण हो जाय, तब उसके कटक कुण्डल आदि जो चाहें बना सकते हैं। वे बड़े सुन्दर दिखाई देंगे प्रभावान् होगे। मल को पृथक् किये बिना वैसे ही बना लो, तो वे प्रभाहीन मैले और बुरे दिखाई देंगे। इस शरीर में जंघाओ के बीच का भाग बहुत अशुद्ध होता है। क्योंकि मलद्वार से सटा रहने से वही मृत्यु का वास है। अतः पहिले इसी अंग को मथन करो। जैसे समुद्र मन्थन के समय सर्व प्रथम विष निकला था, उसके सब कल्मष निकल जाने पर ही अमृत की उत्पत्ति हुई थी, उसी प्रकार नाना के वंश की जो इसकी हिंसा-वृत्ति है वह निकलनी चाहिये।"

वृद्ध मुनिया की आज्ञा से एक विशेष प्रकार की मथनी रई बनाई गई। उससे पहिले उसकी जघा को मथा। उसमे से सर्व

प्रथम एक काले रग का पुरुष उत्पन्न हुआ। वह ठिगना था। बाल उसके कडे, खडे हुए तथा ताम्रवर्ण के, नाक चिपटी थी। हाथ और पैर अपेक्षाकृत छोटे थे, ठोढी बडी थी, आँखे गोल और लाल लाल थी। वह कुछ दीनता के स्वर मे ऋषियो से बोला—"महर्षियो ! मैं क्या करूँ ?"

ऋषियो ने सोचा—"यह समस्त प्रजा का राजा बनने योग्य तो है नही। अत वे बोले—निषीद, निषीद अर्थात् महाशयजी ! आप बिराज जाइये।"

इस पर वह बोला—"महाराज, मैं बैठता तो हूँ, किन्तु मेरा नाम बताइये, काम बताइये, धाम बतइये और रहने का ठाम बताइये।"

इस पर एक मुनि हँसते हुए बोले—"देखिये, उत्पन्न होते ही हमने आपसे कहा—निषीद निषीद इसलिए आपकी सज्ञा निषाद होगी। आप महाराज वेन के अङ्ग से उत्पन्न हुए है, अत आप वन पर्वतो के राजा होगे उनके कल्मष भाग से उत्पन्न हुए हैं, अत कृष्णवर्ण के होगे। वन, पर्वत, नदियो के किनारे, अरण्य ये ही आपके निवास-स्थान होंगे। तीरकमान लेकर बिना वस्त्र पहिने स्वच्छन्द घूमिये, कही भी आपकी रोक टोक नही।"

निषादराज बोले—"महाराज, तीर कमान तो लिये घूमेगे, युद्ध किनसे करें यह भी तो बतादें ?"

मुनियो ने कहा—"अजी, तुम दिन भर युद्ध करो सदा युद्ध करो। बनो मे अरण्यो मे जो भी सिंह व्याघ्र, पशु, पक्षी मिल जाय उससे ही युद्ध ठान दो। बाहर न मिले। जल मे मछलियो से युद्ध करो। तुम्हारा श्रीकृष्ण का सा वर्ण है, अत वे ससार-सागर से लोगो को पार करते हैं तुम सागर और

नदियो से लोगो को पार किया करना । तुम्हारे लिये भक्षाभक्ष का भी कोई नियम नही । राम राम रटते जाओ और विहार करो । कभी साक्षात् परब्रह्म परमात्मा तुम्हारे वश के राजा से भी मैत्री करेंगे और वह उन्हे गगा पार पहुचावेगा ।" इतना सुनते ही वह निपाद जगल की ओर चला गया ।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! उसी के वशज पृथवी पर कोल, भील, गोड, धीवर, कहार, मल्लाह, निपाषद, केवट आदि अनेक नामो से विख्यात हुए । जिनमें बहुत से अरण्यो मे ही बिना घर द्वार बनाये रहते हैं । बहुत से नगरो का आश्रय लेकर कृपि आदि कम करने लगे । बहुत से नौका आदि के द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं।"

अब जब वेन की देह विशुद्ध बन गई, तो जिन हाथो के अधिष्ठातृ देव इन्द्र हैं, उन दोनों बाहुओ को मुनिगण मथने लगे । मथते मथते दायी बाहु से एक परम तेजस्वी पुरुप और बायी से परम प्रभावती त्रैलोक्य-सुन्दरी एक नारी उत्पन्न हुई । लक्षणो के जानने वाले मुनियो ने उनके लक्षण देखकर आश्चर्य और संभ्रम के स्वर मे कहा—अरे ये, तो स्वयं साक्षात् श्रीमन्नारायण हैं । अवतार के समस्त चिन्ह इनके श्रीअङ्ग मे विराजमान हैं । इस अवतार मे इनकी अनपायिनी आद्या शक्ति भी साथ ही उत्पन हुई है, यह और भी आश्चर्य की बात है । जैसे प्रभा सदा सूर्य के साथ ही रहती है, और उसी प्रकार ये लक्ष्मी देवी भी इन पुराण पुरुष का कभी साथ नहीं छोड़ती ।

किसी योनि मे भी भगवान् अवतीर्ण हो ये निरन्त उनका अनुगमन करती ही हैं। यह तो वडे आनन्द की बात हुई। अव तो हम सव लोगो के समस्त क्लेश दूर हो जायँगे। ससार से अधर्मका लोप हो जायगा, सर्वत्र धर्म की वृद्धि होगी। यज्ञयागो की धूम फिरचारो ओरमच जायगी। फिरभूमडलस्वाहा स्वाधा के सुन्दर शब्दो से भर जायगा। ये महायशस्वी आदि राजा पृथुलकीर्ति वाले पृथु के नाम से ससार मे विख्यात होंगे, और वे समस्त वस्त्राभूपणो से अलकृत भगवती लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न होने वाली देवी अर्चि नाम से विख्यात होगी।"

मुनियो के ऐसा कहते ही आकाश से पुष्पो की वर्षा होने लगी। ब्राह्मणगण अत्यन्त उल्लास के साथ स्वर-सहित उच्चस्वर से वेद-मत्रो का पाठ करने लगे।। अप्सरायें नृत्य करने लगी। चारों ओर शख, तुरही, मृदग दुन्दुभी तथा और भी अनेक वाजे वजने लगे। स्वर्ग से वहुत से देवता, ऋषि, सिद्ध तथा और भी उपदेव आये। लोक-पितामह ब्रह्माजी भी इन्द्रादि लोकपालो से घिरे हुए वेन-कुमार पृथु के दर्शनो के लिए पधारे। आते ही उन्होने महारज पृथु के हाथ, पैरो की रेखायें देखी। उनमे कमल के दिव्य चिन्ह देखकर तथा श्रीहस्त मे चक्र का चिन्ह देखकर चिल्ला उठे, "अवश्य ही ये श्रीमन्ना-रायण हैं, क्योकि रेखा से विना मिला हुआ चक्र का चिन्ह जिसके हाथ मे होता है वे श्रीहरि का अशावतार ही होता है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी, लोकपितामह जगद्गुरु

भगवान् ब्रह्माजी के मुख से भी अपनी बात का समर्थन सुनकर सभी ऋषि मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके राज्याभिषेक का उपक्रम करने लगे।

छप्पय

विप्रवृन्द करि वेदगान हियमहँ अति हुलसें।
धेनु दुग्ध की धार बहावें सरसिज विकसें॥
स्वर्ग लोकतें सिद्ध,पितर, सुर, मुनि मिलि आये।
भये चराचर सुखी चहूँ दिशि बजत बधाये॥
कमलासन विधि चरण कर, लखि लक्षण प्रमुदित भये।
प्रकटे प्रभु पृथु रूप महँ, सत्लोक यों कहि गये॥

महाराज पृथु का राज्याभिषेक

(२५६)

तस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ।
आभिषेचनिकान्यस्मा आजह्रुः सर्वतो जनाः ॥
सरित्समुद्रा गिरयो नगा गावः खगा मृगाः ।
द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुरुपायनम् ॥*

(श्रीभाग० ४ स्क० १५ अ० १२, श्लो०)

छप्पय

मिलिकें मुनि वेदज्ञ करन अभिषेक लगे तब ।
बाजें तुरही शख राजसी साज सजे सब ॥
आये नदी, पहाड, पेड, पक्षी, पशु, पयनिधि ।
असन,वसन,मणि,रत्न, भेंट लाये वर बहुविधि ॥
कनक सिंहासन धनद शुभ, दयो छत्र वर वरुन ने ।
वायु दये अति वर व्यजन, माला दीन्ही धरम ने ॥

धर्मात्मा के पास सब गुण स्वत: ही चले आते है। भाग्यशाली को याचना नही करनी पडती। सब सम्पत्ति स्वय ही उनके

---

* मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुर जी ! इसके पश्चात् वेदज्ञ ब्राह्मणो ने महाराज पृथु के राज्याभिषेक का आयोजन आरभ किया। सभी ओर से प्राणी उनके अभिषेक की सामग्रियाँ जुटाने लगे। नदी, समुद्र, पहाड,

समीप आपसे आप आजाती है। जिसने सत्य धर्म को छोड दिया उसके यहां रहने वाले भी सब गुण भाग जाते हैं। जिसने धर्म को पकड़े रखा,उसके गये हुए गुण भी लौट आते हैं। इस विषय मे एक कथा है। एक वडे धर्मात्मा राजा थे। उनके राज्य मे व्यापार की वडी कमी थी। प्रजा के हित के निमित्त उन्होने अपने नगर के निकट एक हाट लगवानी आरम्भ कर दी। उसमे यह नियम कर दिया, कि जिस व्यापारी की जो वस्तु न विकेगी, वह राज्य की ओर से क्रय कर ली जायगी। इस प्रलोभन से वहुत से व्यापारी आने लगे। एक वार एक आदमी लोह की एक मूर्ति लेकर वेचने आया। सव उससे उसका नाम दाम और गुण पूछने। वह वताता—"इस मूर्ति का नाम दरिद्रदेव है। इसके दाम एक लक्ष रुपये हैं। जो इसे लेगा, उसके घरकी धन सम्पत्ति सव नष्ट हो जायगी।" ऐसी अशुभ मूर्ति को कौन लेने लगा। सव देखते और लौट जाते। रात्रि हुई, हाट के बन्द होने का समय आया। राजकर्मचारी पूछने आये—'किसकी कौन कौन सी वस्तु नही विकी। पूछते पाछते वे उस व्यक्ति के समीप भी आये। उससे दाम पूछा। उसने यही उत्तर दिया। 'ये दरिद्रदेव हैं। एक लक्ष रुपया इनका मूल्य है। जहां ये रहेगे वहां लक्ष्मी सम्पत्ति नही रह सकती।' राजकर्मचारी घबड़ाये, राजा के समीप जाकर सव वृत्तान्त कहा।

महाराज ने पूछा—"क्या वह वेचने लाया था?"

सेवको ने कहा—"हां देव! वह वेचने ही लाया था?"

'तव फिर उसकी नही विकी?' महाराज ने पूछा।

पेड़, पक्षी, मृग, गौ, स्वर्गलोक के पृथवी लोक के जितने भी प्राणी थे सभी ने आ आकर उन्हें उपहार अर्पण किये।"

महाराज ऐसी वस्तु को कौन लेगा, जिसके लिये लाख रुपये व्यय भी हो और आते ही धन धान्य ऐश्वर्य का नाश कर दे। वस्तु तो लाभ के लिये ली जाती है।' सेवकों ने दृढता के स्वर मे कहा।

महाराज ने कहा 'जब वह बेचने लाया था और नही बिकी तब तो तुम्हें लेनी ही चाहिये इसमे पूछने की कौन सी बात है।

सेवको ने सभ्रम के साथ कहा—"अन्नदाता! ऐसी वस्तु के लेने से लाभ क्या?"

महाराज ने दृढता के साथ कहा—लाभ क्या? धर्म का लाभ है, अपनी प्रतिज्ञा पूरी होगी, यही लाभ है। रुपये पैसे का लाभ को ही लाभ थोडे ही कहते है। अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करना यह भी बडा लाभ है। तुम बिना बिचारे उसे एक लाख रुपया दे दो, उस मूर्ति को ले लो।' सेवको ने राजा की आज्ञा का पालन किया, मूर्ति राजा के अन्त पुर में आ गई, बेचने वाला एक लाख रुपये लेकर चला गया।

महाराज अपने भवन मे सो रहे थे, आधी रात्रि के समय वे क्या देखते हैं, एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्री राजा के सिरहाने खडी है। अपने भवन मे आधी रात्रि के समय इतनी सुन्दरी सम्पूर्ण शृङ्गारो से युक्त एक अपरिचिता स्त्री को देखकर महाराज बडे सभ्रम के साथ शैया से उठ कर खडे हो गये और लजाते हुए बडी मधुरवाणी मे बोले—'देवि आप कौन हैं? यहाँ क्यो खडी हैं? मुझसे क्या चाहती हैं।'

स्त्री ने कहा—राजन्! में आपकी राजलक्ष्मी हूँ, आपके घर मे दरिद्र आ गया है, जहाँ दरिद्र है वहाँ मैं कैसे रह सकती हूँ, इसलिये मैं जा रही हूँ। राजा ने कहा—'अच्छी बात है, जैसी आपकी इच्छा इतना सुनते ही लक्ष्मी चली गई।

फिर कुछ काल मे एक पुरुष आया। राजा ने पूछा—आप कौन हैं ? उसने कहा--मैं यश हूँ। जहाँ लक्ष्मी नही वहाँ मैं भी नही रहता। मैं जा रहा हूँ।'

राजा ने कहा—'जैसी आपकी इच्छा।' वह भी चला गया। अब क्रमश ऐश्वर्य, कीर्ति, तुष्टि, सन्तोष, शौर्य, वीर्य सभी सद्गुणआये और चले गये। सब ने कहा—'महाराज ! जहाँ लक्ष्मी है वही सब गुण है। काचन मे सभी गुण निवास करते हैं। लक्ष्मीहीन पुरुष गुणहीन समझा जाता है। अत हम भी आपको छोड रहे हैं।"

सब के अन्त मे धर्म आया। महाराज ने पूछा—आप कौन है ?"

उन्होने कहा—'महाराज ! मै धर्म हूँ ?"

महाराज ने सम्हल कर पूछा—"आप क्या चाहते है ?"

कुछ रुक रुक कर अस्पष्ट वाणी मे धर्म ने कहा—महाराज सभी सद्गुण आपको छोड कर चले गये हैं, लक्ष्मी भी चली गई है, इसलिये मुझे भी आज्ञा मिलनी चाहिये।"

महाराज ने दृढता के स्वर मे कहा "नही, भगवन ! यह नही होनेका। लक्ष्मी चली जाय,इसका मुझे कुछभी सोच नही। सद्गुण रहे न रहे, उनकी मुझे चिन्ता नहो, किन्तु आपको मैं नही छोड सकता। आपकी मैं प्राणपन से रक्षा करूँगा। आपके पीछे ही तो मैं दरिद्र को जानबूझकर मोल लाया हूँ। आपकी रक्षा के लिये ही तो यह सब किया है। आप किसी तरह नही जा सकते।" इतना कहते-कहते महाराज ने कस कर धम को पकड लिया।

महाराज को ऐसी धर्मनिष्ठा देखकर धर्म देव हँस पड़े और बोले—"राजन् ! जब आप मुझसे इतना स्नेह रखते हैं, तो

मैं आपको छोडकर कैसे जा सकता हूँ। जो मेरी रक्षा करता है, उसकी मैं भी सदा रक्षा करता हूँ। प्राय लोग धनहीन गुणहीन हो जाने पर तथा लोभवश धम को छोड देते है। आपने लक्ष्मी और सद्‌गुणो के चले जाने पर भी मुझे नही छोडा, तो मैं आपको किसी भी प्रकार नही छोड सकता।" जव धर्म रह गये, तो क्रमश सभी सद्‌गुण लौट आये। राजलक्ष्मी भी फिर से आ गई। एक धर्म की रक्षा करने से सभी गुणो की रक्षा हो जाती है और सब सपत्तियाँ धार्मिक नम्र पुरुप के समीप स्वतः ही चली आती है जैसे नीची पृथ्वी मे नदियाँ अपने आप बहने लगती है।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! वेन के अधम के कारण सब देवता, ऋपि, मुनि, मनुष्य, पशु, पक्षी, पृथिवी आदि भूत उस पर कुपित थे। शनै शनै सभीने उसका साथ छोड दिया। अधार्मिक का भय से कोई कुछ दिन साथ भले ही द, नही तो उसका साथ कौन दे सकता है। वह भगवान्‌की भी निन्दा करता था, इससे हतप्राय हो चुका था। इसीलिये तेज, ऐश्वर्य, प्रभाव उसके समीप से चले गये थे। अव भगवान् पृथु न पैदा होते ही धर्म का आश्रय लिया। धर्म को अपनाया। धर्म भगवान् का हृदय ही ठहरा। धर्म की स्थापना के लिये ही तो भगवान् अशावतार व्यूहावतार, विभवावतार, कलावतार, आवेशावतार, आदि अवतार धारण करते हैं। धर्म का स्वय पालन करना और प्रजा से पालन कराना यही तो भगवान् के अवतार का प्रधान हेतु है। धर्म को पकडते ही सभी ऐश्वर्य अपने आप आने लगे। वेन की नास्तिकता के कारण उनकी कोई वस्तु ग्रहणीय नही थी। अत राजा के योग्य जितनी सामग्रियाँ होती हैं, वह सभी उन्हे उपहार मे मिलने लगी। सभी ने अपनी अपनी शक्ति

के अनुसार पृथु महाराज को भेंट समर्पित करके उनकी शक्ति को बढाया ।

सर्वप्रथम कुवेर ने उनके बैठने के लिये राजोचित परम दिव्य सिंहासन दिया, जिस पर बैठकर राजकाज कर सकें। भगवान् पृथु का वेदज्ञ ब्राह्मणो ने बडी धूमधाम के साथ वेद मन्त्रो से अभिषेक किया । सातो समुद्रो के जल से उन्हे स्नान कराया गया, पूजन, हवन आदि जितने मागलिक कृत्य हैं, उन्हें कराकर विधिवत् उन्हे सबने मिलकर राजा बनाया। वस्त्राभूषणो से सुसज्जित होकर नाना अलकारो से अलकृत अपनी पत्नी अर्चि के सहित महाराज पृथु वरुण के दिये हुए मणिमय दिव्य सिंहासन पर सूर्य के समान प्रकाशित होने लगे। मानो अपनी पत्नी प्रभा के सहित आदित्यदेव अवनि पर उतर आये हो । प्रभा-सहित, अग्नि के समान व प्रकाशित हो रहे थे ।

वरुण ने देखा, कुवेरजी ने मणिमय सिंहासन तो दे दिया किन्तु छत्र के बिना राजा की क्या शोभा । अत. एक दिव्य छत्र उन्हे अर्पण किया, जिसमे से गर्मियो मे शीतल छोटे-छोटे जल विन्दु गिर रहे थे। वह चन्द्रमा के समान शुभ्रवर्ण का और प्रकाशवान् था। वायुदेव ने देखा, सिंहासन छत्र तो हो गये। अब छत्र के साथ चँवर भी चाहिये । इसलिये दो चँवर वायुदेव ने अर्पण किये। अब तो होड लग गई। सदाचार बन गया। जो भी देवता गन्धर्व, मनुष्य, नद नदी वहाँ आये, सभी को कोई न कोई दिव्य वस्तु महाराज पृथु को अर्पण करनी ही चाहिये। अत धर्म देव ने प्रसन्न होकर उन्हे एक कीर्तिमय माला दी कि इसके धारण करने से सर्वत्र कीर्ति होगी। धर्मात्मा की ही कीर्ति बढती है। इन्द्र ने मनोहर मुकुट उनके सिर पर पहिना दिया, दण्डधर यम ने उन्हे अपना दण्ड दिया। ब्रह्माजी ने ब्रह्ममय

कवच—रक्षा के लिये—प्रदान किया। जिसे वेन ने धारण ही नही किया था। विष्णु भगवान् ने अपना सुदर्शन चक्र दिया। लक्ष्मीजी अर्चि देवी मे आकर अन्तर्हित हो गईं कि जैसे वह तुम्हारी जीवन सगिनी है मैं भी चचलता छोडकर निश्चल रूप से तुम्हारे समीप रहूँगी।

भगवान् रुद्र ने एक ऐसा खड्ग दिया जिसमे १० चन्द्रमा के चिह्न बने थे। पार्वतीजी ने सोचा—मैं जगदम्बिका ठहरी, अत उन्होने १०० चन्द्रमा के चिह्न वाली ढाल दी। चन्द्रमा ने चढने को चमचमाती चाक चाकचिक्ययुक्त अमृतमय असख्यो अश्व प्रदान किये। त्वष्टा ने रमणीय रथ, अग्नि ने अत्यत सुदृढ सीगो वाला सुन्दर धनुष, सूय ने किरणरूपी बाण, पृथिवी ने इस प्रकार के खडाऊँ दिये कि जहा उन पर पैर रखा नही खट से अभीष्ट स्थान पर पहुँच गये। स्वर्ग ने कहा—महाराज, हम तो एक दिन देकर ही निवृत्त होना नही चाहते, नित्य ही आप पर अपने नदनकानन के दिव्य पुष्पो की वर्षा किया करगे। आकाश-गामी सिद्ध, चारण गुह्यक, भूत, प्रेत, गन्धर्व आदि ने उन्हे दिव्य सगीत प्रदान किया। जो नृत्य, गायन, वाद्य इस प्रकार से तीन अगो वाला है। अन्तर्धान हो जाने वाली विद्या भी खेचरी ने उन्हे दी। त्यागी ऋषियो के पास देने को क्या था, अत उन्होने अपने अमोघ आशीर्वाद ही दिये। समुद्र ने अपने गर्भ मे उत्पन्न हुए दिव्य शख को दिया। सातो समुद्रो, सरिताओ और शैलो ने मिलकर कहा—"महाराज! हम आपको अव्याहत मार्ग देते हैं, अब जब चाहे जहाँ चाहें बिना किसी विघ्न बाधा और श्रम वे हमारे ऊपर होकर निकल जायँ।"

इस प्रकार सभी से सभी वस्तुएँ ग्रहण करके महाराज पृथु यथार्थ मे राजा हुए। अब तक जो राजा होते थे, वे अपनी ही

कान्ति से शोभित होने के कारण राजा हुआ करते थे। उनके चुनाव के कार्यो मे प्रजा का विशेष हस्तक्षेप नही होता था। राजा और मंत्री मिलकर जो चाहें करें। किन्तु इन महाराज पृथु को तो सभी ने मिलकर राजा बनाया था। इनके राजा होने का हेतु शोभा बढाना ही नही था। समस्त लोको का रंजन करना। प्रजा के दुःखो को स्वय दुख सहकर दूर करना, प्रजा की आवश्यक्ताओ को देख कर उनकी पूर्ति के लिये प्रबल प्रयत्न करना। यही इनके राजा होने का मुख्य उद्देश था। इन्होंने प्रजा की सुविधा के लिये अनेक कार्य किये, बड़े बड़े नगरो की स्थापना की, उनमे प्रबन्ध के लिये नगर समितियाँ स्थापित की। ऊबड़ खाबड़ भूमि को काट छाटकर सम किया। पर्वतो को उठा उठा कर उत्तराखड में रख दिया। इसी कारण से ये आदि राजा कहलाये।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! जब महाराज पृथु का विधिवत् राज्याभिषेक हो गया, तो सूत मागधो ने उनकी स्तुति आरम्भ की।

छप्पय

लोकपाल सुरपाल सबनि मिलि सेवा कीन्ही।
जा पै जो वर वस्तु हती तानें सो दीन्हीं॥
स्वीकारे उपहार कोर्यो सम्मान सबनि को।
प्रजापाल प्रभु भये बढ्यो उत्साह सुरनि को॥
सिंहासन आसीन पृथु, सुर नर ऋषि मुनि मन हरत।
उमड्यो आनँद दशो दिशि, हिय हरषत जय जय करत॥

महाराज पृथु की सूत मागधों द्वारा स्तुति

(२६०)

नालं वयं ते महिमानुवर्णने
यो देववर्योऽवतार मायया ।
वेनांगजातस्य च पौरुषाणि ते
वाचस्पतीनामपि बभ्रुर्धियः ॥*

(श्री भा० ४ स्क० १६ अ० २ श्लोक)

छप्पय

मिलि मागध अरु सूत लगे विरुदावलि गावन ।
तबलज्जित ह्वै लगे तिन्हे हँसिपृथु समझावन ॥
अरे, मृषा गुन गाय समय च्यौं व्यथा विताओ ।
कीर्तनीय हरि एक तिन्ही की कीरति गाओ ॥
पौनी, सूत, कपास नहिं वस्त्र प्रशंसा होय जस ।
कीर्ति योग्य कछु करयो नहिं, करहु प्रशंसा फेरि कस ॥

एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है, 'अपनी स्तुति किसे अच्छी नहीं लगती । ज्ञानी तथा भक्तोंकी बात छोड दीजिये । उनके लिये तो

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! महाराज पृथु की स्तुति करते हुए सूत मागध आदि वन्दीजन कहते है— 'हे देवताओ मे श्रेष्ठ ! हम आपकी महिमा वर्णन करने मे समर्थ नही हैं, क्योकि आप अपनी

स्तुति निंदा दोनों समान ही हैं। फिर भी प्रशंसा से सुख सभी को होता है। अंतर इतना ही है, मूर्ख अज्ञानी अहंकारी अपनी प्रशसा सुनकर फूल कर कुप्पा हो जाते हैं। भले आदमी अपनी प्रशंसा सुन कर लज्जित होते हैं और सिर नीचा कर लेते हैं। मनस्वी पुरुषों को अपनी प्रशसा अपने सम्मुख ही सुननी पडे, तो उन्हे यह वात वहुत अखरती है, किसी प्रकार प्रसंगान्तर करके वे उस वात को टालना चाहते हैं।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! जव सूत मागध महाराज पृथु की स्तुति करने को उद्यत हुए, तव उन्हे रोक कर महाराज पृथु उनसे कहने लगे--"भैया, तुम लोग वडी अच्छी स्तुति करने वाले प्रतीत होते हो, किन्तु जव तक भोजन की सामग्री न हो, भोजन वना भी न हो, तभी तक उसकी प्रशसा करने लग जायँ, तो मूर्खता ही कही जायगी। तुम कहो कि जो सुन्दर भोजन बनेगा हम उसी की प्रशंसा करते है, तो सभव है वह वैसे न वना तो प्रशंसा करने वाले की वाणी व्यर्थ हो जायगी।"

इस पर सूत मागध वोले—"विभो ! हमारा कार्य ही है स्तुति प्रशसा करना। मुनियो ने हमारी यही वृत्ति निर्धारित की है।"

महाराज पृथु बोले—"यह तुम्हारा कहना यथार्थ है, यदि तुम्हारा काम स्तुति करना ही है,तो तुम श्रीहरि की स्तुति करो, भगवान् की प्रशसा करो, वे ही स्तुति योग्य तथा प्रशसनीय हैं। पवित्र कीर्ति पुण्यश्लोक प्रभु के रहते हुए कौन प्रतिष्ठित पुरुष

माया से ही अवतरित हुए हैं। आप वेन के शरीर से स्वय उत्पन्न हुए हैं। ऐसे आपके पुरुषार्थ को वर्णन करते समय स्वयं वृहस्पति जी की भी बुद्धि चक्कर मे पड जाती है तव फिर हमारी तो वात ही क्या।"

साधारणजनो की प्रशसा करेगा। जा गुण जिसमे है ही नहीं उनको उनमे उनके सम्मुख ही बताना उनका अपमान करना है, उन्हें लज्जित करना है, उन्हे मूर्ख बनाना है। अब तुम कहो कि अभी नही है वे गुण तो न सही, आगे हो जायँगे, तो यह बात भी ठीक नही। वे गुण न हुए। फिर भविष्य के कार्यों को अनुमान करके प्रशसा करना और सुनना दोनों ही हास्यास्पद हैं। अत. भैया, तुम हमारी प्रशसा मत करो। अभी लोक मे हमारे गुण अप्रसिद्ध है, फिर बच्चो के समान हमारी कीर्ति का गान करने के निमित्त तुम इतने उतावले क्यो हो रहे हो ?"

महाराज की ऐमी बाते सुन कर सूत मागध मुनियो के मुख की ओर देखने लगे। मुनियो ने ही उन्हे स्तुति करने की आज्ञा दी थी। अब राजा निपेध कह रहे है। ऐसी दशा मे किनकी बात माने, किनकी न माने। इस असमञ्जस मे पडे हुए मागध आदि बन्दियो से वेदवादी मुनि बोले—"अरे, तुम लोग महाराज के बहकावे मे आ गये क्या ? तुम्हे हमारे वचनो पर विश्वाश नही। हम जो कह देगे वही होगा। तीनो कालो की घटनायें हमे तो उसी प्रकार है, जैसे हाथ पर रखे हुए आँवले की सब चीजे दिखाई देती है। तुम लोग हमारी बाते मानो और जो जो गुण हमने इनमे बताये है उन सब का वर्णन करो। ये साधारण मनुष्य थोडे ही है, ये तो भगवान् के अशावतार है।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! जब मुनियो ने इस प्रकार उन सब गुणगायको का उत्साहित किया तो वे महाराज पृथु के गुणो का गान करने लगे।"

गायको ने कहा—"महाराज, हमारी क्या सामर्थ्य है, जो आपके गुणों का गान कर सकें। हमारे तो एक एक मुख ही है। चतुर्मुख ब्रह्माजी, ६ मुख वाले षडानन, हजार मुखवाले शेष

आपके गुणो का गान करने मे असमर्थ हैं, हम तो अपनी जिह्वा को पवित्र करने के निमित्त आपके कुछ स्तोत्रो का गान करते है। हममे इतनी बुद्धि कहाँ है, जो आपके भविष्य कर्मों का अभी मे गान कर सकें, किन्तु इन त्रिकालज्ञ महर्षियो ने हमे प्रेरित किया है, इन्होने ही आपके कुछ गुणो को बताया है, इन्ही की आज्ञा से हम कुछ कहते हैं।

इस पर सभा मे बैठे हुए सभासदो ने उन गायको को उत्साहित करते हुए कहा—"नही, नही आप महाराज पृथु के पावन चरित्रो का गान कीजिये। मुनियो ने जो आपको बताया है, समझाया है उन्ही का सुन्दर भाषा मे वर्णन करें।"

सभासदो का उत्साह पाकर गायक कहने लगे—ये अकेले ही आठो लोकपालो के तेज को अपने श्री अंग मे धारण करेंगे। ये सूर्य के समान आदान प्रदान कर्ता होगे। पृथ्वी के समान सदा सहनशील होगे, किन्तु अग्नि के समान तेजस्वी भी होगे। ये अपनी मनोहर मुसकान से सभी प्राणियो को प्रसन्न करते रहेगे। ये बडे पराक्रमी, तेजस्वी, यशस्वी, वाग्मी तथा विद्वानो का आदर करने वाले होगे। ये वायु के समान सबके भीतर बाहर व्याप्त होकर सबके मन की बातो को अपने चरो के द्वारा जान लगे। ये सम्पूर्ण भूमण्डल के चक्रवर्ती राजा होगे। ये शोभा वाले ही राजा न होकर प्रजा का रजन करने वाले राजा होगे। ये शरणागतवत्सल, सत्यपरायण, साहसी, सहनशील, ब्राह्मण-भक्त वेदमार्ग के पोषक, विद्वानो द्वारा सत्कृत, गुरुजनो के सेवक, गौरववान्, गान-विद्या मे निपुण होगे। इनकी समता करने वाला ससार मे दूसरा कोई शासक न होगा। ये सैकडो अश्वमेध यज्ञ करेंगे। ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार से ज्ञान प्राप्त करके परमधाम को पधारेंगे। ये अपने समान अद्वितीय होगे।

इनकी बराबरी करनेवाला ससार मे कोई न होगा। ये दीनो के रक्षक होगे, प्रजाओ का पिता के सदृश पालन करगे। अधिक क्या कहे ये सर्वगुणसम्पन्न, सर्वप्रिय सब के सुखदाता भयभीतो के भयत्राता और निराश्रितो के आश्रयदाता होगे।

मैत्रेय मुनि कहते है—'विदुरजी! इस प्रकार और भी अनेक प्रकार की महाराज पृथु की स्तुति करके सूत मागधगण चुप हो गये।

उनकी स्तुति से सन्तुष्ट होकर महाराज ने नियमानुसार स्त्र आभूषण और द्रव्य द्वारा उनका सत्कार किया और नकी स्तुति करने की शैली की प्रशसा भी की। इसके अनन्तर ाह्मणो न स्वस्तिवाचन पाट करके महाराज को आशीर्वाद दिया दनन्तर राज्य के मन्त्रियो आकर नये महाराज का सम्मान कया और राजभक्ति की शपथ ली। फिर राजा के प्रधान प्रधान मचारी आये, उन्होने हाथो की अञ्जलि बाँधकर महाराज को ाविध भाँति की भेंटें अर्पण की। राजपुरोहित ने [illegible] म्बन्धी शिक्षा-दीक्षा दी। पुरवासियोने आकर अपनी [illegible] र्पित की। देशवासियोने नये महाराज के चरणो मे अपनी क्ति प्रदर्शित की। चाडाल पर्यन्त सभी प्रजा के प्रतिनिधियो ने हाराज के सम्मुख अपनी अपनी श्रद्धा प्रकट की। महाराज पृथु सभी का यथोचित स्वागत सत्कार किया, सभी का दान, मान ार सम्मान से सत्कृत करके उनके उपहारो को स्वीकार किया

मैत्रेयमुनि कहते हैं—"विदुरजी! इस प्रकार अभिषेक

सम्बन्धी सभी कार्य सम्पन्न हो जाने पर महाराज ने सभी को सम्मान सहित मधुर वाणी से सत्कार-पूर्वक विदा किया। सब के चले जाने पर महाराज अपने अन्त.पुर मे आये और सुख-पूर्वक रहने लगे।

छप्पय

सुनि सहमे सूतादि करघो सकेत मुनिनि जब।
तजिके सब सकोच करहिं गुनगान हर्षि तब॥
ये हुगेअति सहनशील शरणागतवत्सल।
परमतेज सम्मग्न एक सम समर्झे जल थल॥
एक छत्र शासक सबल, सेवा सब की करिङ्गे।
दुहिता करि धरनी दुह, कष्ट सबनि को हरिङ्गे॥

महाराज पृथु का पृथवी पर कोप

(२६१)

यदाभिषिक्तः पृथुरङ्ग विप्रै—
रामन्त्रितो जनतायाश्च पालः ।
प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य
क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥*

(श्री भा० ४ स्क० १७ अ० ६ श्लो०)

छप्पय

प्रजापाल पृथु भये आइ बोले जन सब अस ।
पृथवी पै नहिं अन्न, करें निर्वाह नृपति कस ॥
नृप सोचे—सब बीज भूमि निज उदर छिपाये ।
ताही ते बिनु अन्न प्रजाजन अति घबराये ॥
भूख प्यास पीडित प्रजा, पृथु लखि चोट हिये लगी ।
ताँनि धनुष मारन चले, धेनु रूप धरि भू भगी ॥

जो सेवा करने मे समर्थ नही उसे स्वमी बनने का भी अधिकार नही। जो प्रजा के दु.खो को दूर करने के लिये निरतर प्रयत्न नही करता रहता उसे प्रजा-पालक नही कह सकते। जो

---

* मैत्रेय मुनि कहते है—"प्रिय विदुरजी ! जब महाराज पृथु को ब्राह्मणो ने राज्यासन पर यह कह कर अभिषिक्त कर दि कि आप जनता के प्रतिपालक हैं, तब जिनके शरीर अन्न के अभाव के कारण

आश्रितों पर आई हुई विपत्तियों के निवारण के लिये शक्ति भर उपाय नहीं करता वह भर्ता तथा भयत्राता कैसे कहा जा सकता है। प्रजा का कार्य है, न्यायपूर्वक राजा को आय का षष्ठांश दे और राजा का कार्य है प्रजा की दस्युओ से, चोर डाकुओ से, प्रबल शत्रुओ से दैहिक, दैविक विपत्तियों से रक्षा करे। जो राजा मनमानी करता है, प्रजा के मत की अवहेलना करता है वह शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! वेन के अधर्माचरण के कारण पृथिवी श्रीहीन और सुख-समृद्धि से रहित हो गई थी। पृथिवी तो वसुन्धरा है, इसके गर्भ मे अगणित रत्न भरे हैं, किन्तु धर्मात्मा राजा के होने पर ही रत्नों को प्रकट करती है, अधार्मिक राजा के होते ही सब छिपा लेती है। फल सदा भावना के अनुसार होता है। देखिये, हमने देखा था, एक व्यक्ति के पास एक खेत था। उसमे इतना अन्न पैदा होता था, कि एक वर्ष उस व्यक्ति का समस्त परिवार खाता था, विवाह, उत्सव, अतिथि-सत्कार सब उसी से होता था। जब वह मर गया उसका लड़का दुष्ट हुआ, तो उस खेत मे उतना भी अन्न नही हुआ कि उसका एक महीने भी निर्वाह हो सके। पृथिवी वही, बीज वही, किन्तु धार्मिक भावना नही थी, इसलिये पृथिवी का उर्वरापन नष्ट हो गया। जैसे हम लोग अपने घर मे चोर डाकुओं को आते हुए देखते हैं, तो अत्यंत मूल्यवान वस्तुओं को किसी गुप्त स्थान मे छिपा देते हैं, इसी प्रकार क्रूरकर्मा दस्यु राजाओं के शासक हो जाने पर पृथिवी अपने समस्त बीजो को छिपा लेती है, कि

भूख प्यास से दुर्बल हो गये हैं, उन समस्त लोगो ने आकर महाराज से अपना दुख कहा।"

दुष्ट शासक इनका दुरुपयोग न कर सकें। वेन की दुष्टताके कारण पृथिवी का उर्वरापन नष्ट हो गया था। उसमे जो भी अन्न डालो वह पृथिवी का पृथिवी मे ही विलीन हो जाता था, उसमे से अकुर निकलते ही नही थे, इससे प्रजा म बडा असतोष फैल गया, सवत्र हाहाकार मच गया।

इसी दशा मे वेन को मारकर परोपकारी ब्राह्मणो न महाराज पृथु को राजा बना दिया और प्रजा से स्पष्ट कह दिया—"ये तुम्हारे पालक और रक्षक है, तुम्हे जो कष्ट हो, निभय होकर इनके सम्मुख निवेदन कर दिया करो।" त्यागी विरागी धर्मात्मा ब्राह्मणो की बात सुनकर प्रजा के लोगो को सन्तोष हुआ। अब वे सबके सब झुण्ड बना बना कर राजा के पास आने लगे। सब लोगो को दुबले पतले म्लान मुख, दु ख से दुखी अपनी ओर आते देखकर महाराज पृथु ने पूछा—'कहो, भैया, तुम लोगो को कौन सा कष्ट है ? तुम लोग इतने कृश क्यो हो गये हो ?'

प्रजा के लोगो ने कहा—' महाराज हमे अग्नि झुलसा रही है, हम सब उसी की झुलस से जले जा रहे है।

महाराज ने पूछा—"अग्नि भैया, कहाँ लग गई ? किस बन मे दावानल प्रज्वलित हो उठी, मुझे बताओ मै उसका उपाय करूँगा।"

प्रजा के लोगो ने कहा—"प्रभो ! अग्नि बाहर से नही लगी है, भीतर की जठराग्नि ही प्रचड होकर हमे दुख दे रही है। महाराज ! हमारी इस भूख से रक्षा कीजिये। जैसे वृक्ष की खोतर मे बैठा पक्षी वृक्ष मे आग लगने से झुलस जाता है उसी प्रकार हम सब झुलसे जा रहे हैं। पृथिवी पर अन्न नही। इसी-

लिए भूख प्यास के कारण मरे जा रहे है। आप हमारे जीविका देने वाली स्वामी—अधिपति चुने गये है, अत हमे कहीं से भी जीविका दीजिये, हमारे प्राणो की रक्षा कीजिये।"

महाराज बोले—"अच्छी बात है, भैया! मैं सोचूँगा। तुम सब अपने अपने स्थानो को जाओ।"

प्रजा के लोगो ने कहा—"नही, नही महाराज! सोचने से काम न चलेगा। जब तक आप सोच विचार करेंगे तब तक तो हमारे प्राण पखेरू सदा के लिये उड जायँगे। आप तत्क्षण कोई कार्यवाही कीजिए, अति शीघ्र इस कुद्दिनो बुभुक्षा के निवारण का कोई अविलम्ब उपाय कीजिए। हे राजराजेश्वर! किसी भी उपाय से हमे खाने को अन्न दीजिए। आप अन्नदाता हैं, हमारे पेट की अग्नि को बुझाइये।"

प्रजा के लोगो के ऐसे करुणापूर्ण वचन सुनकर महाराज पृथु को बडा दुख हुआ। उन्होने सोचा—'मेरे राज्य मे प्रजा अन्न के बिना दुखी रहे तो मेरे राजापने का धिक्कार है। महाराज बडे यशस्वी थे। यशस्वी क्या थे भगवान् के अशावतार ही थे। उन्हे सवप्रथम यह बात सुनकर पृथिवी पर ही क्रोध आया। उन्होने सोचा—'पृथिवी की यह कैसी धृष्टता है, कि बोये हुए अन्न को भी पचा जाती है, उसमे से अकुर पैदा नही करती। यह तो वही दशा हुई कि गौ दिन भर तो घास भूसा खाती रहे और दूध देते समय बिदुक जाय। आज मैं इस पृथिवी को ही ठीक करूँगा। इसी को ताडना दूँगा। इसे इसके कुकर्म का फल चखाऊँगा। यह सोच कर वे धनुष बाण लेकर पृथिवी को मारने लिए दौडे। पृथिवी ने भी जब देखा कि यह प्रतापशाली सर्व-समर्थ सम्राट मुझे मार डालना चाहता है, तो वह गौ का रूप रखकर प्राणो के भय से भयभीत होकर भागी।

यह सुनकर शौनकजीने पूछा—' सूतजी, पृथिवी कैसे भागी ? पृथिवी तो जड है । उसे राजा मारने दौडे, कैसे मारने दौडे क्या फावडा लेकर खोदते थे ? फिर पृथिवी गौ का रूप रखकर भागी तो पृथिवी के लोग कहां रहे ? राजा किस के ऊपर भागे ?''

यह सुनकर सूतजी हँसते हुए बोले—"अच्छा महाराज ! आप भी अब कलयुगी लोगो के-से तर्क करने लगे । ठीक ही है अब तो घोर कलियुग ही आने वाला है, लोग इन बातो पर विश्वाश थोडे ही करेंगे कि जड पृथिवी गौ का रूप रखकर भागी । महा-भाग ! जड क्या पदार्थ है ?

शौनकजी बोले—"जड वही जिसमे कुछ जीवन सम्बन्धी कपनादि क्रिया करने की शक्ति न हो ।"

सूतजी बोले—" जब यही बात है, तब तो सभी स्त्रियां जड है पुरुष भी जड है ये सब बाल बच्चे पैदा करने हैं ये भी जड हैं ।

शौनकजी बोले—"जड-कैसे हैं, देखिये रजवीर्य के सयोग से एक बुदबुद बनता है, नित्यप्रति बढता है, पेट मे भी वह खाता है, हिलता है डोलता है । कडवे खट्टे मीठे का अनुभव करता है । स्वत पैदा होता है, बोलता है, रोता हैं, चलता फिरता है, देखता सुनाता है । ये सब क्रियाये जड मे तो नही होतीं ।"

इस पर सूतजी बोले—"तब भगवन् ! आप पृथिवी को जड क्यो कहते हैं । जैसे माता के गर्भ मे वीर्य बढकर वृद्धि को प्राप्त होना है उसी प्रकार पृथिवी के गर्भ मे बीज अकुरित होकर वृद्धि को प्राप्त होता है । वह नित्य बढता है, पुष्प लगते हैं फल लगते हैं । वृक्षो को देखने की भी शक्ति है, ऐसा न ह तो लतायें डाली को ही ओर कैसे बढती हैं, उसेही कैसे पकडलेती हैं । वृक्षो मे शक्ति भी है, ऐमा न होता तो जल के पडते वे हरे भरे होकर लहलहाने क्यो लगते ? उष्णता के स्पर्श से कुम्हिला क्यो जाते

चार प्रकार के जीवो मे उद्भिज जीवो की गणना अनादि काल से होती आ रही है। इन समस्त जीवो की उत्पन्न करने वाली और आश्रल देनेवाली पृथिवी को आप जड कैसे बना रहे हैं?"

शौनकजी बोले—"अच्छा, जड न सही चैतन्य ही सही फिर वह गौ का रूप रखकर कैसे भागी, इतनी लम्बी चौडी पृथिवी गौ कैसे बन गई।"

सूतजी बोले—"महाराज, लम्बा होना चौडा होना छोटा मोटा होना यह तो शरीर का धर्म है। शरीरी तो शरीर से पृथक् ही होता है न। हम जो अपने को हम कहते हैं, तो क्या हम इस शरीर को थोडे ही कहते है। शरीर अभिमानी देवता को कहते है। योगियो को आपने देखा नही अनक रूप रख लेते है। अनेक शरीर बना लेते है। जैसे हम लोगो के रहने का स्थान गृह है। घर हमारा आश्रय है, उसमे रहने के कारण हम घर थोडे ही हो गये। चाहे जब उस घर को छोड कर दूसरे मे चले जायँ। योगी लोग परकाय प्रवेश करते ही है। अभी कलियुग मे मैंने अपनी आखो एक प्रत्यक्ष घटना देखी।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी, कौन सी प्रत्यक्ष घटना आपने देखी उसे हमे भी सुनाइये।"

यह बनकर सूतजी बोले—"महाभाग! मैं प्राय श्री बदरीनाथ की तात्रा को जाया करता हूँ। मेरे परमगुर इस धराधाम पर विराजमान होते हुए भी आजकल कलियुगी जीवा को प्रत्यक्ष दिखाई नही देते। किन्ही भाग्यशाली पुरुषो को ही भगवान् वेदव्यास के दर्शन होते हैं। मै बदरीवन मे भगवान् बदरीवन के दर्शनो को तो जाता ही हूँ, एक यह भी लोभ रहाता है, उस सम्याप्रास की पुण्य भूमि के भी दर्शन कर आता

है, जहाँ पर समस्त भागवती कथाओं का बीजारोपण और प्रादुर्भाव हुआ है।

हाँ तो मैं यात्रा के निमित्त जा रहा था। बहुत से यात्री भी "बद्रीविशाल लाल की जय" बोलते हुए जा रहे थे। कोई समृद्ध-शाली श्रेष्ठि भी अपने परिवार सहित यात्रा के निमित्त जा रहा था। उसका एक अत्यत ही सुन्दर, बडा ही रूपवान किशोरावस्थापन्न पुत्र था। उसके सभी अग बडे ही सुडौल थे, सुवर्ण के समान उसका वर्ण था, बडा सुशील और धार्मिक वृत्ति का था। पिता उसे प्राणो से भी अधिक प्यार करते थे। मेरे लाल को पार्वतीय विकट पथ मे कष्ट न हो इस भय से श्रेष्ठि ने उसके लिये सुन्दर नरवाहन का प्रबन्ध कर दिया था। बच्चा पिता के आग्रह से उसमे बैठ तो जाता था, किन्तु बदरीनाथ के पुण्य पर्वतो के प्राकृतिक दृश्यो को देखकर उसका हृदय नृत्य करने लगता। अवसर पाकर वह हाथ मे छडी लेकर पैदल ही चलता और इधर उधर देखता जाता। यह १५,१६ वर्ष की अवस्था बडी ही चचलतापूर्ण होती है। अग अग मे सिहरन होने लगती है, हृदय मे एक अजीब परिवर्तन सा प्रतीत होने लगता है। चित्त नई नई जानकारी के लिये उत्सुक रहता है। नये दृश्य देखने मे बडे आह्लाद होते हैं। बदरीनाथ के पर्वतो के शिखरो पर इधर उधर बहुत से सुगन्धित पुष्प खिलते रहते हैं। वहाँ की प्रत्येक घास मे एक प्रकार की मादक गध रहती है। बच्चा अपनी स्वाभाविक चचलता के कारण कभी कभी पथ से पृथक् होकर दृश्य देखने लगता। इस फूल को तोड, उस घास को उखाड, इस पत्थर को उठा, इसमे उसे बडा आनन्द आने लगा। एक स्थान मे वह एक नाले का सहारा लेकर ऊपर चढ गया। सेवक

भी साथ थे। ऊपर जाकर वह फूल योडने लगा सहसा एक बडे पत्थर के नीचे से एक कारियल विपधर सर्प निकला और उस बच्चे की उँगली मे काटकर अत्यत शीघ्रता के साथ भाग गया। क्षण भर मे बच्चा मर गया। श्रेष्ठि दम्पति की बुरी दशा थी। उन दोनो के करुण क्रदन को सुनकर पहाड के पत्थरो के हृदय भी पिघलने लगे। मुनियो ! इस ससार मे पुत्रशोक से बढकर दूसरा कोई भी दु ख नही। आप सब तो स्त्री पुत्रो के सुख से वचित ही है, जब आपके पुत्र हो नही तो उसके वियोग दु ख का तो अनुभव होगा ही कैसे ! किन्तु महाभाग। यही समझ कि पुत्र के वियोग मे मृत्यु से बढ कर दु ख होता है। जिनका कामदेव के समान सर्वगुणसम्पन्न प्राणो से भी प्रिय इकलौता पुत्र मर गया हो, वह भी घर पर नही, यात्रा मे, तो उन माता पिताओ के दु ख का तो कहना ही क्या ? अब क्या किया जाय सर्प के काटे को हुए को जलाया तो जाता नही। कलकलनिनादिनी भगवती अलककन्दा के अत्यत शीतल जल मे उस श्रेष्टि सुत के शव को प्रवाहित कर दिया गया। श्रेष्ठिदम्पति रोते चिल्लाते बदरीनाथ की ओर बढे। आगे जा रहे थे, बच्चे का शव अलकनदा के प्रवाह मे पापाणो से टकराता हुआ नीचे की ओर बह रहा था। मुनियो ! उस बच्चे की मृत्यु को देखकर मेरे हृदय मे बडी करुणा उत्पन्न हुई। स्वभाविक ही उस सलौने बच्चे की मनमोहक मूर्ति की ओर मेरा आकर्पण हो गया था। मैं खडा खडा जल की चपेटो से डूबते उतराते बहते हुए उस शव को देखता रहा। सहसा मैं क्या देखता हूँ, कि अलकनदा के उस पार के गहन वन से एक नरककाल सा आता हुआ दिखाई दिया। उस दुबले पतले लम्बे वृद्ध को देखकर मुझे भय भी हुआ, आश्चर्य भी हुआ। मैंने देखा वह बडे वेग से अलक-

नन्दा के प्रबल तीक्ष्ण प्रवाह मे घुस गया और उस शव को पकड कर किनारे ले आया। अब मेरा सदेह बढा। मैने समझा यह कोई अघोरी है। या तो मुर्दो को खाता होगा या इनके द्वारा प्रयोग करता होगा। मैं खडा खडा देखता रहा। वह क्षीयकाय पुरुष उस शव को दोनो हाथो मे उठा कर एक बडे पाषाण खण्ड पर ले गया। पहिले तो उसने उस शव को उल्टा करके उसके पेट के पानी को निकाल दिया। फिर उसे पट्ट लिटा कर उस पर हाथ फेरा। हाथ फेरत ही वह मृतक शरीर तो जीवित हो गया और उस वृद्ध पुरुष का ककाल शरीर मृतक बनकर पृथिवी पर गिर पडा। उस जीवित पुरुष ने उस ककाल निर्जीव देह को दोनो हाथो से उठाकर बडे जोर से अलकनदा मे फेक दिया और वह स्वेच्छा से वन मे घुस गया। तब मै समझा ये कोई योगी हैं जो जीर्ण शरीर को त्याग कर देखने इस सुन्दर शरीर मे प्रवेश कर गये। सो मुनियो यहाँ वाली पृथिवी वास्तव मे पृथिवी नही, यह पृथिवी का शरीर है। पृथिवी की जो अधिष्ठात्री देवी है, वह किसी भी शरीर मे प्रवेश होकर कोई भी रूप रख कर क्रिया कर सकती है। पृथिवी का गौरूप से ब्रह्मा जी के यहाँ जाना, देव लोक मे जाना, अनेको स्थानो पर आता है और यह कपोल- कल्पना नही सत्य है। इसलिये आप इस विषय मे शका न करें। साधारण आदमियो को जो न दीखे वह है ही नही, यह सिद्धान्त मान्य नही। बहुत से रोग के कीडे साधारण लोगो को नही दीखते, तो क्या उनका अस्तित्व ही नही। अनेक नगरो को हमने नही देखा, तो क्या वे है ही नही। और की बात जाने दो, अपनी आखो को ही हम नही देख सकते, अपनी पीठ को भी नी देख सकते तो क्या ये हैं नहीं। कुछ बातें अनुमान से

सिद्ध होती हैं, कुछ आप्त वाक्यों से महापुरुषों के वचन ही उसके सत्य होने मे प्रमाण हैं। पृथिवी देवी है, वह गौ का रूप रखकर समय समय पर देवताओं से ऋषियो से बातें करती है। इसमे शास्त्र ही प्रमाण हैं। महाराज पृथु कोई साधारण मनुष्य तो थे नही, वे तो भगवान् के साक्षात् अवतार थे, उनके साथ गौ रूपी पृथिवी का सम्वाद होना कोई आश्चर्य की बात नही।"

यह सुनकर शौनकजी बोले—"सूतजी! आप ठीक कहते हैं। आर्ष प्रमाण आप्तवाक्य के अतिरिक्त कोई दूसरा मुख्य प्रमाण है ही नही। हम महर्षि शुनक के पुत्र हैं, हम भृगुवंशी हैं। ये बातें हमने देखी तो है नही परम्परा से सुनते आये हैं—इसे ही सत्य मानते हैं। इसलिये शास्त्रीय वाक्य ही मुख्य प्रमाण है, हाँ, तो पृथिवी और पृथु महाराज का वाक्य सवाद हुआ, इसे आप सुनाइये।"

इस पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए सूतजी बोले—"महाराज आप तो सब जानते हैं। लोगो के हित के लिये ऐसी बातें पूछते हैं। अच्छी बात है, अब जिस प्रकार भगवान् मैत्रेय ने विदुरजी को पृथिवी और पृथु का सवाद सुनाया था, उसे ही मैं आप को सुनाऊँगा, आप समाहित चित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

धरें धनुष पै बान तगे पृथु भागी धरनी।
ज्यों नर लीयें पास व्याध लखि भागे हरिनी॥
त्रिपुर बिनाशन हेतु मनहुँ शर शम्भु सजायो।
धर्म धेनु वध हेतु मनहुँ पंचानन धायो॥
पुरि पुरि निरखति भयग्रसित, जाने वसुधा जहाँ जहँ।
सधान सर करें पृथु, पीछो लाग्यो तहाँ तहँ॥

महाराज पृथु का पृथिवी के साथ संवाद

(२६२)

वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
भागं बर्हिषि या वृङ्क्ते न तनोति च नो वसु ॥*
(श्रीभाग० ४ स्क० १७ अ० २२, श्लो०)

छप्पय

बोली वसुधा विभो ! व्यर्थ क्यों मोकूँ मारो ।
अबला सदा अवध्य ताहि फिर क्यों सहारो ॥
बिना बात क्यों बान चलाओ बात बताओ ।
निरपराधिनी मोइ मारि के का तुम पाओ ॥
पृथु बोले—दुष्टे धरनि तोपै बान चलाउगो ।
सबकूँ सुखी बनाउँगो, यमपुर तोइ पठाउँगो ॥

ब्रह्मलोक तक के जितने जीव हैं, सबको अन्न-आहार पृथिवी से ही प्राप्त होता है। जो जिसका आहार है, वही उसका अन्न है। जो खाया जाय (अत्तीति अन्नम्) उसी का नाम अन्न है। गाय

---

*मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! कुपित हुए महाराज पृथु पृथिवी से कहते हैं—'हे वसुधे ! मैं तेरा वध अवश्य करूँगा, क्योंकि तू शासन को नहीं मानती है। तू यज्ञ मे देवताओं के साथ अपना भाग तो लेती है किन्तु उसके बदले मे हमे वसु—भोजन रूपी धन नही देती।"

भैंस बैल आदि पशुओं का अन्न घास है। बन्दर आदि का अन्न फलमूल है। बगुला आदि का अन्न छोटे जन्तु मछली आदि हैं। दो पैर वाले प्राणियों का अन्न औषधि जव गेहूँ आदि हैं। मांसाहारियों का अन्न मांस है। देवताओं का अन्न अग्नि में दी हुई आहुतियाँ हैं, पितरों का अन्न श्राद्ध में दिये हुये पिंडादि हैं। महा, जन, तप और सत्यलोक के प्राणियों का अन्न ज्ञान, ब्रह्मचर्य, तपस्या और ध्यान आदि है। पृथिवी पर कर्म करके हो प्राणी इन लोकों को प्राप्त करते हैं। नरक और स्वर्ग के भोग भी यहीं से मिलते हैं। पृथिवी पर भारतवर्ष को छोड़कर और जितने वर्ष द्वीप हैं, नीचे के ७ लोक, ऊपर के ६ लोक, ये सभी भोग-भूमियाँ हैं, केवल मर्त्यलोक में यह भारतवर्ष ही कर्म-भूमि है। इसलिये भारतवर्ष को छोड़कर अन्य लोकों और द्वीपों में युगों की कल्पना नहीं। क्योंकि वे तो भोगस्थान हैं, जब तक का पुण्य है, पुण्यलोकों में सुख भोगो। जब तक का पाप है, अनेक प्रकार के नरकों में दुख भोगो। जब सब पुण्य पाप भोग लेने पर कुछ समान से शेष रह जायँ तो इस कर्मभूमि में उत्पन्न होकर प्राणी कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। इसीलिये अवतारों का विशेष प्रयोजन इस कर्मभूमि पर ही है, यहीं भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये भगवान् के भिन्न भिन्न अवतार होते हैं। यह पृथु अवतार पृथिवी की व्यवस्था करने, पृथिवी को दोहकर सबके नष्ट हुए भाग को फिर से प्राप्त कराने के लिये हुआ था।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—विदुरजी ! जब गौ रूप धारिणी पृथिवी महाराज पृथु के भय से भागी, तो महाराज ने भी धनुष बाण लेकर उसका पीछा किया। वह दशों दिशाओं में दौड़ती फिरी, स्वर्ग, पृथिवी, अन्तरिक्ष नीचे तथा ऊपर के लोकों में कोई भी उसे शरण देने वाला दिखाई नहीं देता। वह जहाँ जहाँ

जाती, वही उसे साक्षात् यमराज अन्तक के समान पीछे लगे हुए महाराज पृथु दिखाई देने। जब वह थक गई, सब स्थानो से निराश हो गई, तो दुखित होकर मुडी और महाराज पृथु की शरण मे आई। उसने दीनता के स्वर मे महाराज से कहा—"प्रभो! आप तो सब प्राणियो के पालक है। हे शरणागतवत्सल! आप तो सभी को शरण देनेवाले है। हे धर्मज्ञ आप तो धर्म का पालन करने वाले हैं। फिर इतने कठोर मेरे प्रति क्यो हो गये है? मेरे प्रति अपने स्वभाव के प्रतिकूल आचरण क्यो कर रहे है? जब आप सबके पालक हैं, तो मेरी भी पालना कीजिये। जब आप भयभीतो के भयत्राता असहायो के शरणदाता है, तो मुझे भी अभयदान दीजिये। जब आप धर्म के मर्म को भली भाँति जानते हैं, तो सदा से अवध्या मानी जानेवाली अबला के ऊपर आप अपना अमोघ अस्त्र क्यो छोड रहे हैं? मैने तो आपका कोई अपराध किया नही?'

महाराज पृथु बोले—"अपराध तूने क्यो नही किया है, तू मेरी प्रजा को अन्न नही देती। मेरे साथ भी अशिष्ट व्यवहार करती है। मेरी प्रजा भूखो मर रही हैं।"

पृथिवी ने कहा—'अच्छा, मान लीजिये, मैंने अपराध भी किया हो तो अपराधिनी स्त्री को भी धर्मात्मा पुरुष नही मारते। स्त्रियो पर शस्त्र चलाना सर्वथा निषेध है।"

महाराज पृथु ने कडककर कहा—"नही, ऐसी बात नही है, तू मुझे धर्म सिखाती है। धर्म गति अत्यत सूक्ष्म है। किस काम के करने से धर्म होता है, किसके करने से अधर्म होता है, इन बातो को सब नही जानते। जो अधम पुरुष अपने मुँह अपनी ही प्रशसा करने वाला हो, जो सभी प्राणियो को दुःख देने वाला हो, जिसके कारण सभी को उद्वेग होता हो ऐसा

प्राणी चाहे स्त्री हो या पुरुष उसे मार देने पर राजा को दोष नहीं लगता, उलटा उसे महापुण्य ही प्राप्त होता है। सृष्टि के आदि मे ब्रह्माजी के बनाये हुए बीजो को तैने अपने गर्भ मे छिपा लिया है, इसलिये मै तुझे मारकर उन सब को निकलवा लूँगा।"

पृथिवी ने विनीत भाव से कहा—"महाराज, आप तो रोष में भर रहे हैं। आप स्वय ही सोचिये। मुझे यदि आप मार डालेंगे, तो अपनी इतनी प्रजा को आप रखेंगे कहां ? जीवो का आधार तो मैं ही पृथिवी हूँ, मुझे मार कर क्या सब को आश्रय-हीन बना देगे।"

गरज कर महारज पृथु ने कहा—"तू कैसी बाते कर रही है है, तुझे मेरी सामर्थ्य का बल, वीर्य, पराक्रम और योग, ऐश्वर्य का पता नही। मैं अपने योगबल से समस्त प्रजा को स्वय ही धारण करूँगा।

पृथिवी ने दीनता के स्वर मे कहा—"प्रभो! मुझे आपकी शक्ति का पता है, आप सर्वेश्वर हैं, सर्वसमर्थ हैं, सब कुछ कर सकते हैं, किन्तु मेरी मर्यादा भी तो आप ही ने स्थापित की है।

क्रोधपूर्वक महाराज पृथु ने कहा—"मैंने क्या यही मर्यादा स्थापित की है कि यज्ञ के भागो को तो तू गट्ट-गट्ट गटक जाय और अन्न देने के समय ऊसर बन जाय। आज मैं तिलतिल। के बराबर तेरे टुकडे कर दूँगा। फिर से तुझे मेदिनी बना दूँगा

मैत्रेय मुनि कहते हैं—' विदुरजी ! भगवान् पृथु को क्रुद्ध देखकर पृथिवी ने बडे ही दीनता-भरे शब्दो मे उनकी स्तुति की पृथिवी की स्तुति सुन कर भी महाराज का क्रोध शान्त नही हुआ। उनके निश्चय मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही हुआ तब तो पृथिवी अत्यत ही भयभीत हुई। उसने अपने मन को स्थिर किया। और अत्यत ही दीनता के साथ कहने लगी—राजन्,

छिपा लिया । आप लोग धर्मात्मा जब मेरी रक्षा करने मे उदासीन हो गये, तो उन अधर्मियों को अपने अन्न से पुष्ट करती तो यज्ञयाग सभी बन्द हो जाते । अतः यज्ञ रक्षार्थ ही मैंने अन्नो को छिपा रक्खा है। अब अधिक काल होने से वे मेरे पेट मे पच गये । अब किसी युक्ति से उन्हें आप निकाल लें । मेरा दोहन करलें ।"

महाराज पृथु ने कहा—"तुम्हारा दोहन किस प्रकार होगा, उस युक्ति को भी तुम मुझे बता दो ।"

पृथिवी बोली—"देखिये महाराज, मैंने गौ का रूप धारण कर लिया है । गौ को दुहने के लिए तीन वस्तुएँ चाहियें । एक तो दुहने वाला, एक दोहन का पात्र और एक गौ का बछड़ा । बछड़ा को देखकर गौ उसके प्रेम से दूध उतरती है । बछडे के विना जो बलपूर्वक विविध कृत्रिम उपायों से गौ का दूध निकालते हैं, उससे अन्तःकरण में सद्गुणों का विकाश नही होता; कारण उसमे दुग्धपने का गुण नही होता । अतः राजन् ! पहिले आप किसी श्रेष्ठ प्राणी को मेरा बछड़ा बनालें । मेरा नाम कामधेनु है, जैसा बछडा होगा, उसके अनुरूप ही मैं वैसा अन्न उसके लिए उत्पन्न कर दूँगी। बछड़े के अनुरूप ही मेरा दुग्ध परिवर्तित होता रहेगा ।"

पृथुजी ने पूछा—"दोहने वाला, दोहन पात्र और बछड़े के अतिरिक्त और तो कुछ न करना होगा ?"

पृथिवी ने कहा—"हाँ, एक काम और भी करना है, उसे आप ही कर सकते हैं। आप देख रहे हैं कि मैं ऊबड़ खाबड़ हूँ, सब स्थानों में मेरे ऊपर पहाड़ हैं, पानी बरसता है, तो बहकर नदियों में चला जाता है, मेरे ऊपर टिकता नही । सर्वत्र विषम बनी हुई हूँ । आप इन सब पहाड़ों टीलों को उखाड़कर एक स्थान मे रखिये । मुझे बराबर बनवाइये मेरे ऊपर खेतों की

मेड बनवाइये, खेती का प्रबन्ध कीजिये, ताकि क्यारियाँ बनने से जल ठहर सके। ऐसा होने से मैं यथेष्ट अन्न उत्पन्न करूँगी। इन ककड पत्थरो को मेरी मिट्टी से पृथक् करके मुझे कोमल मृत्तिका मयी बनवादे। गङ्गा यमुना के बीच मे अपने परम पुण्यप्रद प्रदेश मे तो मुझे समान करदे। कही भी पर्वत टीला न रहे। फिर आप देखें मैं कितना अन्न देती हूँ।"

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी! पृथिवी की वह बात महाराज पृथु ने मान ली और वे पृथिवी को दुहने का उपक्रम करने लगे।

छप्पय

धरनी धरि के धीर, वीर तै बोली बानी।
मोइ न मारे नाथ! आप ज्ञानी विज्ञानी॥
गऊ तिहारी बनी सबनि ते दूध दुहाओ।
दुहनी दोग्धा लाइ वीरवर वत्स बनाओ॥
युक्ति सहित यदि दुहिंगे, तो इच्छित फल देउँगी।
प्रकट सबहि औषधि करूँ, दुहिता बनि यश लेउँगी॥

राजा पृथु के प्रभाव से पृथिवी दोहन

(२६३)

इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः।
वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः।
तथा परे च सर्वत्र सारमाददते बुधाः।
ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथु भाविताम्॥*
(श्री भा० ४ स्क० १८ अ० १२, १३ श्लोक)

छप्पय

सुनि वसुधा के बैन बेन-सुत दुहिवे लागे।
मनुकूँ कीयो वत्स, पात्रकर कीयो आगे॥
सुर-गुरु दोही इन्द्र वत्स करि कनक पात्र महँ।
अमृत रूप जो दुग्ध, ओज बल वीर्य गात्र महँ॥
असुर दैत्य प्रह्लाद कूँ, वछरा गौ के करि लये।
लोह पात्र महँ सुरा अरु, आसव दुहि के भगि गये॥

वस्तुएँ सब एक सी हैं, इनमें भेद नहीं, विषमता नहीं, दुख नहीं, सुख नहीं। योग के भेद से, कर्ता के भेद से, पात्र के भेद से

---

*मैत्रेय मुनि कहते हैं—विदुरजी! इस प्रकार पृथिवी के द्वारा कहे हितकारी और प्रिय वचनों को मानकर महाराज पृथु ने अपने पूर्वज स्वयंभुवमनु को वत्स बनाकर अपने हस्त रूपी पुनीत पात्र में जितने प्रकार की औषधियाँ थीं सभी को दुह लिया। इसीलिये पृथु के दुह लेने

वस्तुओ मे भेद भाव स्थापित कर लिया जाता है। योग का भेद इस प्रकार है, कि अगूर है, जौ हैं, गुण है, ये सब सुन्दर है सात्विक है, किन्तु इन्हे ही सडा कर युक्ति से सुरा बनाते हैं तो यह तामस और मादक अशुचि वस्तु बन जाती है। कर्ता के भेद से इस प्रकार होता है कोई धातु है शुद्ध सात्विक कर्ता उसकी भगवान् की मनोहर मूर्ति बनाता है, उसका पूजन करके परम-पद को प्राप्त करता है। दूसरा हिंसक कर्ता उसके अस्त्र शस्त्र बनाता है, खड्ग बाण आदि बना के निरपराध प्राणियो की हिंसा करता है नरक का अधिकारी बनता है। कर्ता जैसा योग करेगा वैसा ही वस्तु बन जायगी। सखिया है। कर्ता चाहे तो उसके प्रयोग से दूसरो के प्राण ले सकता है और उसी को शोध कर फूक कर औषधि बना कर मरते हुओ को जिला सकता है। पात्रभेद से भी वस्तुओ मे भेद हो जाता है। दूध, दही अमृत माने गये हैं। किन्तु इन्हे ही ताँबे के पात्र मे रख दो तो विष बन जाते है। वर्षा का जल है। नदी मे पडने से मिष्ठ और पेय होता है, वही समुद्र मे पडने से खारा और अपेय हो जाता है। वस्तुओ का अच्छी बुरी बनाने वाला कर्ता की भावना ही है। भाव ही भाव का कारण है।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! जब पृथिवी रूपी गौ सौम्य बन गई और उसने अपने आपको दुहने की सम्मति दी तो सबके स्वामी महाराज पृथु ने समस्त प्राणियो के कल्याण के निमित्त सभी का आहार पृथिवी से दुहा। जिसकी जैसी

के अनन्तर और जितने भी जीव थे सभी ने अपनी अपनी भावना के अनुसार पृथु के द्वारा वश म की हुई पृथिवी को दुह लिया। महाराज के समान जितने बुधजन सब स्थानो से सार को ग्रहण कर लेते हैं।"

प्रकृति थी, जिसे जो वस्तु रुचिकर थी, उसने वही वस्तु अपने पात्र अनुरूप वछरा वनाकर दुह ली।

इस पर विदुरजी ने पूछा—"महाराज, गौ तो एक ही है फिर उसके दूध मे भेद भाव कैसे हो गये ?"

यह सुनकर मैत्रेयजी हँस पडे और वोले—"विदुरजो आप नित्य देखते हैं, फिर भी ऐसा प्रश्न करते है। एक ही स्त्री है उसे पति, पिता, पुत्र, भाई सव भिन्न भिन्न भावनाओ से देखते, हैं। वच्चा जिन मातृ स्तनो से स्नेहमय दुग्ध प्राप्त करते हैं, उन्हीं से पति किसी भिन्न वस्तु का रसास्वादन करता है। एक ही पृथिवी है, उसमे आम वो दीजिये, मीठा फल लगेगा, नीम, आक, धतूरा वो दीजिये कडवे फल लगेगे। जो जैसा होता है, वह अपनी भावना के अनुसार वैसा ही वायुमण्डल पैदा कर लेता है और वैसी ही वस्तुओ का सृजन करता है। कर्ता योग और पात्र भेद से ही वस्तुओ मे भेद होता है। गौ रूपी पृथिवी तो एक ही थी किन्तु जैसा दुहने वाला हुआ, जैसा उसका पात्र हुआ जैसे वछडे ने गौ को पुहनाया वैसा ही दूध उसके पात्र मे आ गया।

प्रसन्न होकर विदुरजी वोले—"महाराज ! समझ गया मैं। गुरुओ के विना ऐसी वातो का रहस्य दूसरा कौन समझा सकता है। अव कृपा करके मुझे यह बताइये, कि किस किसने, किसे किसे वछरा वनाकर किस किस पात्र मे, कैसा कैसा दूध दुहा। यही सुनने की मेरी वडी इच्छा है।"

यह सुनकर भगवान् मैत्रेय मुनि वाले—"विदुरजी। सुनिये अव मैं आपको सब वातें वताता हूँ। मनुष्य ही इस पृथिवी को अपने वाहुवल से वश मे कर सकते हैं। अत महाराज पृथु ने गौ रूपी पृथिवी को अपने वश मे कि-ा। मनुष्य का मुख्य

पात्र उनका हाथ ही है, अत महाराज पृथु ने अपने हाथ रूपी पात्र मे अपने पूर्वज मनु को वछरा वना कर औषधि रूप दूध दुहा । जो मनुष्य अपने पूर्वजो के पथ का अनुसरण करते हुए वाहुवल से पुरुषार्थ करते हैं उन्हे वसुधा रूपी गौ सभी सम्पत्ति देती है, उन्हे रोटी लँगोटी का कभी घाटा नही रहता । अत. पृथु महाराज ने गेहूँ जौ चावल आदि जितने अन्न है सव को दुहा मनुष्य के प्रतिनिधि पृथु महाराज जव उसे दुह चुके तो फिर देवताओ की वारी आई । देवताओ के गुरु वृहस्पति जी ने इन्द्र को वछरा वना कर सुवर्ण के पात्र मे वीर्य ओज और वल रूपी अमृत को दुहा । देवता जव तक गुरु के आश्रय मे रहकर इन्द्र की भुजाओ से पालित होंगे तव तक उनमे मनोवल, इन्द्रियवल और शारीरिक वल रहेगा । जब वे अपने पथ को त्याग देगे तो निर्वल हो जाँयगे ।

दैत्य दानवो ने अपने पूर्वज प्रह्लाद को वत्स वनाकर लोहे के पात्र मे सुरा और आसव रूपी अन्न दुहा । असुरो का अमुख्य आहार आसव ही है ।

गन्धर्व और अप्सराओ का मुख्य आहार है सगीत । नाचना, गाना और वजाना इन तीनो को मिला कर ही सगीत होता है । अत इन लोगो ने गन्धर्वों मे मुख्य विश्वावसु को वछरा वना कर कमल-रूप पात्र मे सगीत की मधुरता और सुन्दरता रूप दूध को दुह लिया । पितरो ने अपना वछरा अर्यमा नामक पितर को वनाया । उन्होने कच्चे मिट्टी के पात्र मे पितरो को दिया जाने वाला कव्यरूप श्राद्धान्न नामक दूध दुहा ।

जितने सिद्ध थे विद्याधर थे, उन्होने अपने वग मे मुख्य जो भगवान् कपिल देव थे, उन्हे वछरा वनाकर आकाश रूपी पात्र म अष्टसिद्धियो तथा अन्तर्धानादि विद्याओ को दुहा ।

मायावी असुरो ने मय नामक अपने प्रधान मायावी असुरो को बछरा बनाकर माया से विचित्र विचित्र रूप बनाना आदि विद्याओ को गोरूपी पृथिवी से दुहा।

जितने रुधिर पीने वाले यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, वेताल आदि हैं उन्होने रुद्र को बछरा बनाकर कपाल के पात्र मे रुधिर रूपी दूध दुह लिया। जितने विषैले जन्तु थे फन वाले सर्प, बिना फन वाले, बिच्छु, ततैया, नाग आदि उन्होने तक्षक नाग को बछडा बना कर बिल रूप पात्र मे विष रूप दूध को दुह लिया।

पशुओ ने सोचा भैया, हम किसे बछड़ा बनावे। तब उन्होने कहा—"अरे, औरो ने तो कल्पित झूठा ही बछडा बनाया है, हमारे तो साक्षात् कामधेनु के सुत नदीश्वर वृषभ ही उपस्थित हैं अत· उन्होने उनको ही बछडा बनाकर अरण्य रूप पात्र मे घास पत्ता रूप दूध को दुह लिया। हिंसक जन्तुओ ने सोचा—"हम लोगो का काम तो घास पत्तो से चलने का नही। इसलिये चार पैर वाले जानवर होने पर भी हम अपना पृथक् वर्ग बनायेगे। हम इस घास फूस रूपी अन्न को नही स्वीकार करेंगे। अत. उन सबने सिंह को बछडा बनाकर अपने शरीर को ही पात्र बनाकर कच्चा मास रूप दूध दुह लिया। पकाने का झझट कौन करे। मारा और खाया।

पाख वाले पक्षियो ने गरुडजी को बछडा बनाकर चर अचर दो प्रकार का दूध दुहा। चर तो कीट पतङ्ग जीव जन्तु अचर फल मूल आदि यही पक्षियो का आहार है। वृक्षो ने वट के वृक्ष को वत्स बनाकर अपनी जड़ रूप पात्र मे रस रूप दूध दुह लिया। पर्वतो ने हिमालय को बछडा बनाकर अपने शिखर रूप पात्र मे भाँति-भाँति की धातुओ को दुह लिया।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! अब हम आपको कहाँ तक गिनावें। यो समझ लीजिये कि जितने भी प्रकार के जन्तु हो सकते हैं, सभी अपने अपने प्रधान को बछडा बना कर अपने स्वभावानुकूल पात्र मे अपनी प्रकृति के अनुरूप दूध दुह लिया जो जिसका आहार था, वह सभी पात्र और वत्स भेद से उन्हे मिल गया।

जब सब लोग दुह चुके, सभी को अपनी इच्छानुसार दूध मिल गया, तब गो-रूपी धेनु ने कहा—"और किसी को तो कुछ नही चाहिये ? इतने मे ही एक लालची मनुष्य बोल उठा-'और भी आप जो दे दे।" हँसकर धरणी ने कहा—"लालची को चाहे जितना मिल जाय, उसका कभी पेट न भरेगा। वह सदा भूखा ही बना रहेगा। सबकी तृप्ति मैं कर सकती हूँ, किन्तु लालची की तृप्ति करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है।"

इस प्रकार जब पृथिवी ने सभी को यथोचित आहार दे दिया, तो महाराज पृथु पृथिवी पर परम सन्तुष्ट हुए। उन्होने कहा—"वसुधे ! तैंने मेरे यश का उसी प्रकार विस्तार किया, जिस प्रकार गुणवती कुलवती सुशीला धर्मपरायण कन्या श्वशुर गृह मे जाकर अपने मातृकुल की कीर्ति फैलाती है। इसलिये आज से तू मेरी पुत्री हुई।" बात को सुनकर पृथिवी अत्यत सन्तुष्ट हुई और तुरन्त अन्तर्धान हो गई।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! तभी से पृथु की पुत्री होने के कारण भूमि का पृथ्वी नाम पड़ा। यह मैंने

सक्षेप में आप से पृथ्वी दोहन की कमनीय कथा कही। अब बताइये आप क्या सुनना चाहते हैं ?"

छप्पय

विश्वावसु करि वत्स दुहचो संगीत अप्सरनि।
कपिलवत्स नभ पात्र सिद्धि लीन्हो दुहि सिद्धनि॥
करे रुद्र वर वत्स भूत प्रेतादिक गणने।
लै कपाल ई पात्र दुहचो रुधिरासवसवने॥
पात्र वत्स के भेद तें, दुग्ध सवनि अभिमत लयो।
तव पृथु ने पुत्री करी, पृथ्वी नाम तवहिं भयो॥

—※—

महाराज पृथु द्वारा पृथ्वी का संस्कार

(२६४)

चूर्णयन् स्वधनुष्कोट्या गिरिकूटानि राजराट् ।
भूमण्डलमिदं वैन्यः प्रायश्चक्रे सम विभुः ॥*

(श्री भा० ४ स्क० १८ अ० २९ श्लो०)

छप्पय

ऊबड खावड भूमि परी कहुँ पर्वत भारी ।
ऊँची नीची कहूँ, कहूँ जगल कहुँ झारी ॥
लेके पृथु ने धनुप करी चौरस सब वसुधा ।
गिरि उत्तर दिशि चुने करो खेती की सुविधा ॥
भूमि समान करि नृपति, हु पुर पत्तन रचे तव ।
पहिले हते न नगर पुर, इत उत तरुतर बसे सब ॥

आवश्यकता आविष्कारकी जननी है और आवश्यकता उत्पन्न होना ही पतन है । जिसकी जितनी ही बढी हुई आवश्यकतायें हैं, वह उतना ही अशान्त है, उतना ही दुखी है, किन्तु शरीर के साथ आवश्यकताय लगी हुई है । शरीर प्राप्त भागो से हो

---

*मैत्रेय मुनि कहते हैं—' विदुरजी ! अपने धनुप के अग्रभाग से राजराट भगवान् पृथु न पृथिवी पर इधर उधर बिना नियम के पडे हुए पर्वतो को तोड फोड कर इस भूमडल को प्राय समतल बना दिया ।

तो बनता है। शरीर मिला है तो भोग भोगने ही पड़ेंगे। भोग भोगने को उपकरण साधन भोग सामग्री भी चाहिये इसलिये जीव प्रारब्धवश भोग सामग्रियों को जुटाता है और फिर उन्ही मे फँस जाता है। उन्हे सत्य मानकर उसमे ममता स्थापित करके अपने बन्धन को और दृढ करता है। काश्मीर की ओर एक रेशम का कीडा होता है। वह अपने मुख से रेशम निकालता जाता है और उसे अपने चारो ओर लपेटता जाता है। लपेटते-लपेटते वह भी उसके भीतर बन्द हो जाता है, निकल नहीं सकता। जब वह सब रेशम निकाल कर उसमे जकड़ जाता है, तो कीड़े पालने वाले उस गोल पिंडी सी को तोड लाते हैं, पानी मे उबालते है। कीड़ा मर जाता है, रेशम के सूत को वे लोग निकाल लेते है। इसी प्रकार यह जीव, यह मेरा घर, यह मेरा परिवार, ये मेरे पशु, यह मेरा धन, ऐसे मेरा मेरा करके ममत्व बढाता है, संसार बन्धन को दृढ करता है। ये मिट्टी के बने पदार्थ न मेरे, न तेरे, ये सब बनाने वाले के हैं। कोई बड़ी उद्योगशाला है, शाला के स्वामी ने सेवकों के ठहरने को बहुत से भवन बना रखे है। सेवक इनमे रहे हमारा काम करें। सेवक उनमे रहते हैं, परस्पर में झगड़ते हैं, यह मेरा आँगन है, यहाँ तुम कैसे रह सकते हो, लड़ाई झगड़ा करते हैं। जहाँ कार्य बंद हुआ, स्वामी सबको निकाल बाहर करता है, न मेरा रहा न तेरा। साराश यह है, कि वस्तुओं का जुटाना, बढाना, भोग सामग्रियो मे परिवर्तन करना यह उन्नति नही। यह तो विवशता है अवनति है। तमोगुण प्रधान लोग अधर्म को ही धर्म मानते हैं, अवनति को ही उन्नति के नाम से पुकारते हैं, पतन को ही उत्थान बताते हैं। इसी का नाम अविद्या है।

जब पृथ्वी दोहन की कथा सुन चुके तब विदुरजी ने पूछा

—"भगवन् ! यह पृथ्वी दोहन की बात हमारी समझ मे कुछ आई नही। पृथ्वी दोहन के मानी क्या ? इस पर हँसकर मैत्रेय मुनि बोले—' अजी, विदुरजी ! कैसी बात कर रहे हो, इस मे न समझ मे आने वाली बात कौन सी है। इस रूपक का सरल अर्थ यह है कि महाराज पृथु ने पृथिवी को इतनी सरल सीधी गौ की भाँति बना दिया, कि सभी को इससे अपना अपना आहार मिलने लगा। कोई आदमी बहुत सीधे सादे सरल होते है, तो कह देते है कि नही, ये तो भाई, गौ है। सीधे सरल उदार पूरुपो से ही सबकी वृत्ति चलती है, जो कृपण हैं, अनुदार हैं वे तो जो आया धरि गुल्लक मे ही करते रहते हैं। उन्हे दूसरो के आहार की चिंता नही। अपनी थाती बढे। महाराज पृथु तो उदारमना थे, अत उन्होने सबको आहार पहुँचाया। जैसे पिता पुत्री पैदा करके उसे पालता पोपता है। जब बडी हो जाती है, तो वस्त्राभूपणो से अलकृत करके यथाशक्ति द्रव्य के सहित उसे सत्पात्र को दान कर देता है। उसका यह कार्य पर उपकार के लिये है। दूसरे के घर को वसाने के लिये, दूसरे के वश की वृद्धि के लिये वह कन्या को पालता है। इसी प्रकार महाराज पृथु ने उसे अपने वश मे करके सबके लिये दुहा। सबकी आजी-विका का प्रबंध किया। इसीलिये पृथिवी उनको पुत्री कहलाई। उनके नाम को वढाने वाली हुई।"

विदुरजी ने कहा—"हाँ, महाराजजी ! ठीक है, अब समझ मे बात आ गई। हाँ तो फिर महाराज पृथु ने अपनी पुत्री पृथिवी का कैसे पालन किया।"

इस पर मैत्रेय मुनि बोले—"विदुरजी ! महाराज पृथु से पूर्व यह पृथिवी बडी ऊबड खाबड थी। कही एक सी समतल भूमि नही थी। कही पहाड है, कही ऊँचा है, कही नीचा है।

कही गड्ढा है कही खाई है, कही टीले है, कही घना वन है, कही चारो ओर गहन झाडियाँ लगी हैं। प्रतापवान महाराज पृथु ने अपना धनुप उठाया। धनुप पर वाण चढाकर पहाडो को तोड फोड डाला। सोचा, इस पृथिवी को सुन्दर समतल वना देना चाहिये। इसलिये जितने पहाड थे, सवको उठाकर उन्होने उत्तर दिशा मे रख दिया। शिवजी से कह दिया—"महाराज! आप वहुत ऊवड खावड वस्तुओ को चाहते हो। आप औघढदानी ही ठहरे। आक धतूरे को आप चवा जाते हो, इसलिये इस ऊवड खावड भूमि मे आप ही निवास करो।" शिवजी ने कहा—"अच्छा भैया! जो किसी के काम की वस्तु न हो वह हमारे काम की। देवताओ ने अमृत निकाला तो हमे वुलाया भी नही, जहर हमारे मत्थे मढ दिया। अच्छो वात है, तुम एक द्वार वना दो। उसके नीचे सम भूमि। उसके ऊपर विषम भूमि रहे। जहाँ ऋषि, मुनि, जगली, कोल भील, शक, हूण ये ही सव लोग रहे?"

महाराज पृथु ने शिवजी के नाम से ही एक द्वार वना दिया जिसे "हरद्वार" कहते है। हरद्वार से ऊपर पहाड रह। नीचे नीचे समतल भूमि वाला देश रहा। इस प्रकार सभी पहाडो को तोड फोड कर उन्हाने भूमि को उपजाऊ वना दिया। जहाँ जहाँ उनका रथ गया, वहाँ वहाँ तो भूमि सम हो गई, किन्तु जहाँ भूल से कुछ छूट गया या जहाँ किसी मुख्य देवता का मदिर तीर्थ देखा उसे महाराज पृथु ने छोड दिया। इस प्रकार प्राय सम्पूर्ण पृथिवी को ही उन्हाने एक सी कर दिया?"

इस पर विदुरजी ने पूछा—"महाराज! प्राय क्यो लगाते हैं। कहीकही उन्हाने ऊवड खावड पृथिवी को क्या छोड दिया?

महाराज पृथु तो सर्वज्ञ थे। उनसे भूल तो हो नही सकती। फिर सब भूमि को एक सी क्यो नही किया ?"

इस पर हँसकर मैत्रेयजी बोले—"अब, विदुरजी ! कुछ बानगी के लिये भी तो छोडना चाहिये,जिससे लोग अनुमान कर सकें कि पहिले ऐसी पृथिवी थी। दक्षिण मे ऐसी मिलती है। कुछ अपने स्थान को सभी मे ममत्व होता है। महाराज पृथु की राजधानी गगा यमुना के मध्य मे ब्रह्मावत प्रदेश मे थी, इसलिए इस भूमि को उन्होंने इतनी सुन्दर समतल बना दी कि इस मे हरिद्वार के नीचे कही न पहाड, न टीला, न ऊबड, न खावड। सुन्दर चौरस भूमि है । इतनी सुन्दर उपजाऊ, उर्वरा भूमि ससार मे कही भी नही है। फिर भी आपको पृथु महाराज के पूर्व की भूमि देखनी हो, तो जहाँ चर्मरावती नदी (चबल) का श्री यमुना जी से सगम हुआ है। (इटावे से आगे) वहाँ की भूमि को आप देखेंगे। वहाँ १०।१५ योजन तक वैसी ही ऊबड खावड भूमि अब तक पडी है। उसमे ग्राम नही, नगर नही, खेती वारी नही। कही कही ग्रामीणो ने खोदखाद कर पहाडो की भाँति छोटे छोटे खेत बना लिये हैं। प्रतीत होता है पृथु महाराज का रथ वहाँ तक पहुँचा नही था। श्री बदरीनाथजी से कैलाश तक पहाडो के पश्चात् समतल भूमि तो बहुत है, किन्तु उसमे खेनी बारी कुछ नहो होती। पेड भी नही, मरु भूमि की भाँति पडा रहती है। ऐसे ही और भी स्थान है, उन्हे महाराज ने बानगी के लिए छोड दिया।

अब जब भूमि सम हो गई तब तो लोगो ने पत्थरो को इकट्ठा करके घर बनाने आरम्भ कर दिये। जहाँ पत्थर नही रहे वहाँ मिट्टी के ई टे बनाकर उन्हे अग्नि मे पकाकर उसी के घर बनाने लगे। जहाँ ये भी सुविधाएँ नही थी वहाँ मिट्टी मे

पानी मिलाकर उसी के कच्चे घर बनाने लगे, उन्हे पेड पत्तो से पाटने लगे । बहुत से घास फूस के छप्पर बनाकर उन्ही मे निर्वाह करने लगे। इस प्रकार खेट, खर्वट, ग्राम, पुर, नगर, किले कोल भीलो के आवास बनने लगे। कुछ लोग १० । २० गाँव के शासक बनकर अपनी रक्षा के लिए छोटे छोटे किले बनाने लगे। सेना रखने लगे । पर्वतो से सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा आदि धातुओ को निकालने लगे। बाजार बनने लगे क्रय विक्रय आरम्भ हुए। महाराज पृथु से पहिले पृथिवी पर पुर, ग्रामादिको की कल्पना नही थी। लोग जहाँ तहाँ पहाडोकी खोहो मे वृक्षो के नीचे निवास करते थे।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी, यह आपने क्या कहा महाराज पृथु से पहिले सब असभ्य ही लोग पृथिवी पर बसते थे ? वे सब पिछडे हुए अवनत जगली ही आदमी थे ? यह जो सब उन्नति हुई है, सब महाराज पृथु के ही पश्चात् हुई है ?

यह सुनकर सूतजी हँस पडे और बोले—"महाराज ! आप पहिले सभ्य असभ्य की व्याख्या कर दे। उन्नति अवनति किसे कहते है यह बतादें तो मैं फिर आपकी बातो का उत्तर दूँ ?"

शौनकजी बोले—"सूतजी, यह तो मेरी सी बात है, सभ्य वही जो अच्छे सुन्दर बढिया बढिया कपडे पहिने, भाँति भाँति के स्वदिष्ट पदार्थों को नित्य अनक बार खाय। जिसके टहलने बैठन का समय हो। बहुतसी पुस्तको को पढे ससार भर के समाचारो को जानें सब विपयो की जानकारी रखे वही सभ्य है इसके जा विपरीत हो। कम कपडा पहिने, साधारण मकानो मे वृक्षो के नीचे निर्वाह करे, कम से कम वस्तुओ का सग्राह करे

यही असभ्य। इसी प्रकार नित्य नई वस्तुओ का आविष्कार होते रहना सभ्यता है और पुरानी चाल ढाल रहन सहन को अपनाना ही असभ्यता है।"

यह सुनकर सूतजी खिलखिला कर हँस पडे और बोले--"महाराजजी, मालूम होता है आप कलियुगी सभ्य लोगो का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। महाभाग ! सभ्यता असभ्यता उन्नति अवनति का सम्बन्ध बाह्य वस्तुओ से नही है मन से है। यही नही, आपने जिसे सभ्यता बताया है, वास्तव मे वही असभ्यता है, जिसे आपने उन्नति बताई है, वास्तव मे वही अवनति है। ज्यो ज्यो मनुष्यो की स्वाभाविक सिद्धियाँ कम होती जाती है त्यो ही त्यो भौतिक वस्तुओ का आश्रय लेता जाता है, अपने को अधिकाधिक कर्त्ता मानता जाता है। जो जितना ही भौतिक वस्तुओ के आश्रित होगा वह उतना ही असभ्य समझा जायगा।"

शौनकजी ने पूछा–"वह कैसे ? इसे विस्तार से समझाइये।"

सूतजी बोले—'देखिये, प्राचीन काल मे आदि सतयुग मे सभी को स्वाभाविक सिद्धियाँ प्राप्त थी। भूख लगी, वृक्षो से फल तोड लिए, खा लिए, उस समय न कोई वस्तु अपनी थी, न पराई। न किसी को सरदी सताती थी, न गर्मी दुख देती थी। सब स्वच्छन्द होकर जहाँ चाहते विचरते, जहाँ चाहते सो जाते। सभी अपना ही था। जब शनै शनै. समय के प्रभाव से वह शक्ति नष्ट होने लगी, तो लोगो को अपने योगक्षेम की चिन्ता होने लगी। कुछ वृक्षो की परिधि बाँध ली उनमे अपनापन किया, पानी देने लगे, उसके फल बढाने का उद्योग करने लगे। फलो से काम न चला तो औषधियो की खोज करने लगे। जब समय पर कभी न मिली, तो उनके बीज रखने लगे। फिर

उन्हे खेतो मे बोने लगे कृषि करने लगे। यह उन्नति नही अव-नति हुई।

पहिले कोई वस्त्र नही पहनते थे, आवश्यकता ही नही थी, सरदी गरमी सहने की स्वाभाविक शक्ति थी। वह शक्ति समय की गति से नष्ट होने लगी। लोग सरदी गरमी सहन करने में समर्थ न हुए। वृक्षो के वल्कल उतार कर पहिनने लगे। उनसे भी काम न चला तो कपास का पेड देखकर उसके बीज बोने लगे। रुई निकाल कर उसके वस्त्र बनाने लगे। एक ऊपर का एक नीचे का सब दो वस्त्र पहिनते थे। धीरे धीरे इतने से भी काम न चला, फिर तो क्रमश भाँति २ के वस्त्र बनने लगे। ये भाँति २ के वस्त्रो का आविष्कार उन्नति नही अवनति है।

पहिले नदियो मे से जहाँ से चाहते थे लोग पानी पी लेते थे। कुछ लोग नदियो से दूर रहने लगे। बराबर वहाँ जाने मे आलस्य करने लगे। पास मे ही कुआ बनाने लगे। मिट्टी के घडे बनाकर उसे पकाने लगे, उसमे पानी रखने लगे, वे जब फूट जाते तब अन्य धातुओ के घडे बनाने लगे। इतने से भी कार्य न चला तो लोहे की नलिका लगाकर घर-घर मे जल-वाहक स्रोत लगाने लगे। एक स्थान पर जल-सग्रह करके यन्त्रो द्वारा घर घर पहुँचाने का प्रयत्न किया। यह उन्नति नही अवनति है।

पहिले लोग जब चाहते स्वर्ग चले जाते, फिर जब चाहते पृथिवी पर लौट आते। शनैः शनैः देवताओ ने ईर्ष्यावश मनुष्यो की यह शक्ति नष्ट करदी। तब लोग मर कर ही स्वर्ग जाने लगे। स्वर्ग जाना तो बन्द हो गया, किन्तु जहाँ चाहते वायुवेग से पैदल चले जाते। ऋषियो! और युगो की बात तो छोड़ दीजिये। मैंने कलियुग मे अभी अपनी आँखो देखा था। सप्तक देश

[बुलदशहर के आस पास] से इन्द्रप्रस्थ लगभग ३०, ३५ कोश है। एक व्यापारी नित्य प्रति पैदल जाता था। अपनी वस्तुएँ वेचकर शाम को घर लौट आता था। जब लोग निर्बल हो गये, इतने दूर चलने मे असमर्थ हुए, तो घोडो पर, ऊँटो और हाथियो पर दौड कर जाने लगे। उन पर भी कष्ट प्रतीत हुआ तो रथ बनाये। विविध वाहन बनाये। फिर सजीव वाहनो से भी काम न चला तो निर्जीव वाष्प आदि की सहायता से बडे बडे वाहन बनाये गये। नित्य नूतन वाहनो का आविष्कार होना मनुष्य की उन्नति का द्योतक नही है, उसकी निर्बलता और पराधीनता का द्योतक है।

पहिले लोग सकल्प से समुद्रो को पार कर जाते थे। जब यह शक्ति नष्ट हो गई तो घडो की घरनी बाँधकर पार होने लगे, उससे भी काम न चला तो लकडी की नौकाये बनाने लगे। फिर लोहे के पोत बनाने लगे, वायु के अनुकूल होने से पाल के द्वारा चलने लगे। जब और भी जल्दी पडी तो वाष्प के यन्त्रो द्वारा दौडाये जाने लगे यह उन्नति नही अवनति है।

पहिले विवाह आदि की प्रथा नही थी। जो चाहे जिससे सन्तान उत्पन्न करा ले। जब आपस मे एक स्त्री पुरुष के पीछे लडाई झगडा होने लगा, तो लोगो ने नियम बना लिया, एक पुरुष की एक ही स्त्री हो, विवाह-प्रथा चालू हुई, फिर इसमे भी लोग ऊधम करने लगे। तब और कडे कडे नियम बने और भी विधान बने। फिर तो स्त्री पुरुषो मे भी झगडे आरभ हुए। स्त्रियाँ अपना अलग अस्तित्व जताने लगी। वे अर्धाङ्गिनी न होकर विवाह का सौदा करने लगी। ऐसा करो तो मैं तुम्हारी बहू, ऐसा न करो तो हमारी तुम्हारी कुट्टी। अब परित्याग विधान बनने लगे। स्त्री अपने पति का परित्याग

करके अन्य पतियो का वरण करने लगी। उससे भी न पटी तो तीसरे से सांठ गांठ जोड़ ली। उससे भी मनमुटाव हुआ तो न्यायालय मे प्रार्थना-पत्र देकर किसी अन्य का द्वार खट खटाया। इस प्रकार अनेक पत्तलो की जूठन खाते फिरना, नित्य नये नये पतियो की चिन्ता करते रहना, यह उन्नति नही अवनति है। उत्थान नही पतन है। सभ्यता नही असभ्यता है।

पहिले वर्णाश्रम धर्म नहीं था, सब एक ही वर्ण के लोग थे। सभी हंस के सदृश निर्मल चित्त वाले थे। जब परस्पर में छोटा तू बड़ा, यह काम मेरा है, यह तू नही कर सकता, यह बात हुई तो वर्णों की कल्पना हुई। पहिले चार वर्ण बने, फिर उनके सयोग से संकरता होने पर अपवर्ण बने। फिर एक अन्तिम अन्त्यज वर्ण हुआ। ऐसे फिर अनेक वर्ण बने। सबकी वृत्ति निश्चित हुई। लोगो मे झगड़ा हुआ। एक दूसरे पर आक्षेप करने लगे, इस प्रकार यह विषमता यहाँ तक फैली कि एक दूसरे को मारने पीटने दूसरे का धर्म नष्ट करने उसे नीचा दिखाने का प्रयत्न करने लगे। यह कलह उन्नति नही अवनति है।

पहिले लोग स्वाभाविक शक्ति से जहाँ चाहे उड जाते थे। जब यह शक्ति नष्ट हुई, तो लोग देवताओ की आराधना से विमान प्राप्त करके उड़ने लगे। जब देवताओं को प्रसन्न करने में भी असमर्थ हुए, तो पारद आदि धातुओं को फूँककर उनसे विमान बनाने लगे। उसके फूँकने में भी असुविधा प्रतीत हुई तो वाष्प स्निग्धता आदि के सयोग से उड़न विमान बनाने लगे। इन विमानों का बाहुल्य उन्नति का चिह्न नही है घोर पतन का चिह्न है।

इस पर शौनकजी ने कहा—"सूतजी, आप सबको पतन ही बता रहे हैं। आप यह नहीं सोचते कि इन आविष्कारों से

यात्रा कितनी सुगम हो गई है। कितना समय का दचाव हो गया है पहिले जो यात्रा वर्षो मे होती थी वह अब कुछ प्रहरों मे समाप्त हो जाती है। इसे आप अवनति क्यो कह रहे हैं ?"

इस पर सूतजी बोले—"महाराज, समय तो निरवधि है, उसे तो न कोई कम कर सकता है न अधिक। देखना यह है कि इन उपायो से सद्वृत्तियो का विकास हुआ या सकोच। पहिले यात्राओ मे कितने अनुभव होते थे- कितनी शूरता वीरता आती थी, अपने प्रेमियो को रोज कितनी उत्कठा बढती थी। चिरकाल की प्रतीक्षा के पश्चात् मिलने से हृदय मे कितना आह्लादआनद होता था। अब वह कुछ नही। साधारण बाते हो गईं। लोगो के सद्गुणो का इन आविष्कारो से दिन दिन ह्रास हो रहा है। भगवान् का विश्वास कम होता जा रहा है, लो . शुष्क,हृदयहीन स्वार्थी, परपीड़क, इन्द्रिय-लोलुप होते जा रहे है।"

उस पर शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! यदि नगा रहना, बिना घर बार के घूमना, विवाह बन्धन न होना ये ही सब उन्नति के चिह्न है तब तो यह जगली सबसे अधिक उन्नत है।

यह सुनकर सूतजी हँस पड़े और बोले—"महाभाग ! उन्नति का सम्बन्ध इन बाह्य वस्तुओ से नही है, यह मैं पहिले बता चुका हूँ ! घोर सत्व की ओर घोर तप की। घोर उन्नति की,ओर अवनति की, परमज्ञानी की, महामूर्ख की बाहर से देखने मे एक सी स्थिति होती है, किन्तु उसके अन्तस्थल मे बहुत भेद है कि एक ज्ञानी भी मूर्खों की भाँति रहता है जहाँ चाहे खाता पीता है;और इच्छानुसार बर्ताव करता है, एक महामूर्ख भी ऐसा ही करता है दोनो की बाहर से एक सी दशा दीखने पर भी भीतर से भारी भेदभाव है। एक आत्मातृप्त है दूसरा अज्ञान से अशान्त है। कलियुगी लोग अवनति को ही उन्नति कहेगे। जब

तक हम जिस वस्तु को अच्छा न समझें तव तक उसमे प्रवृत्ति ही नही होगी। कलियुगी लोग विवाह बन्धन, धर्म कर्म, वर्णाश्रम व्यवस्था इन सब को ढोंग कहेंगे। ज्ञान से नही, अज्ञान से, कर्म से नही अधर्म से, सत्व गुण की पराकाष्ठा के कारण नहीं, तमो गुण के वशीभूत होकर ऐसा व्यवहार करेंगे। उसे धर्म मान कर प्रचार करेंगे। वास्तव मे लोग जिसे उन्नति कहते हैं, वह हमारी निर्वलता का चिह्न है। आँखो मे शीशा चढाकर हम यह सिद्ध करना चाहते हैं, हम पढे लिखे है किन्तु यह पता नही कि आँखो पर शीशा चढाना दृष्टि की न्यूनता, ज्योति की क्षीणता ब्रह्मचर्य के अभाव का द्योतक है। हमारी शक्ति का ह्रास है।

इस पर शौनकजी ने पूछा—"हाँ, सूतजी ! आपकी वात ठीक है, किन्तु यह बताइये। महाराज ध्रुव उत्तानपाद के भी तो महल थे, नगर थे, फिर आप यह कैसे कहते है, ग्राम नगर की प्रथा पृथु महाराज के ही राज्य से प्रचलित हुई।

इस पर सूतजी बोले—"महाभाग ! पहिले भी नगर किले आदि थे, किन्तु वे दिव्य होते थे, स्वर्गीय विमानो क सदृश विशिष्ट विशिष्ट व्यक्तियो के ही यहाँ होते थे। महाराज पृथु के राज्य से साधारण प्रजा के लोग भी घर, द्वार, उद्यान, भवन, नगर, ग्राम, बना कर रहने लगे। नियमानुसार नगर, समितियाँ वनी, स्वच्छता-रक्षा आदि के भी प्रवन्ध हुए। राजपथ सडकें वनी नियमानुसार प्रान्त उपप्रान्त राजधानियाँ वनी। वर्तमान समय के जो विधान है उनका सूत्र-पात महाराज पृथु के ही समय से हुआ वह आदि सतयुग के पश्चात् का पहिला त्रेता युग था। लोगों की स्वाभाविक शक्ति नष्ट होने पर ये सब व्यवस्थायें आरम्भ हुई। अब जिस प्रकार महामुनि मैत्रेय ने भगवान् पृथु का आगे का

चरित्र विदुरजी को सुनाया था, उसे मैं आप से कहूँगा। भगवान् के अंशावतार पृथु के चरित्र को आप समाहित चित्त से श्रवण करें।"

छप्पय

रचे नगर अरु ग्राम भवन, गृह अटा अटारी।
वापी, कूप, तडाग राजपथ अति सुखकारी॥
नगरनि सीमा बनी पृथक सब प्रान्त बनाये।
मंडलीक भूपाल सबनि के दुर्ग सुहाये॥
करी व्यवस्था सबहि विधि, दु ख सबनि क मिट गये।
राज्य नियामक पति पृथु, आदि राज भू के भये॥

महाराज पृथु की यज्ञ दीक्षा

(२६५)

अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः ।
ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥*
(श्री भा० ४ स्क० १९ अ० १ श्लो०)

छप्पय

वर्णाश्रम की मिटी व्यवस्था स्थापित कीन्ही।
ये सब करिके काज यज्ञशत दीक्षा लीन्ही॥
बहे सरस्वति जहाँ, पुण्यप्रद भूमि सुहावन।
गंगा यमुना मध्य ब्रह्मऋषि सेवित पावन॥
मख पूजा त्रेता कही, अश्वमेध ताते करहिं।
कालक्षेप करि देहिं सिख, करहिं अनुकरण भवतरहिं॥

सभी युगो मे सर्वत्र, सब समय श्रीहरि ही पूजनीय वन्दनीय माने गये है, किन्तु देश, काल और पात्र भेद से पूजा के प्रकार मे कुछ अन्तर हो जाता है। कोई ऐसा देश है, जहाँ पूजा की बहुत सी सामग्रियाँ प्राप्त नही हो सकती, वहाँ यथा लब्धोपचारो द्वारा ही पूजा सम्पन्न की जा सकती है। पात्र के कारण भी

*मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! पृथिवी आदि की व्यवस्था करने के अनन्तर महाराज पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञों के उस मनुक्षेत्र ब्रह्मावर्त में दीक्षा ली, जहाँ कि प्राची सरस्वती हैं।"

पूजा मे भेद हो जाता है। कोई निर्धन है, उसे अधिक सामग्री जुटाने की सामर्थ्य नही। वह यदि एक पत्र तुलसीदल, एक चुल्लू जल ही श्रीहरि को अर्पण करता है, तो स्वर्न्तियामी प्रभु उसी से प्रसन्न हो जाते हैं। इसके विपरीत जो वैभवशाली है धन सम्पत्तिवाला है वह यदि वित्तशाठ्य के कारण कम धन व्यय करता है पूजा के पदार्थों को एकत्रित करने मे कुछ भी कजूसी करता है, ता उसकी वह पूजा भावहीन और दूषित समझी जाती है।

इसी प्रकार प्रत्येक युग की एक विशिष्ट पूजा पद्धति भी होती है। शतयुग मे ध्यान ही भगवत प्राप्ति का उनकी पूजा का प्रधान साधन माना जाता था। ध्यान के द्वारा हरि आराधना भगवत् स्मरण लोग करते थे। त्रेता युग मे यज्ञयाग ही हरि अर्चा के प्रधान साधन माने गये। द्वापर मे भगवान् यज्ञ पुरुष की परिचर्या पूजा, वैदिक तान्त्रिक मन्त्रो द्वारा उनकी आराधना की जाती थी। कलियुग मे केवल भगवन्नाम सकीर्तन ही सरल सुगम, सरस और सर्वोपयोगी सर्वश्रेष्ठ साधन है। इस युग मे भगवन्नाम सकीर्तन के अतिरिक्त दूसरे साधन सरलता से सागोपाङ्ग होना अत्यत कठिन है। भगवन्नाम सकीर्तन मे कोई नियम नहो मर्यादा नही सभी लोग, सभी समय, सर्वत्र विना भेद-भाव के भगवन्नाम सकीर्तन द्वारा इस असार ससार को वात की वात मे तर सकते हैं। जो अपने युगो के अनुरूप साधन करते है उन्हे शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी। जब महाराज पृथु भूमि की सब व्यवस्था कर चुके, सर्वत्र, लोग, नगर, पुरग्राम वनाकर बसने लगे। ऊवड खावड भूमि सम हो जाने से उसमे खेत बनाकर लोग सरलता से कृषि करके अन्नादि उत्पन्न करके, तन्नयागादि धर्म कर्म

करने लगे, तब महाराज पृथु को बड़ा हर्ष हुआ । वे कृत कृत्य-हो गये, उन्होने प्रजा की सभी असुविधाओं को दूर कर दिया भूमडल पर उनके समान कोई दूसरा राजा तो था ही नही जिसे जीतने या युद्ध करने की तैयारियाँ करते । सभो उनके अधीन थे । सात द्वीप नौखडो मे सर्वत्र उनकी आज्ञा मानी जाती थी । जब इन कामो से वे निवृत्त हो गये, तो यमुना के मध्य की अपनी परम पावन राजधानी मे उन्होने १०० अश्वमेध यज्ञो की एक साथ ही दीक्षा ली । गगा यमुना के मध्य की यज्ञीय भूमि सब से श्रेष्ठ समझी जाती है । समस्त ब्रह्मर्षि इसी अति पावन भूमि का सदा से आश्रय लेते रहे हैं, अतः इस देश को ब्रह्मर्षि देश भी कहते है । जहाँ प्राची सरस्वती गुप्त रूप से आकर गगा के सगम मे प्रयागराज मे मिली हैं, इसी गगा यमुना के सगम को त्रिवेणी सगम कहते हैं । ऐसा तो यज्ञ करने को उत्तम देश था, आदि त्रेता युग का सर्वश्रेष्ठ काल था, साक्षात् श्रीहरि के अशावतार महाराज पृथु उस यज्ञ के कर्तासत्पात्र यजमान थे । जहाँ देश, काल और पात्र तीनो ही श्रेष्ठ हो, वहाँ यज्ञ मे किसी प्रकार की त्रुटि रह ही नही सकती । अतः महाराज के यज्ञ वड़ी धूमधाम से होने लगे ।

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! महाराज पृथु तो भगवान् के अवतार ही थे । उन्हे किसी सासारिक वस्तु की कमी नहीं थी, स्वर्ग उनके लिये तुच्छ है, मुक्ति की उन्हे क्या इच्छा हो सकती है, वे तो स्वय ही मुक्त हैं, फिर उन्होने इतना आडम्बर क्यो किया । एक अश्वमेध यज्ञ मे ही कितनी सामग्रियाँ जुटानी पड़ती हैं । कितने बखेड़े करने पडते है, फिर आपके कथनानुसार महाराज ने तो १०० यज्ञो की एक साथ ही दीक्षा ली । इतना आयास क्यों किया । किस कामना से उनको इस

विधिबाहुल्य कार्य मे प्रवृत्ति हुई ?"

यह सुन कर सूतजी हँस पडे और फिर-गभीर होकर बोले—"अच्छा महाराज ! आप ही वतावें वे यज्ञ न करते तो क्या करते ? उनकी आयु वहुत थी' चिरकाल तक उन्हे पृथिवी पर रहना था, अपना कालक्षेप कैसे करते। श्रेष्ठ पुरुष जो कार्य करते हैं, अन्य साधारण लोग उन्ही का अनुकरण किया करते हैं। बडे लोग जिस बात को प्रमाण मान लेत हैं अन्य लोग उन्ही का अनुवर्तन करते है। समय तो उन्हे बिताना ही था, वह समय यदि भगवत् चिन्तन मे, परमार्थ साधन मे बीते तो सर्वश्रेष्ठ है। आचार्य वही कहलाता है, जो शास्त्रो से आचरणीय उपदेश को चुनकर प्रकाशित करे और स्वय उनके अनुरूप आचरण भी करे। इसीलिये महाराज पृथु ने यज्ञो द्वारा उन अखिलात्मा श्रीहरि की उपासना करके अपने समय का सदुपयोग किया।

इस पर शौनकजी ने कहा—"यदि भगवान् की आराधना ही करनी थी, तो एकान्त मे जप तप करते, इतने आडम्बर की क्या आवश्यकता थी ?"

सूतजी ने कहा—"हाँ, महाराज ! यह आप ठीक कहते है, जब तप से भी भगवान् की आराधना होती है और वह भी भगवान् पृथु ने की थी, किन्तु त्रेतायुग मे यज्ञयाग ही प्रधान साधन माने गये है। वह यज्ञबाहुल्य युग माना जाता है, अतः युगानुसार साधनो द्वारा जो अखिलेश की आराधना की जाती है वह श्रेष्ठ और अनुकरणीय मानी जाती है। रही बखेडे की बात, जिनके समीप सदा अष्ट सिद्धि, नव निधि हाथ बाँधे खडी रहती है, जो सामर्थ्यवान हैं, उन्हे बखेडा ही क्या ? उनके सकेत मात्र से सभी वस्तुएँ एकत्रित हो जाती हैं। रही यह बात कि इन महायज्ञो मे अश्व आदि को बलि दी जाती है, हिंसा

होती है। सो, शास्त्रीय विधिका तो पालन करना ही पड़ता है। सर्वथा हिंसा-रहित तो कोई कार्य ही नहीं। चलने में हिंसा, बैठने मे हिंसा, झाड देने मे भोजन बनाने मे यहाँ तक साँस लेने तक मे हिंसा है। इस विषय मे शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र जो कहे वही विहित है, शास्त्र जिसकी निंदा करे वही निंदित कर्म है। अतः शास्त्र को प्रमाण मानकर उनके बताये उपायो द्वारा देश, काल और पात्र का बलाबल देखकर सदा सर्वदा हरिस्मरण मे ही समय को बिताना यही समय का सदुपयोग कहलाता है। इसी को शास्त्रीय कालक्षेप कहते है। महाराज पृथु इसीलिये निरन्तर एक के पश्चात् दूसरा और दूसरे के पश्चात् तीसरा इस प्रकार यज्ञ करने लगे। १०० अश्वमेध करने का उनका संकल्प था। महाराज के यज्ञ कराने वाले बड़े बड़े वेद की विधि को जानने वाले अत्रि आदि महर्षि थे।

स्वय महाराज पृथु जिन यज्ञों को करने वाले हो, ब्रह्माजी के मानसपुत्र भगवान् अत्रि जिन यज्ञो के कराने वाले हों, सम्पूर्ण प्राणि जिन यज्ञा मे तन, मन धन से सहायता करने वाले हो, उन यज्ञो की पूर्णता के विषय मे तो किसी प्रकार का सदेह हो ही नही सकता। महाराज पृथु के यज्ञ अन्य साधारण राजाओं के यज्ञो के समान नही थे। वे यज्ञ अपने समय के असाधारण यज्ञ थे। इतने से ही आप समझें, कि उन यज्ञो मे स्वय साक्षात् श्रीहरि पधारे थे। जहाँ श्रीहरि ही पधार जायँ, वहाँ फिर पधारने को शेष रह ही कौन जाता है भगवान् अकेले ही गरुड़ पर चढ कर चले आये हो, यह बात नहीं। वे बडे ठाट बाट से पधारे थे। भगवान् के मुख्य पार्षद नन्द सुनन्द जिनके ऊपर छत्र चँवर कर रहे थे। गन्धर्व जिनके गुणो का गान कर रहे

थे। अप्सराये हाव भाव के सहित मनोहर नृत्य कर रही थी। ऋषि मुनि जिनकी विरुदावली का बखान कर रहे थे। आठो लोकपाल जिन्हे चारो ओर से घेरे हुए थे। सिद्ध विद्याधर दैत्य, दानव गुह्यक जिनके पीछे पीछे चल रहे थे। नारद, कपिल- दत्तात्रेय, सनक सनदन, सनातन और सनतकुमार आदि योगेश्वरगण जिनकी सेवा मे तत्पर थे। इस प्रकार बडी सजधज से सब के अन्तरात्मा, जगद्गुरु, समस्त यज्ञो के अधिपति अखिलात्मा भगवान् विष्णु उन यज्ञो मे पधारे थे।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी! उन यज्ञो के ऐश्वर्य का अब मैं आप से वर्णन किस प्रकार करूँ? आप इसी से अनुमान लगालें, कि सभी वस्तुओ को उत्पन्न करने वाली भगवती वसुन्धरा जिनकी पुत्री बनकर साकार रूप से सेवा कर रही हो उस यज्ञ मे कमी किस वस्तु की रह सकती है। चर अचर सभी प्राणियो ने उन यज्ञोत्सवो मे यथाशक्ति सहयोग दिया। जितने नद, नदी, पर्वत, वृक्ष थे उनके अधिष्ठातृ देव मूर्तिमान होकर उन यज्ञो मे आये थे और अपने हाथो से, भृत्यो के समान यज्ञ मे आने वाले लोगो की सेवा शुश्रूषा करत थे। नदियाँ अपने आप दूध, दही, खीर, मट्ठा, मक्खन मलाई बहाकर लाती थी। जो जितना चाहो पीओ! वृक्षो ने मीठे मीठे मधुमय इतने फल गिराये कि मु ह मे रखते ही मिश्री की भाँति घुल जायँ, गुठली छिलके का काम नही। बिना बीज के पक्के अगूर की भाँति,खाते ही जाओ। तोडने की भी आवश्यकता नही, मु ह ऊपर करो, रस से मु ह भर जाय। गटकते चलो गटागट। समुद्र भी वहाँ शरीर रख कर आये थे, वे इतने रत्न मू गा मोती लाये थे, कि चारो ओर बिखरते फिरते थे, उन्हे कोई पूछने वाला नही। पर्वत अपनी खोहो मे भर भर कर भोक्ष्य, भाज्य, लेह्य चोष्य'

पेय सभी प्रकार के अन्न लाये थे। निरे मालपुआ ही उड़ाओ, या बालूसाइयों से ही पेट भर लो, या खीर का ही सपोटा लगाओ। लोकपाल इतने उपहार लाये कि रखने को स्थान ही नहीं रहा। सो विदुरजी! ९९ यज्ञ तो यों ही बड़ी धूमधाम से हुए। अब १०० वें यज्ञ का समाचार सुनिये।

छप्पय

होहिं यज्ञ अति विशद करें सुर गन सब सेवा।
देहिं वृक्ष बहुमूल्य फूल फल मधुमय मेवा॥
दूध, दही घृत, तक्र खीरि सरिता सब लावें।
रुचि प्रिय परम पदार्थ प्रेमतें पंडित पावें॥
हलुआ पूरी जलेबी, माखन मिसिरी जो चहो।
खाओ पीयो पेटभरि, तानि दुपट्टा सो रहो॥

महाराज पृथु के अन्तिम यज्ञ में इन्द्रद्वारा विघ्न

(२६६)

चरमेणाश्वमेधेन यजमाने यजुष्पतिम् ।
वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्धन्नपोवाह तिरोहितः ॥*॥
(श्री भा० ४ स्क० १९ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

यों नौ नब्बे यज्ञ भये अंतिम जब आयो ।
इन्द्रासन मम लेहि अमरपति पेट पिरायो ॥
वेष बदलि के विघ्न करन मख अश्व चुरायो ।
चोरी करिकें चल्यो अत्रिमुनि तुरत लखायो ॥
करनी सुरपति की लखो, विषय भोग दुख मूल है ।
जे विषयनि अनुकूल तैं, मोक्ष मार्ग प्रतिकूल है ॥

ये मुझसे अतिशय, धनी, मानी, यशस्वी, तेजस्वी, सुखी समृद्धिशाली, सम्पन्न आदि सद्गुणों से क्यों है, ऐसी भावना का ही नाम सातिशय दोष है। अपने परिचितों सम्बन्धियों को

---

*मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! महाराज पृथु सौ अश्वमेध यज्ञों द्वारा यज्ञपति भगवान् श्रीहरि की आराधना कर रहे थे, तब अन्तिम सौवें यज्ञ में इन्द्र गुप्त रूप रखकर आये और यज्ञ के घोड़े को चुरा ले गये।"

अपने से बढते देख कर एक प्रकार की ईर्ष्या उत्पन्न होती है। क्यों होती है, यह इस सृष्टि रचयिता का दोष प्रतीत होता है, या उस सर्वान्तर्यामी की महत्ता। चीटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त आप जिसे भी देखे वह अपने को सर्वश्रेष्ठ समझता है यो शिष्टाचारके लिये भले ही कह दें अजी, हम किस योग्य हैं हम तो क्षुद्रातिक्षुद्र प्राणी है, किन्तु इस कथन मे भी महत्ता श्रेष्ठता छिपी है। जो कोई अपने को दासानुदास जीवमात्र की चरण रेणु कहते हैं, उनके सामने आप गालियाँ दें, उन्हे भला बुरा कहे कोई क्षुद्रातिक्षुद्र कार्य करने को कहे, तब पता चलेगा, वे कैसे दासानुदास है। जो अपने को सबका सेवक, प्राणिमात्र का किंकर कहते हैं उनके सामने किसी महात्मा की प्रशसा करो जो अपने को ब्रह्म बताते हो, तो वे चाहे प्रकट मे न कहे किन्तु मन मे ऐसे लोगों का आदर न करेंगे। इससे प्रतीत होता है उन्होंने दासत्व मे ही सर्वश्रेष्ठत्व समझ रखा है। ईश्वर जीव या ब्रह्म ही है। अविनाशी है, फिर वह अपने को छोटा समझे क्यों। जान मे अनजान मे वही भाव सबके हृदय मे जागरूक होता है। अज्ञानपूर्वक जो इसके लिये प्रयत्न करते है, वे ससार बन्धन से मुक्त होते हैं। जो दूसरो की बढती देखकर ईर्ष्या द्वेषवश उनके कार्यो मे विघ्न करते हैं उन्हें क्या कहे कुछ समझ मे नहीं आता।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! इस त्रैलोक्य में इन्द्रपद सर्वश्रेष्ठ है। जो इन्द्रपद पर प्रतिष्ठित हो जाता है, वह सम्पूर्ण देवताओं लोकपालों उपदेवों ऋषि मुनि मनुष्य पशु पक्षी सभी का पूजनीय और स्वामी समझा जाता है। ऐसा इन्द्रपद भी स्थाई नहीं। आज जो इन्द्र है, कल वही चीटी बन जाता है। जो भी १०० अश्वमेध यज्ञों को विधि विधान सहित पूरा

करले वही इन्द्रपद का अधिकारी हो जाता है। इसीलिये इन्द्र का एक नाम शतक्रतु भी है। अर्थात १०० अश्वमेध यज्ञ करने वाला। इसीलिये इन्द्र जिसे यज्ञ तप करते देखता उसी से डर जाता है कि कही यह मेरे इन्द्रासन को न छीन ले। जिसे तनिक भी तेजस्वी तपस्वी और प्रभावशाली देखा उसे ही देखकर इन्द्र के पेट मे पानी हो जाता है। अरे, यह तो वहुत बढ रहा है। महाराज पृथु के भी जब ६६ अश्वमेध यज्ञ पूरे हो गये तब तो इन्द्र बहुत घबडाया। जहाँ अन्तिम यज्ञ पूरा हुआ नही कि मुझे अपने बोरिया बिस्तर बांध कर भागना पडेगा। किसी प्रकार इनके इस यज्ञ मे विघ्न पड जाय जिससे पूरे १०० न हो सके मेरा इन्द्रासन किसी प्रकार बच जाय।

मैत्रेय मुनि कहते है--"विदुरजी! ये विचार इन्द्र की क्षुद्रता के द्योतक हैं, नही तो भगवान् के अशावतार पृथु को इन्द्रपद की क्या अपेक्षा। उनके सम्मुख सैकडो इन्द्र हाथ जोडे खडे रहते हैं। किन्तु जिसे जो चीज प्रिय होती है वह उसे ही सर्वस्व समझता है और अपनी ही भाँति अनुभव करता है कि दूसरो को भी यह उसी प्रकार प्रिय होगी। कोई कुत्ता सूखा हाड ले जा रहा था उधर से इन्द्र अपने ऐरावत हाथी पर चढ कर जा रहे थे। कुत्ता एक पहाड के ओठ मे छिप गया कि ऐसा न हो कि ये मुझसे मेरे इस प्रिय पदार्थ को छीन ले। एक सियार सडे मास को ले जा रहा था, उधर से सिंह को आते देखकर डर गया कि यह मुझसे इसे ले न ले। आप ही सोचिये अमृत को पीने वाले इन्द्र को सूखी हड्डी से क्या काम। अपने पुरुषार्थ से ही मार कर खानेवाले को दूसरो के लाये सडे मास से क्या प्रयोजन। किन्तु जीव तो अपनी भावना का दूसरो मे आरोप करता है। इन्द्र भी सोचने लगे, त्रैलोक्यवन्दित इन्द्रपद "के निमित्त ही महाराज पृथु १००

अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं। किसी भी प्रकार से हो इनके इस अंतिम यज्ञ को पूरा न होने देना चाहिये।

यह सोचकर उन्होने एक विचित्र वेप बनाया। विदुरजी! धूर्त लोग वेप के द्वारा लोगो को ठग लेते है। वेप तो सज्जनो का सा बनाते हैं, काम दुर्जनो के करते है। ऊपर से तो साधुओ का सा वाना वना लेते हैं, भीतर असाधुता भरी रहती है। ऊपर से तो अपने को धर्मात्मा प्रकट करते हैं, किन्तु मन मे अधर्म भरा रहता है। इसीको दभ ढोग, पाखड, छल, छद्म तथा बनावटी वेप कहते है। ऐसे धर्म का कवच पहिनने वाले अधार्मिक पुरुप ही पाप का प्रचार करते हैं! भीतर और वाहर यदि अधार्मिक अपना यथार्थ रूप रखकर अधर्म का प्रचार करें तो उनकी सुनेगा कौन, उसे मानेगा कौन? वे तो अधर्म का धम का वाना पहिना भोली भाली जनता को वहकाते है। लोग उनके प्रवल तर्कों से उनके महात्मापने के वेप से भूलावे मे आ जाते हैं और अधर्म को ही मानने लगते है। उसी पाखड रूप का इन्द्र ने आश्रय लिया।

उसने अपने सिर पर लम्वी लम्वी जटायें वनाईं। वड़ी वड़ी दाढ़ी, सिर पर वडा सा तिलक, गेरुए कपड़े, हाथ में माला। कर मे सुमिरनी, मन मे कतरनी रखकर वह महाराज पृथु को ठगने चला। उसने सोचा—अश्वमेध मे प्रधानता अश्व की होती है, अतः यज्ञ के घोड़े को किसी प्रकार यज्ञभूमि से हटा दिया जाय तो यज्ञ होगा ही नही। यही सब सोच कर ईर्ष्या के कारण यज्ञ मे विघ्न करने के निमित्त गुप्त रूप से इन्द्र यज्ञीय अश्व को चुरा ले गया।

तिरस्करणीय विद्या के प्रभाव से इन्द्र को कोई देख तो सकता नही था, किन्तु सर्वज्ञ भगवान अत्रि ने उसे घोड़ा चुराते

हुए देख लिया। उन्होंने देखा अधर्म में धर्म का भ्रम उत्पन्न करने वाले इस पाखण्ड वेष का कवच पहिन कर इन्द्र अनुचित कार्य कर रहा है। ईर्ष्यावश अपनी पद-प्रतिष्ठा को भूल कर चोरी जैसे गर्हित कर्म को करते हुए भी इसे लज्जा नहीं आ रही है। इस लिये उन्हें देवेन्द्र पर क्रोध आया। महाराज पृथु तो यज्ञ की दीक्षा लिए बैठे थे, वे तो न उठ सकते थे, न क्रोध कर सकते थे। भगवान अत्रि के समीप ही महाराज पृथु का सब से बड़ा तेजस्वी पुत्र बैठा था, उससे ऋषि बोले—"बेटा! देखो-देखो, यह कैसा अनर्थ हो रहा है। तुम्हारे पिता के यज्ञीय घोड़े को इन्द्र चुराये लिए जा रहा है। तुम इससे शीघ्रता से घोड़े को छीन लो।"

इतना सुनते ही राजकुमार धनुषबाण लेकर इन्द्र के पीछे दौड़ा। इन्द्र आकाश मार्ग से बड़ी शीघ्रता के साथ घोड़े को भगाये लिए जा रहा था। राजकुमार ने दूर से ही कहा—"अरे नीच! खड़ा हो! तू कौन है? मेरे पिता के घोड़े को क्यों लिये जाता है?"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—'विदुरजी! चोर के पैर कच्चे होते हैं। इन्द्र झट से प्रकट हो गया। राजकुमार ने देखा, यह तो जटा दाढ़ी वाले, त्रिपुण्ड लगाये, रुद्राक्ष धारण किये कोई योगीश्वर हैं। धर्मात्मा पृथुपुत्र ने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने समझा—"भगवान अत्रि ने तो मुझे बताया था, इन्द्र अश्व को लिये जाता है। ये तो कोई धर्मात्मा योगी है, इन पर बाण छोड़

कर मैं पाप का भागी कैसे हूँगा, अतः वे लौटने लगे।

अत्रि मुनि नीचे से ही देख रहे थे। वहीं से चिल्लाकर बोले—"बेटा, तू इसके वेष के भुलावे में मत आ! इस नीच ने यह कपट वेष बना रखा है। इसका यह यथार्थ वेष नहीं है। ठगविद्या के कारण साधू का वेष रूपी कवच इसने पहिन रखा है। यह दूसरों के उत्कर्ष को सहन न करने वाला सुराधम इन्द्र ही है। इस पर दया मत करना। आज इसका अंत ही कर दे। यह सबके तप और यज्ञों में सदा विघ्न करता है, आज इसे जीवित न जाने देना।"

अत्रि महर्षि की ऐसी बात सुनकर राजकुमार फिर लौटे। उन्होंने फिर बाण छोड़ा, किन्तु धर्मात्मा के हृदय, वेष का भी सम्मान करता है। उन्होंने सोचा "कैसा भी हो, वेष तो इसने महात्मा का ही बना रखा है, इसे मैं अपने बाण से मारूँगा नहीं। इतने में ही इन्द्र उस घोड़े को छोड़ कर तथा उस वेष का भी परित्याग करके वहीं अन्तर्धान हो गये। राजकुमार इन्द्र से अश्व जीतकर अपने पिता के यज्ञ में आये। सभी ऋषि महर्षि राजकुमार के इस अद्भुत पराक्रम को देखकर चकित रह गये सभी ने उनके बल, वीर्य, पराक्रम तथा शौर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। फिर प्रसन्न होकर महर्षियों ने उसे अश्व को इन्द्र से जीत लाने के कारण "विजिताश्व" की उपाधि दी। उसी दिन से राजकुमार "विजिताश्व" के नाम से ही प्रसिद्ध हुए।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! अश्व के आ जाने पर यज्ञीय कार्य फिर बडे विधिविधान से होने लगा ! किन्तु इन्द्र को सन्तोप कहाँ ? वह तो इस बात पर तुला हुआ था कि जैसे हो तैसे इस अतिम यज्ञ को पूरा न होने दे। वह तो स्वार्थ मे अन्धा हो गया था, अब सोचने लगा—"अब क्या करूँ कैसे यह यज्ञ अधूरा ही रह जाय। इन्ही बातो पर विचार करते हुए वह दूसरा उपाय सोचने लगा।

छप्पय

चोर इन्द्र कूँ अत्रि दिखाओ पृथु कुमार कूँ।
वत्स ! वेगि जा पकरि पुरदर चोर जार कूँ ॥
सुनत राजसुत शीघ्र शक्र की ओर सिधार्यो।
साधु समभि के सहृद कुमर फिरि नहिं सर मार्यो ॥
अश्व विजय करि इन्द्रते, लायो सुख सबकूँ भयो।
ऋषि मुनि मिलि विजिताश्व वर, नाम कुँवर कूँ तव दयो ॥

पृथु यज्ञ में पुरंदर द्वारा पुनः विघ्न

(२६७)

उपसृज्य तमस्तात्र जहाराश्वं पुनर्हरिः ।
चषालयूपतश्छन्नो हिरण्यरशनं विभुः ॥*

श्रीमद् भा० ४ अ० १६ अ० १६ श्लोक

छप्पय

इन्द्र हृदय महँ मची कुलबुली बिगरे मख कस ।
अबके चुपके जाइ अश्व लाऊँ सोच्यो अस ॥
अधकार करि पकरि अश्वकूँ सुरपति भाग्यो ।
अत्रि कीन्ह सकेत कुमर फिर पीछे लाग्यो ॥
साधु वेप लखि फिर कुमर, हिचक्यो मुनि मारो कह्यो ।
छोड्यो शर विजिताश्व तब, अन्तर्हित शतक्रतु भयो ॥

स्वार्थ के वशीभूत होकर मनुष्य मान, प्रतिष्ठा, लज्जा, सकोच सभी का परित्याग कर देता है । अपना स्वार्थ जैसे भी सिद्ध हो अपने हित की किसी प्रकार भी रक्षा हो सके, उसके लिये वह सतत प्रयत्न करता है । कर्तव्य अकर्तव्य का भी ध्यान छोड देता है । स्वार्थ मे ऐसा अन्धा हो जाता है कि विचार विवेक सभी को तिलाञ्जलि दे देता है । ये ससारी अनित्य सुख सदा किसी के समीप नही रहे, ये नश्वर हैं, क्षणभगुर हैं, परि-

---

*मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! अबके इन्द्र ने घोर अधकार उत्पन्न किया । फिर यज्ञस्तम्भ के सम्मुख रखे वलयाकार चषाल म सुवर्ण की जजीर से बँधे हुए यज्ञ के अश्व को पुन हर ले गया ।

वर्तनशील हैं, परिणाम मे दुखो को देने वाले हैं, फिर भी प्राणी इनकी प्राप्ति के लिए प्राणपन से प्रयत्न करता है। धर्मा धर्म का ध्यान भी नही रखता। यह कैसी विडम्बना है भगवान् की कैसी दुरत्यय माया है। भगवान् ही जिसकी रक्षा करें वही इससे बच सकता है, वही विषयो के हठ को छोड़ सकता है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं— 'विदुरजी ! जब पृथु-कुमार विजिताश्व अपने पिता के यज्ञीय अश्व को छुड़ा लाय तब तो इन्द्र बड़े घबड़ाये। वे सोचने लगे—"अब तो महाराज पृथु के १०० यज्ञ पूरे हो जायँगे। कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे यह अंतिम यज्ञ पूरा न हो।'

यह सोचकर इन्द्र ने फिर विचित्र वेष बनाया। अब के उसने कापालिक अघोरी का वेप बनाया। सपूर्ण अग मे चिता की भस्म लपेटी हुई है। जटाय बिखर रही हैं, नेत्र लाल लाल है। एक हाथ मे नरमु ड का कपाल है दूसरे मे खटवाग है। गले मे माला पहिन कर साधु वेष बनाकर वे यज्ञभूमि मे आये। अब के उन्होने अपनी माया से सवत्र अधकार कर दिया।

यज्ञो मे एक खम्भा सा गडा रहता है, जिसे यूप कहते है। यज्ञीय पशु उसीमे बाधे जाते है। उसके सामने एक वलयाकार काष्ट रहता है जिसकी "चपाल" सज्ञा है। चपालयुक्त यज्ञस्तम्भ के सुवण की जजीर मे महाराज पृथु के यज्ञ का वह घोडा बधा था जो दश दिशाओ मे दिग्विजय करके लौटा था। यदि वह घोडा न रहे तो अश्वमेध यज्ञ ही न हो।

इन्द्र की माया से अधकार होने से किसी को कुछ दीखता तो था नही। उसी अधकार मे इन्द्र अन्तर्हित होकर उस घोडे को खोलकर आकाश माग से फिर भागा। त्रिकालज्ञ अत्रि मुनि से क्या छिपा था, उन्होन अपनी दिव्य दृष्टि से इन्द्र को घोडा लेकर

आकाश मे भागते हुए देख लिया और शीघ्रतापूर्वक विजिताश्व से बोले—"बेटा, शीघ्रता करो, शीघ्रता करो । इन्द्र अपनी नीचता पर तुल गया है । वह यज्ञ मे बार बार विघ्न करता है। अब के तुम यज्ञीय अश्व को तो लाओ ही, इस ईर्ष्यालु इन्द्र का भी अन्त कर दो ।"

इतना सुनते ही विजिताश्व धनुष वाण लेकर अपनी अलौकिक शक्ति द्वारा इन्द्र के पीछे दौडा, जब उसे कपाल खट वाग और जटा भस्म धारण किये देखा, तो धर्मभीरु राजपुत्र फिर हिचका। इस पर अत्रि मुनि ने चिल्लाकर कहा—"बेटा ! वेष के मोह मे मत पडो। यह तो पाखड वेष है। पाप का खण्ड अर्थात् चिह्न है।" इतना सुनते ही विजिताश्व ने ज्यो ही फिर वाण छोडा, त्यो ही वे स्वराट इन्द्र अपना छद्मवेष छोडकर वही अन्तर्हित हो गये। घोडे को वही छोड दिया। राजकुमार को इन्द्र का वध अभीष्ट नही था, अत वह घोड को लेकर लौट आया।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! त्रैलोक्य पूजित देव होकर, इतने वडे सम्मननीय लोकपाल वदित अमराधिपति होकर भी देवराज ने ऐसा कुत्सित कार्य क्यो किया ? क्या उन्हे पता नही था, कि पृथु साक्षात् भगवान् के अशावतार है। यदि उन्हे पता नही था, तो उनके अभिषेक के समय दिव्य किरीट जाकर क्यो समर्पित किया ? और यदि पता था, तो क्या वे यह नही जानते थे, कि इन्द्र इन्द्रासन से क्या प्रयोजन ?

इस पर सूतजी वोले—"अब महाराज ! क्या बताऊँ ? या ही समझिये, कि यह सब भगवान् की माया है। व जिस समय जिससे जो कुछ कराना चाहते है, उस समय उसकी वैसी ही बुद्धि बना देते है। क्या इन्द्र को पता नही था, श्रीकृष्ण साक्षात्

परब्रह्म हैं, उनकी माता के दिव्य कुण्डलो को जव नरकासुर छीन ले गया था, तो भगवान से ही जाकर प्रर्थना की। वे ही भगवान् जव कल्पवृक्ष को उखाडकर चलने लगे, तो उन्हे मनुष्य समझ कर युद्ध करने लगा। जव भगवान् ने नन्दादिक गोपो से इन्द्र को कुपित कराने के निमित्त इन्द्रयाग बद कर दिया था, तव समस्त व्रजमडल को ही वहा देने के लिए देवराज ने प्रलयकारी मेघो को आज्ञा दे दी, कि समस्त व्रज को जलमग्न कर दो। इसे सिवाय भगवान् की माया के और क्या कह सकते हैं।"

इस पर शौनकजी कहा—"भगवान् की माया से तो सव होता ही है, यह तो ऐसा उत्तर है कि इसके आगे कुछ कहा ही नही जा सकता। फिर भी यह तो सोचने की वात है, कि जिसके पुत्र मे इतनी शक्ति है, कि देवराज इन्द्र के हाथ से वार-वार अश्व को छुडा ले, फिर भी उनके यज्ञ मे विघ्न पर विघ्न करना इसे तो हम धृष्टता ही कह सकते है।"

यह सुनकर सूतजी वोले—"महाराज ! स्वार्थ मे मनुष्य ऐसा अधा हो जाता है कि फिर उसे विवेक रहता ही नही। स्वार्थ के वशीभूत होने पर सभी सम्वन्ध, सभी उपकार, सभी ज्ञान सभी महत्ता, पुरुष भुला देता है। उस समय तो जैसे भी हो, हमारा स्वार्थ सिद्ध हो जाय—यही आग्रह हृदय मे समा जाता है और फिर निंदित से निंदित कार्य करने मे भी नही हिचकता।'

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! यह तो सत्य है कोई साधारण व्यक्ति हो, तो उसकी वात तो पृथक है। इन्द्र के आचरण का तो सभी पर प्रभाव पडता है, वे जैसा करेगे निंदित लोग उनके उन पापो का भी अनुकरण करेंगे, इससे अधर्म की वृद्धि होगी, तो यह तो उचित नही।

इस पर सूतजी बोले—"महाराज! उचित तो नही है, उचित कौन बताता है। फिर भी धर्म तथा अधर्म हम दोनों ही श्रेष्ठ पुरुषो देवो से ही सीखते है। ऐसा न हो तो अधर्म कहाँ रहे, इसलिये पाखड धर्म वाले भी देवताओ का श्रेष्ठ पुरुषो का उदाहरण देकर पाखड का प्रचार करते हैं। इन्ही अधर्म की बातो से कलियुग मे अधर्म अपना आधिपत्य स्थापित करता है।

इन्द्र ने ईर्ष्यावश यज्ञ का विघ्न करने के लिये जो अनेको पाखण्ड वेप बनाये थे, वे सब वेप ज्ञान दुर्वल लोगो ने प्रमाण मान लिये। वे कहने लगे वेप बनाना ही परम धर्म है। बाह्य चिह्नो मे ही धम भरा है, इसलिये कोई कहने लगे—"दिगम्बर हो जाना ही परम धर्म है, ज्ञान हो न हो, लँगोटी खोल कर फेंक दो मुक्ति हो जायगी, यह मूर्खता नही तो क्या है। कोई कहने लगा तिलक माला मे ही धर्म है, कोई कहने लगे लाल कपडे रँग लिय कि मुक्त हो गये। ये सब वेप पर ही बल देते हैं। वेप बनाने को ही सब कुछ समझते हैं। लिंग को ही धर्म मे मुख्य कारण मानते हैं। अत. देखने मे सुन्दरता या बडी बडी तर्क की बात करने वाले पाखण्ड पूर्ण उन नग्न, लालवस्त्र आदि पहिन कर विविध वेप बनाने वाले केवल भ्रमवश यही धर्म है, ऐसा मानने लगते है। इन्ही सब पाखण्ड की बातो से मनुष्यो की वुद्धि मोहित हो जाती है। अत. इन्द्र के ये वेप अधर्म की वृद्धि मे कारण हुए। अधार्मिक तामसिक लोगो ने अधर्म को धर्म मान लिया।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—'विदुरजी! इस वार-वार यज्ञ म विघ्न करने की वात महाराज पृथु के भी कानो मे पडी। इन्द्र की ऐसी करतूतो को देखकर महाराज पृथु को बड़ा दुःख हुआ। वे

सोचने लगे—अब हमे क्या करना चाहिये।" उन्हे इन्द्र के ऊपर बडा क्रोध आया।"

छप्पय

मख विध्वसन हेतु इन्द्र जो वेष बनाये।
ते पाखडिनि चिह्न ऊपरी परम सुहाये॥
जटाजूट बनि नग्न लाल अरु श्वेत पहिनि पट।
यही मोक्ष को मार्ग नित करहिँ सतत हट॥
तम प्रधान विद्या रहित, मानें धर्म अधर्म कूँ।
लिङ्ग धर्म कारन नहीं, समझें नहिँ जा मर्म कूँ॥

यज्ञ में विघ्न करने वाले इन्द्र पर महाराज पृथु का क्रोध

(२६८)

तमृत्विजः शक्रवधाभिसंधितम्,
विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमसह्यरंहसम् ।
निवारयामासुरहो महामते
न युज्यतेऽत्रान्यवधः प्रचोदितात् ॥*
(श्री भा० ४ स्क० १६ अ० २७ श्लो०)

छप्पय

समुझी शक्र कुचाल क्रोध नृप पृथु कूँ आयो ।
इन्द्र मारिवे हेतु धनुष अरु बाण उठायो ॥
ऋत्विज बोले-विभो ! विहित वध अब नहिँ तुमकूँ ।
हम सब कछु करि सकें देहिँ आयसु यदि हमकूँ ॥
मन्त्र शक्ति तें शक्रकूँ, अबईं यहाँ बुलाइँगे ।
स्वाहा करिकें अग्नि में, यमपुर ताहि पठाइँगे ॥

चंदन स्वभाव से शीतल है, किन्तु यदि उसे कोई अतिशय रगडे तो उससे भी अनल उत्पन्न हो जाता है। जल स्वभाव से ठंडा है, किन्तु पतीली में भर के उसके

---

*मैत्रेय मुनि कहते हैं—विदुरजी ! इन्द्र की क्रूरता को देखकर महाराज पृथु का रूप ऐसा हो गया था, कि जिसकी ओर देखना भी

नीचे अग्नि जलाते रहो, तो वह खौलने लगता है, इसी प्रकार सज्जन सर्वथ क्रोधहीन होते है, किन्तु जब कोई उन्हे अत्यन्त सताता है, नितान्त विवश कर देता है, तो उन्हे भी कभी कभी क्रोध आ जाता है और ऐसा क्रोध आता है, कि वे न करने योग्य कार्य को भी करने को उद्यत हो जाते है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! जब इन्द्र कई वार पाखड वेप वनाकर यज्ञ के अश्व को हर ले गया, तब तो महाराज पृथु को उस पर वडा क्रोध आया। वे सोचने लगे—'देखो, इस इन्द्र को हम यज्ञो मे कितने सत्कार पूर्वक वुलाते है कितनी श्रद्धा से इसका आवाहन करते है, भाग समर्पित करते है, फिर भी यह ईर्ष्या और कृतघ्नता पूर्वक हमारे यज्ञ मे विघ्न उपस्थित करता है, हमने इसका कौन सा अनिष्ट किया है, क्या विगाडा है। अच्छी बात है। आज हम इसका सब इन्द्रपना भुला दगे। आज इसे यमपुर का द्वार दिखा दगे, आज इसे अमर से मरणधर्मा वना देंगे। आज इसे इन्द्र पद से सदा के लिय च्युत करके मृत्यु के मुख मे डाल दगे। ऐसा सोचकर महाराज ने इन्द्र के वध के निमित्त ज्यो ही धनुप वाण उठाया, त्यो ही यज्ञ कराने वाले ऋत्विजा ने उन्हें रोकते हुए कहा—'महाराज, यह आप क्या कर रहे हैं ? यज्ञ मे दोक्षा लिया हुआ यजमान किसी भी दशा मे किसी की हिंसा नही कर सकता। यज्ञानुष्ठान मे दीक्षित

कठिन था तथा जिनका पराक्रम असह्य था। ऐसे महाराज को इन्द्र के वध के लिये उद्यत देख कर ऋषियो ने उन्हे इस काय से रोका और कहन लगे—"ह परमवुद्धिमान् राजन् ! यज्ञानुष्ठान म दीक्षा लिये पुरुष को शास्त्र विहित यज्ञ पशु के अतिरिक्त किसी भी प्राणी का वध करना उचित नही है।

पुरुष के लिये क्रोध करना, हिंसा करना सर्वथा वर्जित है, वह अपने हाथ से अपने शरीर को खुजला भी नहीं सकता, इसीलिये यज्ञ दीक्षित पुरुष हाथ में हिरन का सींग रखता है कि खुजली होने पर उससे ही शरीर को खुजावे।"

इस पर महाराज पृथु ने पूछा—"ऋषियो ! आप कहते हैं कि दीक्षित पुरुष किसी भी दशा में किसी की हिंसा नहीं कर सकता, यह बात मेरी समझ में आई नहीं। यदि यज्ञ में कोई बार-बार विघ्न करता हो, तो ऐसी दशा में क्या किया जाय, आवश्यक हिंसा तो करनी ही पड़ती है, ऐसा न हो तो फिर यज्ञीय पशु की बलि कैसे दी जाय। यह भी तो एक हिंसा ही है और यजमान के ही द्वारा की जाती है।"

यह सुनकर ऋत्विज बोले—"महाराज, जो शास्त्र—विहित विधि है, उस विधि के अतिरिक्त हिंसा करने का निषेध है। यज्ञीय बलि तो यज्ञ का एक अंग ही है। वह तो वेदविधि है इस प्रकार की वैदिकी विधि हिंसा होने पर भी हिंसा नहीं कहलाती। उसकी गणना तो आवश्यक विधि में की जाती है। इसलिये आप दीक्षित हैं, क्रोध न करें। हमे आप आज्ञा दें आप क्या करना चाहते हैं।"

महाराज पृथु ने कहा—"आप देख नहीं रहे हैं, तेजस्वी और त्रैलोक्य-वन्दित देव होने पर भी यह इन्द्र बार-बार हमारे यज्ञ में विघ्न उपस्थित कर रहा है, इसका कुछ भी तो प्रतीकार करना चाहिये।"

यह सुनकर ऋत्विज ने कहा—'महाराज ! यह तो इन्द्र आपके दिगंत व्यापी सुयश के ही कारण मृतप्राय बन गया है, यह तो आपसे ईर्ष्या रखने के कारण तेजोहीन हो गया है। मक्खी के मारने के लिये ब्रह्मास्त्र नहीं छोड़ा जाता।

मृतक मे मारने मे शूर वीरा का वल व्यय नही होता। आप आज्ञा दे तो हम अभी इस ईर्ष्यालु इन्द्र को इसी यज्ञकुंड मे स्वाहा कर दें।"

महाराज वोले--"यदि वह आपका अभिप्राय समझ कर आपके आवाहन करने पर भी यहाँ न आया तब आप क्या करेंगे

कडक कर ऋत्विजो ने कहा—"महाराज, यह आप कैसी बाते कर रहे है। इन्द्र की क्या शक्ति जो हमारे आवाहन करने पर न आवे। हमारे मन्त्रो की शक्ति अमोघ है, हमने ब्रह्मचर्य्य धारण पूर्वक उनकी विधिवत् उपासना की है। वे मूर्तिमान होकर शरीर मे रहते है। हमारे मन्त्रो मे वह प्रभाव है कि इन्द्र को आने के लिये विवश होना पडेगा, वह रस्सी मे बँधे पशु के समान बँधा हुआ चला आवेगा। कवल आपकी आज्ञा की ही देरी है। आप आज्ञा भर देदे हम बलात्कार इन्द्र को बुलावगे और आपके देखते उसे अग्नि मे भस्म करके सदा के लिये तपस्वी और यज्ञ करने वाला का कटक काट दग।"

महाराज पृथु तो इन्द्र के अनुचित कार्य से खीजे हुये ही थे, उन्होने कहा—"मुनियो! यदि ऐसी बात है, तो आप लोग अपने अमोघ मन्त्रो का प्रयोग कीजिये। मेरे यज्ञ मे विघ्न करने वाले इन्द्र का अन्त आप लोग अवश्य ही कर दें। ससार प्रत्यक्ष इस बात को देखे, कि पृथु के कार्य मे विघ्न करने वाला चाहे साक्षात् शचीपति देवेन्द्र ही क्यो न हो। वह भी जीवित नही रह सकता। आप इस विषय मे न बहुत विचार कर, न विलम्ब। शुभस्य शीघ्रम। अमरपति का आज अभी ही अन्त हो जाना चाहिये।"

महाराज पृथु की ऐसी सम्मति तथा अनुमति पाकर ब्राह्मणो

ने अपने अमोघ मन्त्रों का प्रयोग किया। क्रोध में भर कर मारने की इच्छा से इन्द्र का ज्यों ही आवाहन किया, त्यों ही इन्द्र का इन्द्रासन डगमगाने लगा। इन्द्र की तो सब सिटिल्ली भूल गई। वह समझ ही न सका कि मेरा दिव्य सिंहासन क्यों डगमगा रहा है। उसने सुवर्णमंडित सिंहासन को कस कर पकड लिया, इतने में ही क्या देखता है कि सुधर्मा सभा से इन्द्र बलपूर्वक सिंहासन सहित नीचे गिर रहा है। वह बार बार चिल्लाने लगा—"मुझे कोई पकडो, मुझे बचाओ।" किन्तु अब पकडे कौन ? ईर्ष्यालु का पतन से कौन बचा सकता है, दूसरो की सम्पत्ति और परसुयश को देख कर जो जलता रहता है, उसकी अध पतन से रक्षा करने की सामर्थ्य किस में है। इन्द्र आकाश से कलामुडो खाता हुआ यज्ञकुंड की ओर गिरने लगा। ऋत्विजों ने, यज्ञ में एकत्रित हुए समस्त दर्शकों ने देखा देवराज इन्द्र अवश हुए मन्त्रों के प्रभाव से नीचे की ओर खिंचे चले आ रहे हैं। सभी के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। ब्राह्मणों की अमोघ मन्त्रशक्ति की सभी एक स्वर से प्रशंसा करने लगे। अत्रि मुनि बोले—"देखो, हमारा हवनीय पदार्थ आकाश से नीचे गिर रहा है। जब तक यह पृथिवी में न गिरने पावे तभी तक इसे अधर में स्रुवा पर ले लो। अपने स्रुवा को सम्हाल लो अग्नि को और भी प्रज्वलित कर दो। जहाँ यह नीचे आ जाय स्रुवा पर रखकर अग्नि में स्वाहा कर दो। आज इस इन्द्र की ही आहुति दे दी जाय।

यज्ञ में बैठे हुए ऋत्विज सभापति सभासद और दर्शकों में उत्सुकता, उत्साह तथा सम्भ्रम की एक लहर सी उठने लगी। सभी चकित हुए ऐसा अद्भुत दृश्य को देखने लगे। कि आज इस पृथु के यज्ञ में यह अपूर्व बात हो रही है, कि

जिस इन्द्र को यज्ञो मे बड़े सम्मान से बुलाया जाता था आज उसी को अग्नि मे होमा जा रहा है। इतने मे ही इन्द्र नीचे आ गया। ऋत्विज ज्यों ही स्रु वा लेकर होम करना चाहते थे, त्यो ही बडी शीघ्रता से हंस पर चढे हुए चतुर्मख ब्रह्मा वहाँ आ उपस्थित हुए और बडा व्यग्रता के साथ उच्च स्वर मे ऋत्विजो को सम्बोधन करते हुए बोले—"अरे, अरे, तुम यह क्या अनर्थ कर रहे हो ? ब्राह्मणो सावधान सावधान ! ऐसा अन्याय मत करो। इस प्रकार मन्त्रो का दुरुपयोग करना उचित नही। ऐसा दुस्साहस भूल कर भी मत करना, मेरी बात सुनो।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजा ! लोक पितामह ब्रह्माजी के ऐसे वचन सुनते ही सब के सब सहम गये। सब गुड़ गोवर हो गया। सब इन्द्र के वध से निवृत्त होकर ब्रह्माजी के स्वागत सत्कार मे लग गये।

छप्पय

क्रोधित ह्वै पृथु कहे, अवसि देवेन्द्र जराओ।
पढ़ें विप्रवर मन्त्र, अमर पति आओ आओ ॥
गिरे स्वर्गते इन्द्र कलामुडी सी खावत।
देखें सबने शक्र खिंचे पशु सम मख आवत ॥
दौरे आये पितामह, अरे. अरे, का करत हो।
यज्ञ रूप इन इन्द्र के, व्यर्थ प्रान च्यौ हरत हो ॥

ब्रह्माजी के समझाने पर महाराज पृथु का क्रोध शान्त, यज्ञ की समाप्ति

(२६६)

मास्मिन्महाराज कृथाः स्म चिन्ताम्,
निशामयास्मद् वच आदृतात्मा ।
यद्ध्यायतो दैवहतं नु कर्तुम्,
मनोऽतिरुष्टं विशते तमोऽन्धम् ।*

(श्रीभा० ४ स्क० १६ अ० ३४ श्लो०)

छप्पय

भैया, श्रद्धासहित जिन्हे मख माहिं बुलाओ ।
काहे तिनकूँ विप्र ! अग्नि महँ आजु जराओ ॥
राजन् छोड़ो वैर व्यर्थ मति बात बढ़ाओ ।
अब हठ करि पाखंड जगत महँ मति फैलाओ ॥
सौ मख कर का करोगे, मोक्ष मार्ग के पथिक तुम ।
इच्छा राखो इंद्र की, सब के हित की कहहिं हम ॥

संसार मे यदि वृद्ध पुरुष न हों, तो न जाने क्रोध मे भरकर ये युवक लोग क्या क्या अनर्थ कर डालें । जब दो समान बल

---

*मैत्रेय मुनि कहते हैं —"विदुर जी ! कुपित हुए पृथु के समीप ब्रह्माजी आकर उन्हें समझाते हुए कहने लगे—"महाराज ! आप इस

वाले किसी वात पर अड जाते हैं, किसी विषय पर दोनो का ही समान रूप से आग्रह होता है, तो वहाँ सघर्ष हो हा जाता है। उस सघर्ष मे यदि वृद्ध बीच म नही पडते तब तो रक्तपात अवश्यम्भावी है यदि वृद्ध बीच मे पड गये, तो समझा बुझाकर किसी को प्यार से किसी को डाँट डपट कर शान्त कर देते है। उस झगडे को मिटा देते हैं। इसीलिए सभाओ मे वृद्धो का होना अत्यावश्यक है। वह सभा सभा ही नही कही जा सकती जहाँ वृद्ध न हो और वे वृद्ध वृद्ध ही नही माने जाते जो सबके हित की पक्षपातरहित वात न कहे।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! जब ब्राह्मण गण इन्द्रको अग्नि मे अपनी मन्त्रशक्ति से स्वाहा करने को उद्यत हो गये, तब उसी समय ब्रह्माजी ने बीच मे आकर उन्हे डाँटा। ब्रह्माजी की डाँट डपट सुनकर सभी यज्ञकर्ता चुप हो गये, क्योकि यज्ञ कराने वाले कोई ब्रह्माजी के पुत्र थे, कोई पौत्र, कोई प्रपौत्र। कैसा भी हो, वडो का शील सकोच करना ही पडता है। उस समय आदि त्रेता युग था। यदि आज का जैसा कलियुग होता, तो सम्भव है लोग उन पितामह की अवहेलना भी कर सकते थे। ब्रह्माजी वृद्धपने के स्वभाव से सबको डाँटते हुए बोले—क्यो भाई ! तुम लोग यह क्या गडबड सडबड़ कर रहे हो ? अरे, इन्द्र अग्नि मे हवन करने की वस्तु है ? तुम लोगो की कैसी मति मारी गई है। राम ! राम ! भया, इन्द्र तो साक्षात् विष्णु स्वरूप है तुम

बात की चि ता न करें कि हमारा यह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त न हुआ। हम जो कहे उसे आदर के साथ श्रवण करें। देखिये, जो पुरुष दैव के द्वारा विघ्न किये हुए कार्य को करने का दुराग्रह करता है उसका मन अत्यन्त क्रोध के कारण घोरतम मोह को प्राप्त होता है।

सब लोग यज्ञो मे इन्ही की आराधना करते हो, इन्ही को भक्ति पूर्वक वलि भाग देते हो। यज्ञ पुरुष जो भगवान् हैं, उनके अश ही तो ये सब देवता गण हैं। इसलिये तुम लोगो को ऐसा अनर्थ नहीं करना चाहिये। अपनी मन्त्रशक्ति का ऐसे कार्यों मे दुरुपयोग करना उचित नही।

ऋत्विजो ने कहा—"महाराज हम क्या करें ? हम तो यजमान के अधीन है, यजमान की जैसी इच्छा होगी, उसी की पूर्ति हम करेगे। आप इन्द्र को तो वरजते नही, हमे ही डाँट रहे हैं।'

ब्रह्माजी ने कहा—"इन्द्र तो है हठी, उसे क्या समझावें। तुम लोग इतने बडे बडे ज्ञानी ध्यानी होकर व्यर्थ मे बात को बढा रहे हो। उसी की बात बडी होने दो। जब वह आग्रह करता है, तो तुम उसके आग्रह को मान लो।"

ऋत्विजो ने कहा—"महाराज, हमारा तो कोई आग्रह है नही। हमे आप जैसी भी उचित अनुचित आज्ञा दगे, उसका सिर से पालन करेंगे।"

ब्रह्माजी ने कहा—"इस अतिम यज्ञ मे ही इन्द्र अपनी हठ पर तुल गया है, उसने कैसा पाखड फैलाया है, तुम समझते नही, इसका ससार के लिये कैसा घातक परिणाम होगा, सब इन्ही बातो का अनुकरण करेंगे। जगत् मे पाखड मार्ग की वृद्धि होगी। अब जो हुआ सो हुआ। तुम यज्ञ को वन्द करो।"

ऋत्विजो ने कहा—"महाराज, यज्ञ को वन्द करना तो हमारे अधिकार की बात है नही। राजा ने हमें यज्ञ के लिये वरण किया है, हमने प्रतिज्ञा की है, हम आपके यज्ञ को अपनी मन्त्रशक्ति स निर्विघ्न समाप्त करायेंगे। इसलिये जब तक यजमान धर्म मे स्थित है, कोई वेद-विरुद्ध आचरण नही करता, हम मे श्रद्धा रखता है, हमारी आज्ञाओ का पालन करता है, तब तक

हम कार्य से कभी भी पराङ्मुख नही हो सकते। हाँ, यजमान स्वय ही यज्ञ से निवृत्त हो जाय, यज्ञ करना न चाहे, तब दूसरी बात है। फिर हम दोषी नही कहला सकते। जब तक राजा दीक्षा लिये बैठा है और यज्ञ कराने मे समर्थ है, तब तक हम स्वेच्छा से यज्ञ बन्द नही कर सकते।"

यह सुनकर ब्रह्माजी महाराज पृथु को बडे नम्र शब्दो मे समझाने लगे। पितामह बोले—'राजन्! आप इन्द्र पर इतने कुपित क्यो हैं?"

कुछ रोष के स्वर मे महाराज पृथु बोले—'महाराज! आप देख नही रहे हैं, इन्द्र मेरे यज्ञ मे बार बार विघ्न कर रहा है। क्रोध की तो बात ही है।"

ब्रह्माजी ने हँसकर कहा—'आप यज्ञ करके कौन सा पद प्राप्त करना चाहते हैं?"

महाराज पृथु ने कहा—"महाराज, मुझे किसी भी पद की आकाक्षा नही। मैं तो यज्ञो द्वारा भगवान् की निष्काम भाव से उपासना कर रहा हूँ।"

बडे मधुर शब्दो मे ब्रह्माजी ने कहा—'जब आपको भगवान् की आराधना ही करनी है, तो आपका १०० यज्ञ करने का ही आग्रह क्यो है। जैसे ही १०० यज्ञ वैसे ही ९९ आप इस छोटी सी बात के पीछे क्रोध करके अपने तप तेज को नष्ट करना क्यो चाहते हैं।

इस पर महाराज पृथु ने प्रेम के रोष मे कहा—"महाराज, य बात आप इन्द्र को क्यो नही समझाते। उसका हमने क्या बिगाडा है, वह क्या हमारे यज्ञ म विघ्न करने पर तुला हुआ है।"

इस पर ब्रह्माजी बडे स्नेह से बोले—'अब भैया, तुम दोनो

ही अपने अपने हठ पर अडे रहोगे तो फिर गाडी आगे चलेगी ही नहीं । तुम लोगो की हठ के पीछे ससार का अनर्थ होगा। पाखण्ड मार्ग का प्रचार होगा, इसलिये भैया, दोनो आपस में सुलह कर लो ।"

महाराज पृथु बोले—"हमारी क्या लडाई । उन्होने ही पहिले से छेडखानी आरम्भ की है, वे हमारे यज्ञ मे विघ्न करना छोड दे हमारी सुलह ही है । वे अपने घर, हम अपने घर ।"

ब्रह्माजी बोले—"भैया, ये सुलह की बातें नही । ये तो हठ वाली बातें है । देखो इन्द्र भी भगवान् के अशावतार हैं, तुम भी भगवान् के अशावतार हो । बात को बढाओ मत । आप ही छोटे बन जाओ । इन्द्र का आग्रह है, सौ यज्ञ पूरे न हो, तो न सही । आपको १०० से क्या लेना । आप तो मोक्ष धर्मावलम्बी है ।

पृथु महाराज ने उपेक्षा के स्वर मे कहा—"महाराज ! मुझे क्या ? मेरे लिये जसे ही १०० वैसे ही हजार, वैसे ही १०, किन्तु मैं इसी दुविधा मे पडा हूँ, कि जो प्रतिज्ञा कर के भी उस काम का नही करता वह ससार मे झूठा कहलाता है, मैंने सौ यज्ञो की दीक्षा ली है । १०० पूरे न होगे, तो लोग मेरी निंदा करगे । कहेंगे—'पृथु अपनी प्रतिज्ञा पालन नही करते ।'

इस पर ब्रह्माजी बोले—"राजन् ! आप इस बात से निश्चिन्त रह, इससे आपकी निन्दा नही, किन्तु बडाई ही होगी । ग्रहण करने वाले से सामर्थ्य होने पर त्याग करने वाला सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है । मान पाने वाले की अपेक्षा मान देने वाले का महत्व अधिक है, दूसरो को नीचा दिखाने की अपेक्षा शक्ति रहने पर स्वय नत हो जाना प्रशसनीय कार्य है । अत. राजन् !

आपके ९९ यज्ञ से ही सैकडो यज्ञो के समान आपकी कीर्ति होगी। अप इस बात की चिन्ता छोड दें, कि मेरे १०० यज्ञ निर्विघ्न समाप्त नही हुए। देखिये, जिस कार्य मे दैव प्रतिकूल हो, उसके लिये अत्यधिक आग्रह करना क्रोध उत्पन्न करके सबसे लडना भिडना यह प्रशसनीय कार्य नही है। इससे तमोगुण बढ़ता है, लक्ष्य से च्युत होना पडता है और उत्थान के स्थान मे पतन होता है। अत ऐसे अवसर पर अपने बडे वृद्ध लोग जो कहे उसी को श्रद्धा सहित मान लेना चाहिये। हम जो आपको सम्मति दे रहे हैं, उसे बेमन से नही, आदर पूर्वक स्वीकार कीजिये, इसमे आप का तथा समस्त प्रजा का कल्याण है।

यह सुन कर पृथु बोले—"महाराज, मुझे तो आपकी आज्ञा सर्वथा स्वीकार है, किन्तु यह अतिम ही तो यज्ञ है ब्रह्माजी ने तनिक घुडक कर कहा—"देखो, फिर वही बात। भैया, ये देवता बडे हठी होते है। इन्द्र नही मानेगा, नही मानेगा, वह विघ्न अवश्य करेगा। शक्ति भर आपके १०० यज्ञो को पूरा न होने देगा इससे होगा क्या ? पाखड बढेगा धर्म का ह्रास होगा। इसलिये भैया, तुम्हारे यज्ञ बन्द करने से ये सब अनर्थ एक साथ रुक जायँगे। इन्द्र तुम्हारे यज्ञसे द्रोह करता है, तुम्हारे घोडे को चुराता है, इससे पाखड वेष से भोली भाली जनता मोहित होती है। आप का अवतार तो धर्म की वृद्धि के लिये हुआ है। वेन के समय धर्म लुप्तप्राय हो गया था, उसने यज्ञ, दान, तप सभी बन्द कर दिये थे, आपने उन सब का फिर से प्रचार किया, धर्म की मर्यादा को फिर से बाँधा। फिर आप अधर्म को क्यो बढने देते है, बन्द कर दीजिये इस यज्ञ को। इन्द्र का ही हठ रहे। ये विश्व के रचयिता भृगु आदि महर्षि धर्म की वृद्धि

करके प्रजा को बढा रहे हैं, इनके काम मे आप सहायता करें। इन सब ने धर्म वृद्धि के लिये ही वेन के मृतक शरीर से आपका प्राकट्य कराया है। इन्द्रनिर्मित इस प्रचण्ड पाखण्ड पापपथ का मूलोच्छेद कीजिये। आप हिचक क्यो रहे हैं ?"

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! लोक पितामह भगवान् ब्रह्मदेव की बात सुनकर महाराज पृथु ने उस पर विचार किया और फिर हाथ जोड कर बोले—"प्रभो ! जैसी आपकी आज्ञा। अच्छी बात है मैं इस यज्ञ की पूर्ति के हठ को आपकी आज्ञा से छोडे देता हूँ।"

ब्रह्माजी ने कहा—भाई, ऐसे नही। हमारे कहने से बेमन से नही। इन्द्र के अपराधो को क्षमा कर दो। मन मे मैल मत रखो रचक मात्र भी इस बात का ध्यान न रखो, कि यह हमारे यज्ञ का विघ्न करता है। इसे दवेच्छा समझकर इन से प्रेम करलो।'

महाराज पृथु ने कहा—"नही भगवन् ! रागद्वेश की कौन सी बात है। इन्द्र भी आपके बच्चे हैं, मैं भी आपका बच्चा हूँ भाई भाइया मे ऐसा मतभेद हो ही जाना है। अब मेरे मन मे कोई बात नही।'

इतना कहकर महाराज ने ऋत्विजो से यज्ञ स्थगित करने की प्राथना की। अब यज्ञान्त अवभृत स्नान हो—इतना सुनते ही ऋत्विजो ने पूर्णाहुति की। भगवती विष्णुपदी गगाजी मे अव भृत स्नान हुआ। यज्ञ म आये हुए समस्त देवताओ न महाराज को अभीष्ट वरदान दिये। ब्राह्मणो ने मनमानी यथेष्ट दक्षिणा पाकर महाराज को भाति भाति के अमोघ आशार्वाद दिये। महाराज न सभी का दान सम्मान स यथोचित आदर किया। दान चाहे कितना भी करें यदि वह श्रद्धा और सम्मानपूर्वक नही किया जाता, तो सब व्यर्थ है। लेने वाला को हार्दिक

प्रसन्नता नही होती, पूर्ण सतोष नही होता। इसके विपरीत चाहे दान कम ही दिया जाय, किन्तु मान सम्मान और श्रद्धा सहित उचित पात्र को दिया जाय, तो उसका अक्षय फल होता है। महाराज पृथु ने दान भी आवश्यकता से अधिक दिया और मान सम्मान स्वागत सत्कार भी सब का यथेष्ट किया। इससे सभी सन्तुष्ट होकर महाराज पृथु के प्रभाव की भूरि भूरि प्रशसा करते हुए अपने अपने स्थानो को चले गये।

छप्पय

विधि आज्ञा सिर धारि यज्ञ पृथु बन्द करायो।
गुरु गौरव कूँ मानि बात आगे न बढायो॥
जो जो मख महँ देव विप्र ऋषि मुनिवर आये।
सब को करि सत्कार, विविध विधि दान दिवाये॥
पाइ दान सम्मान बहु, विप्र तुष्ट अतिशय भये।
दे आशिष अति मुदित ह्वै, अपने अपने घर गये॥

—×—

महाराज पृथु और इन्द्र में प्रेम कराने को प्रभु प्राकट्य

(२७०)

भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः।
यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक् तमभाषत॥
एष तेऽकारषीद् भङ्गं हयमेधशतस्य ह।
क्षमापयत आत्मानममुष्य क्षन्तुमर्हसि॥*

(श्रीभा० ४ स्क० २० अ० १०२ श्लो०)

छप्पय

पृथु यज्ञनि तें तुष्ट भये श्री मधुसूदन अति।
भये यज्ञ महँ प्रकट शक्र लै संग यज्ञपति॥
पृथु तें पूजित भये फेरि बोले मृदुवानी।
राजन् ! सबहिं कुचाल शतक्रतु की हम जानी॥
हौं प्रसन्न तुम पै भयो, सिद्ध होहिं तब काज सब।
अतिलज्जित यह इन्द्र है, जाहि क्षमा करि देहु अब॥

समस्त कर्मों के करने का एकमात्र उद्देश है, प्रभु प्रीति। जो इस उद्देश को भूलकर कर्मो मे ही आसक्त हो जाते हैं उनके

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी लोकपितामह ब्रह्माजी के समझाने के अनन्तर महाराज पृथु के यज्ञो से सन्तुष्ट होकर यज्ञ भोक्ता भगवान्

द्वारा ससारी भोगो की इच्छा रखते हैं, वे उसी प्रकार हैं, जैसे कोई पथिक किसी राजा के समीप जा रहा हो। वहाँ न जाकर केवल पथ मे ही आसक्त हो जाय। अच्छी अच्छी चमकीली दीखने वाली वस्तुओं मे ही फँसकर लक्ष्यच्युत हो जाय। यज्ञादि कर्म साध्य नही, साधन हैं। इनको करके श्रीकृष्णार्पण कर दे। उनका फल स्वय न चाहे, जो ऐसा न करके उनको ही साध्य मानकर परनिन्दा, द्वेष, कलह शत्रुता आदि करते है, उन्हे अन्त मे पछताना पडता है। वे उभयभ्रष्ट हो जाते हैं। हमारे जिस कर्म से भी प्रभु प्रसन्न हो जायँ, वही श्रेष्ठ है। प्रभु प्रसन्न हो गये, तो अधूरा काम भी पूरा है, यदि उनकी प्रसन्नता प्राप्त न हुई तो पूरा काम भी अधूरा माना गया है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! ब्रह्माजी की आज्ञा मानकर जब महाराज पृथु ने १०० यज्ञो की पूर्ति का विचार छोड़ दिया और १०० यज्ञ को अधूरा ही छोड़कर अवभृत स्नान कर लिया तो उनकी इस निस्पृहता के कारण यज्ञपति भगवान वासुदेव उन पर अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। अब अपने अशभूत महाराज को कृतार्थ करने और उनके यज्ञों का वास्तविक फल देने के निमित्त भगवान् विष्णु साक्षात् रूप से महाराज पृथु के सम्मुख प्रकट हुए। गरुड के ऊपर बैठे हुए भगवान् उसी प्रकार शोभित हो रहे थे मानो सुमेरु शिखर पर जल से भरे विजली-युक्त बादल विराजमान हो। उनके साथ देवेन्द्र इन्द्र भी थे, गधर्व

विष्णु इन्द्र को साथ लिये हुए पृथु-यज्ञ मे प्रकट हुए और महाराज बोले—"राजन् ! आपके सौवें यज्ञ को इस इन्द्र ने भङ्ग किया है, इस समय यह अपने अपराध को आपसे क्षमा कराना चाहता है, इसलिये आपको इसे क्षमा कर देना चाहिये।

गा रहे थे, ऋषि-मुनि उनकी स्तुति कर रहे थे। सहसा श्रीहरि को प्रकट होते देखकर पृथ्वीपति महाराज पृथु हक्के बक्के से रह गये, वे किंकर्तव्यविमूढ से बने कुछ निर्णय न कर सके, कि मुझे क्या करना चाहिये कैसे पूजा करनी चाहिये। इतने मे ही भगवान् मुसकराते हुए महाराज पृथु से कहने लगे—राजन्! तुम उदास तो नही हो गये, तुम्हारे मन मे कुछ दु.ख तो नही हुआ, तुम इन्द्र के ऊपर कुपित तो नही हो?"

भगवान् के ऐसे अमृत में सराबोर अत्यन्त ही मधुर वचन सुनकर महाराज कुछ भी न कह सके। वे स्नेह के आवेग मे केवल प्रेमाश्रु ही बहाते रहे, हाथ जोड़े भगवान् के सम्मुख खड़े के खड़े ही रह गये।

तब भगवान् ने कहा—"इस इन्द्र को मैं पकड़ कर तुम्हारे सम्मुख लाया हूँ; इसने तुम्हारा अपराध किया है, तुम्हारे अन्तिम यज्ञ को भग किया है। अब यह अपने कुकृत्य के कारण लज्जित हो रहा है, आपसे क्षमा याचना कर रहा है। देखो, बड़े आदमियो का बड़प्पन इसी में है. कि वे छोटो के दोषो पर ध्यान नही देते। उनके सब अपराधो को क्षमाकर देते हैं। आप भी इसके प्रति अन्यथा भाव न रखें, इसे हृदय से क्षमा करदें।"

महाराज पृथु ने आँसू पोछकर रुद्ध कठ से भर्राई हुई वाणी से इतना ही कहा—"प्रभो! आप ये कैसी बाते कह रहे है।" बस, इसके आगे वे कुछ न कह सके उनका हृदय भर आया, वे भगवान् की भक्त-वत्सलता का स्मरण करके रो पड़े।

तब भगवान् बड़े ही स्नेह के साथ बोले—देखो, राजन् शरीर और शरीरी, देह और देही, आत्मा और अधिष्ठान ये भिन्न-भिन्न हैं। मूर्ख लोग इस शरीर को ही आत्मा मानते हैं और "मैं" कहने से इस शरीर को ही मैं समझते हैं। वास्तव मे

दृश्यमान शरीर आत्मा तो है नही। आत्मा तो इससे सर्वथा पृथक् है। रागद्वेष आदि इस शरीर के ही कारण होते है, अतः साधु स्वभाव के पुरुष इस शरीर सबन्ध से अन्य किसी प्राणी से द्रोह नही करते। द्रोह करें भी तो किससे। सर्वत्र वही एक आत्मा तो नाना रूपो मे दिखाई दे रहा है।"

पृथु ने हाथ जोडे ही जोडे कहा—"प्रभो! यह सब आपकी दुरत्यय माया का ही खेल है।"

प्रसन्न होकर भगवान् बोले—"हाँ, यह सब दैवी माया का ही भ्रम है। जिन्होने चिरकाल तक गुरुजनो की श्रद्धा से सेवा नही की है, वे अज्ञानी पुरुष ही इस माया के चक्कर मे फँस जाते है। यदि तुम जैसे बुद्धिमान पुरुष भी माया मोहित हो जायँ, तब तो सुश्रूषा, आस्तिकता, धर्माचरण ये सब व्यर्थ ही हो जायँ। दु.ख का कारण है ममता। यह मेरा घर, यह मेरा धन, ये मेरे पुत्र पौत्र। इन्ही सबकी आसक्ति मे फँसकर अज्ञानी जीव किसी से राग करता है, किसी से द्वेष। किन्तु बुद्धिमान् पुरुष इस शरीर को अविद्या, वासना और पूर्व कर्मों से निर्मित समझकर सदा अनासक्त भाव से वर्ताव करते हैं।"

इस पर महाराज पृथु ने कहा—"महाराज, यह आत्मा आत्मा लोग कहते हैं आत्मा क्या वस्तु है?"

भगवान् इतना सुनते ही हँस पडे और बोले—"राजन्! आप से क्या छिपा है, आप सब जानते हैं। आप मुझ से भिन्न मेरे अश ही है। अश और अशो मे कोई भेद नही। फिर भी आप पूछते हैं तो कहता हूँ। आत्मा एक है शुद्ध है, स्वय ज्योति है, निर्गुण है, फिर भी गुणाश्रय है। सर्व-व्यापक है, आवरण-शून्य है, सबका साक्षी है, अनन्यात्मा है, सबसे परे है। वह, सबके भीतर है, बाहिर है, फिर भी भौतिक पदार्थों से निर्लेप

है जो इस तत्व को यथार्थ रूप से जान लेता है वह शरीर म रहता हुआ भी सर्वथा मुझ म ही स्थित रहता है। वह विकारो से उसी प्रकार लिप्त नही होता जिस प्रकार जल म रहने पर भी कमलपत्र जल स लिप्त नही होता।

महाराज पृथु बोले—भगवन् ! पृथक् करके कैवल्यपद की प्राप्ति किस साधन द्वारा हो सकती है ?"

भगवान् बोले—राजन् ! इसका एकमात्र उपाय है निष्काम कर्मयोग। जो भी कुछ करो, मेरी प्रीति के निमित्त ही करो, जो करो वह मुझे अर्पण कर दो। बिना किसी प्रकार की कामना रखे जो श्रद्धापूर्वक नित्य ही अपने वर्णाश्रमधर्मोचित कार्यों को मेरी प्रसन्नता के निमित्त करता रहता है, उस कर्म से अत्यन्त शीघ्र ही उसका अन्त करण पवित्र हो जाता है। पवित्र अन्त करण म यह विवेक स्वय ही उत्पन्न हो जाता है कि म देह नही। ऐसा प्रत्यगदर्शी शुद्ध चित्त वाला पुरुष नित्य मुझ म ही स्थिर रहता है। शान्ति तो मेरा स्वरूप ही है अत स्थिर शान्त पुरुष ही कवल पद का अधिकारी हो जाता है। जो पुरुष द्रव्य, ज्ञान, क्रिया और मन के साक्षीभूत मुझे उदासीन निर्विकार आत्मस्वरूप को भली प्रकार जान लेता है, वही शोभनावस्था अर्थात् कल्याण को प्राप्त करता है।

महाराज पृथु ने पूछा—'प्रभो ! अनुकूल प्रतिकूल घटनाओ से जो क्रियायें होती है वे कैसे होती है उनसे सुख दुख की उपलब्धि क्यो होती है ?"

भगवान् बोले—' राजन् ! देखिये, इस शरीर म क्या क्या है पृथिवी,जल,तेज,वायु और आकाश य पच महाभूत हैं, मन सहित ११ इन्द्रिया है सब के अभिमानी देवता है और एक चेतना शक्ति है, इन सब से विशिष्ट परिच्छिन्न लिङ्ग शरीर म ही सात्विक

राजस तथा तामस इन तीनो गुणो की क्रियाये होती है। साक्षी आत्मा तो निर्विकार निष्क्रिय साक्षी मात्र है। जो इन बातो को भली भाँति समझ गया है, ऐसा मुझ मे ही दृढ प्रेम रखने वाला मेरा अनन्य भक्त कभी भी दुख सुख की प्राप्ति मे विकार भाव को प्राप्त नही होता। उसके लिये जसा ही दुख वैसा ही सुख। वह समझता है, गुण गुणो मे वर्त रहे है। आत्मा तो इन प्राकृत गुणो से परे है। ससारी सुख दुख उसे सुखी दुखी नही कर सकते। वह तो नित्यतृप्त दुख सुख से रहित आनन्द स्वरूप है।

पृथु महाराज ने पूछा—"महाराज! ये तो ब्रह्मज्ञान की गूढ बातें हुई, मेरे लिये क्या कर्तव्य है, उसका उपदेश करें।"

भगवान् बोले—"देखो, ससार मे उत्तम, मध्यम, अधम मित्र, शत्रु और उदासीन तीन प्रकार के पुरुष होते है। उत्तम पुरुष सब से मैत्री का भाव रखते है, मध्यम पुरुष उनसे मैत्री करते हैं, जिनसे अपना कुछ सम्बन्ध हो, शेष सबसे उदासीन रहते है। अधम पुरुष वे हैं, जो सदा सर्वदा सभी से मैं मेरी तू तेरी का आश्रय लेकर द्वेष ही करते रहते है। मित्र वे कहलाते हैं, जो सदा अपना हित चाहते हैं। उदासीन वे होते है, जो न हित चाहते है न अहित जिन्हे हमसे कोई प्रयोजन ही नही। शत्रु वे होते हैं, जो सदा हमारा अहित चाहते हैं, बुद्धिमान पुरुष इन तीनो मे ही मन से समबुद्धि रखते है। इनमे पृथक्त्व बुद्धि करके रागद्वेष नही करते। सभी को भगवान् की माया के वशीभूत समझकर सब का मन से आदर करते हैं। तुम ऐसा ही बर्ताव करो। मन सहित इन्द्रियो को जीत कर मेरी सेवा समझ कर सब की सहायता करो, प्रजा की रक्षा करो। तुम्हारे जा मत्री

है उन्हे भी यही समझो कि भगवान् ने इन्हे मेरी सहायता के लिये भेजा है ।

पृथु महाराज बोले—प्रभो ! अब आप मुझे इस प्रजापालन रूपी पचडे मे क्यो फँसाते हैं ? इस कार्य का भार किसी दूसरे को दीजिये । मैं तो कल्याणमार्ग का पथिक बनना चाहता हूँ। सर्वात्मभाव से आपकी ही आराधना मे तत्पर होना चाहता हूँ ।"

भगवान् ने शीघ्रता के साथ कहा—"नही, नही, राजन् ! प्रजा का प्रेम के सहित पुत्रवत् पालन करना ही पृथ्वीपति के लिये कल्याण का प्रशस्तपथ है। प्रजा जो भी पुण्य करती है उसका पष्ठाश पुण्य पृथ्वीपाल को परलोक मे स्वत. ही प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार पाप का भी उसे छठा हिस्सा मिलता है। जो स्वधर्म का त्याग कर प्रमादवश अन्य कार्य करता है, वह पतित हो जाता है इसी लिये तुम वेदज्ञ ब्राह्मण के बताये मार्ग से, उनकी सम्मति लेकर प्रजा का पालन करो। यही आपका प्रधान साधन है ।"

महाराज पृथु बोले—"प्रभो ! आपकी आज्ञा का तो मुझे पालन करना ही है, किन्तु ग्रहस्थी मे आसक्त होने के कारण हम साधु सगति से वचित हो जायँगे। राज काज मे फँसे होने के कारण साधु महात्माओ के यहाँ भी सदा न पहुँच सकेंगे। जब तक सत्सगति नही मिलती, तब तक परमार्थ मार्ग मे उन्नति नहीं होती, आगे बढ नही सकते। इस राज करने मे यह एक बडा दोष है।"

इस पर भगवान् बोले—"राजन् ! आप घबडाते क्या हैं। अजी, जो निष्काम भाव से भगवत् सेवा समझकर सभी कार्मों को करता है, अपने वर्ण धर्म और आश्रम धर्मों का प्रभु प्रीत्यर्थ

पालन करता है। उसके समीप सिद्ध स्वत, सत्सग के निमित्त आते हैं। सिद्ध पुरुषो से किसी के मनोभाव तो छिप रहते नही। वे तो सदा अधिकारी को खोजते रहते हैं। साधक की अपेक्षा उन्हे योग्य अधिकारी को उपदेश देने की अधिक चटपटी लगी रहती है। आप के यहाँ घर बैठे स्वत सनकादि महासिद्ध आकर आपको अपने आप उपदेश दगे।"

भगवान् के ऐसे मधुर कृपा-पूर्णवचन सुनकर महाराज पृथु वडे प्रसन्न हुए। वे भगवान् के कृपा-भार को सह सकने मे समथ न होकर नत हो गये। तव भगवान् उनके ऐसे शील स्वभाव को देखकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले---' राजन् ! मै तुम्हारे शील, स्वभाव सदाचार और सरलता आदि गुणो से अत्यन्त ही सन्तुष्ट हूँ। अब आप मुझसे जो भी कुछ चाहे अपना अभीष्ट वर माँग लें।"

मैत्रेय मुनि कहते है— विदुरजी ! भगवान् के द्वारा वर याचना की आज्ञा श्रवण करके महाराज पृथु सहम गये। वे कुछ भी नही बोले, लज्जित भाव से पृथिवी की ओर देखते रहे और अपने नख के अग्रभाग से पृथिवी को कुरेदने लगे।

छप्पय

राजन् यह तनु नाशवान् क्षण भगुर गुणमय।
आत्मा निर्गुण शुद्ध सर्वगत साक्षी आश्रय॥
करहिं दान तप धर्म विविध विधि यज्ञ रचावें।
करिकें अरपें मोहि परम पद ते नर पावें॥
पृथु ! पृथिवी पालन करो, मेरी सेवा जानिकें।
करहु प्रेम सब जननि तें, सब महँ मोकूँ मानिकें॥

महाराज पृथु का प्रेमोद्रेक

(२७१)

स आदिराजो रचिताञ्जलिर्हरिम्
विलोकितुं नाशकदश्रुलोचनः ।
न किंचनोवाच स वाष्पविक्लवो
हृदोपगुह्यमुमधादवस्थितः ॥*

(श्रीभा० ४ स्क० २० अ० २१ श्लो०)

छप्पय

हरि आयसु सिर धारि चरन महँ शीश नवायो ।
परचो पैर पै शक्र उठायो हिये लगायो ॥
पुनि विधिवत अति प्रेम सहित प्रभु पूजा कीन्ही ।
अति प्रसन्न हरि भये प्रेम की आशिष दीन्ही ॥
हरि दरशन नहिं करि सकें, प्रेम अश्रु नयननि भरे ।
कठ रुद्ध निश्शब्द हरि, हिय तें आलिङ्गन करे ॥

भगवान् की कोई घोर तपस्या करके ही प्रसन्न करना चाहे तो असम्भव है । तपस्या से पुण्य बढता है और पुण्य से ससारी सुख । कोई चाहे कि हम यज्ञो के द्वारा ही श्री हरि को प्रसन्न

---

*मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! भगवान् की कृपा को स्मरण करके आदिराज महाराज पृथु के नेत्रो मे जल भर आया । आंखो मे प्रेमाश्रु भर आने के कारण वे भगवान् के दर्शन करने मे भी समर्थ न

कर लेंगे, तो यह भी उसको भूल है। अश्वमेधादि यज्ञो से स्वर्गादिलोको की प्राप्ति होती है और वे क्षयिष्णु नाशवान् तथा सातिशयादि दोषो से युक्त हैं। भगवान् को यदि कोई प्रसन्न कर सकता है, तो वही कर सकता है, जिसका सब मे समान भाव हो। जो अपकार करने वाले के प्रति भी द्वेष न रखता हो।

एक मठ मे बहुत से भगवद्भक्त साधक रहते थे। वे घर घर से भिक्षा माँग लाते थे और निरन्तर भगवान् के भजन कीर्तन मे सलग्न रहते। उनमे एक बहुत ही उच्च कोटि के थे। वे न किसी से राग करते थे न द्वेष। सब मे समान भाव से उन अन्तर्यामी सर्वेश्वर को देखते थे। खलो का तो यह स्वभाव ही होता है, कि अकारण साधु पुरुषो से द्वेष करना और उन्हे पीडा पहुँचाते रहना। एक दुष्ट प्रकृति का पुरुष था, उनसे वैसे ही द्वेष करता था। महात्मा को तो कुछ पता ही नही था। एक दिन वह अपने सगे भाई से लडाई कर रहा था। दोनो एक दूसरे पर क्रोध मे भर कर प्रहार कर रहे थे। ये महात्मा भी भिक्षा माँगते हुए उधर आ निकले। साधु पुरुषो का स्वभाव ही होता है, कि दो लडते हुए पुरुषो को समझा देना उन मे बीच बिचाव कर देना। महात्मा जी ने भी बीच मे आकर उन दोनो को समझाते हुए कहा—"अरे, भैया! लडते क्यो हो, देखो, लडाई झगडा ठीक नही। प्रेम पूर्वक रहो।" इतना कह कर वे दोनो के बीच मे पडकर उनको हटाने लगे।

हुए। कण्ठ रुद्ध हो जाने के कारण वे कुछ कह भी न कह सके। वह अपने हृदय से ही इन श्रीहरि का आलिगन करते हुए दोनो हाथो की अञ्जलि बाँधे खडे के खडे ही रह गये।"

उस दुष्ट को आया क्रोध, कि यह साधु हमारे काम मे विघ्न करता है, हमे गुरु वनकर शिक्षा देता है। अत. भाई पर प्रहार करना छोडकर महात्मा के सिर पर जोर से एक लाठी मारी महात्मा का सिर फट गया और वे अचेत होकर गिर पडे। उन्हें शरीर की भी सुधि न रही।

जब मठ के दूसरे सतो ने सुना तो वे शीघ्रता से उनके समीप आये और उठाकर मठ मे ले गये। उनका उपचार किया घाव मे औषधि लगाई, पट्टी बांधी और चेतना लाने के लिये मुख मे रुई से गरम गरम दूध छोडने लगे। महात्मा को कुछ कुछ चेत हुआ। तब एक वृद्ध से सन्त ने यह देखने के लिये कि इन्हे चेत हुआ या नही उनसे पूछा—"महात्मन्। बताइए आप पहिचानते है, आपके मुख मे दूध कौन डाल रहा है ?"

क्षीण स्वर म उन समदर्शी महात्मा ने उत्तर दिया—' थोडी देर पहिले जिसने मारा था, वही दूध पिला रहा है। वे ही मारते है ताडते है। शिक्षा देते है और वे ही रक्षा भी करते हैं।" अचेतावस्था मे भी समभाव की ऐसी हढ भावना देखकर भगवान् तुरत प्रकट हुए और उन्हे अपने दर्शनो से कृतकृत्य किया।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—' विदुरजी। भगवान् के यहाँ ऐश्वर्य की सामग्रियो की तो कुछ कमी ही नही। वे इन ऊपरी आडम्वरो से प्रसन्न नही होते, उनकी प्रसन्नता तो भाव के ऊपर अवलम्वित है। यदि महाराज पृथु १०० अश्वमेघो का ही आग्रह करते रहते और इन्द्र उसमे निरन्तर विघ्न करता, तो दोनों ओर से सघर्ष होना, लडाई भगडा, क्रोध द्वेष, शापी मारा मारी तक की नौवत आ जाती। यज्ञ-भूमि रण-भूमि बन जाती, प्रेम के स्थान म द्वेष का वीजारोपण होता। जब ब्रह्माजी की आज्ञा शिरोधार्य करके महाराज पृथु झुक गये, नत हो गये, तो

इससे लोक पितामह ब्रह्मा, जगत् पति भगवान् विष्णु उन पर प्रसन्न हुए और उन्हे अपने साक्षात् देव-दुर्लभ दर्शन दिये। भगवान् जो भी आज्ञा देंगे, मेरे कल्याण की ही देंगे। यज्ञों द्वारा मैं उन्ही का पूजन कर रहा हूँ। यही सब सोचकर महाराज पृथु ने श्रद्धा-सहित सर्वात्मा श्रीहरि के सम्मुख सिर झुका दिया उनके शुभ शासन को शिरोधार्य किया।

महाराज का ऐसा विनय देखकर भगवान् ने शक्र को सकेत किया, कि अपने अपराध के लिये वह महाराज से क्षमा याचना करें श्रीहरि का सकेत पाते ही, अमर-पति इन्द्र उनके पैरो मे पड गए। अपने पैरो मे पड़े देवेन्द्र को देखकर महाराज पृथु का हृदय भर आया और अत्यत ही स्नेह से इन्द्र को बलपूर्वक उठाकर अपने हृदय से चिपका लिया। अश्रु विमोचन करते हुए देवेन्द्र बोले—"महाराज ! मैंने आपका बडा भारी अपराध किया है। अपने क्षुद्र स्वभाव से बड़ी कुलिटता की है कि, आप अपनी उदारता से मेरी उस कुटिलता को भूल जायँगे, मुझे क्षमा कर देगे ऐसी मैं आपसे आशा रखता हूँ।"

अत्यन्त ही स्नेह के स्वर मे इन्द्र के ऊपर हाथ फेरते हुए महाराज पृथु बोले—"देवेन्द्र ! आप ये कैसी बाते कह रहे है। मेरा लक्ष्य यज्ञो की पूर्ति तो था नही। १०० यज्ञ करके मुझे कोई पद प्राप्त तो करना नही था। मेरा तो एकमात्र उद्देश्य प्रभु प्राप्ति ही था। मेरे इन शुभ कर्मो से सर्वान्तर्यामी श्रीहरि प्रसन्न हो यही मेरा ध्येय था, सो बिना यज्ञो की पूर्ति के ही प्रभु प्रसन्न हो गय। यदि घर के कोन मे ही शहद मिल जाय तो फिर उसकी प्राप्त के लिये पर्वतो मे मारे मारे फिरने से क्या लाभ ? आपने तो मेरे ऊपर कृपा की, झझटो से बचा दिया। आप इस प्रकार आग्रह न करते, तो भगवान् इतनी सरलता से

प्रसन्न थोडे ही हो सकते थे। आप अपने मन मे तनिक भ
विचार न करें। न लज्जित ही हो, आपके प्रति मेरा कोई बु
विचार नही। कुछ यत्किंचित् विद्वेष पहिले रहा भी हो, तो व
सब श्रीहरि के दिव्य अनुशासन से धुल गया, स्वच्छ हो गया।
इतना कहकर महाराज ने देवेन्द्र को हृदय से क्षमा क
दिया।

अब महाराज को चेत हुआ "अरे, मैं तो ऐसा बेसुध हो
गया, कि भगवान् का पूजन भी नही किया। उसी समय तुर
पूजा की दिव्यातिदिव्य बहुमूल्य सामाग्रयाँ मगाई गईं। उन
द्वारा महाराज ने बडे विधि विधान से भगवान् का पूज
किया। पूजन के अनतर उन्होने प्रभु के पाद-पद्मा को प्रेमपूर्व
पकड कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। महाराज का हृदय भर रह
था, उनका अनुराग क्षण क्षण मे नूतन होता जाता था। भगव
के कमल-दल-सदृश करुण चरणो के स्पर्श से उनकी तृप्ति हो
ही नही थी। भगवान् का हृदय भी नवनीतक समान पिघल रह
था। जैसे अत्यन्त हेज वाली गौ अपने हाल के बच्चे के उ
स्नेह प्रदर्शित करती हुई उसे चाटती है उसी प्रकार साधु
के सुहृद कमल दल लोचन सर्वात्मा श्रीहरि अपनी दया से अ
प्रोत दृष्टि द्वारा महाराज को देखते के देखते ही रह गये। उन
दया से आर्द्र हुई दृष्टि पृथु के आनन पर चिपक गई। यद्य
वे जाने को उद्यत थे, अन्तर्धान होने के लिये तत्पर थे किन्तु भ
के भक्तिबन्धन मे ऐसे कसकर बँध गये, कि उस बधनको तुडा
भाग सके। स्नेह की दृढरज्जु को सर्व समर्थ होने पर भी तो
मे वे असफल ही रहे। वे स्नेहपाश मे जकडे, गरुडजी के उ
कधे को पकडे खडे के खडे ही रह गये। यद्यपि देवता पृथ्वी
का स्पर्श नही करते, किन्तु प्रभु अपने आपे को भूल गये है,

उनके कोमल चरण कमल कठोर अवनि का स्पर्श कर रहे थे। भक्त और भगवान् दोनो की ही एक सी दशा थी, दोनो ही अपने आपे मे नही थे। महाराज पृथु के सरसीरुह सदृश विशाल विकसित नेत्र प्रेमाश्रुओ से ऐसे भर गये थे, कि वे भली भाँति भगवान् की झाकी भी न कर सकते थे। कठ ऐसा रुद्ध हो गया था, कि उससे एक शब्द प्रयत्न करने पर भी नही निकलता था। हृदय से उनका आलिगन कर रहे थे। अपने करार विन्दो से प्रभु के पादारविन्दो को प्रेमपूवक कसकर पकडे हुए थे। दोनो ही सज्ञाशून्य शरीर की सुधि भुलाये प्रेमासव मे छके से स्तब्ध खडे थे। भगवान् जा नही सकते थे, भक्त उन्हे छोड नही सकते थे। इस प्रकार वह दृश्य देखने ही योग्य था किसी परम भाग्यशाली के भाग्य मे ऐसा दृश्य देखने का सौभाग्य होता है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—'विदुरजी! प्रेम मे आदान प्रदान की प्रथा प्राचीन है। आदान प्रदान से प्रेम वृद्धि को प्राप्त होता है। वह प्रेम का पोषक और अभिव्यक्ति कारक है। अत फिर भगवान् ने कहा—राजन्! मेरी प्रसन्नता व्यर्थ न जाय, अत तुम मुझ से कोई भी अपना अभीष्ट वर माँग लो। तुम मुझसे जो भी वस्तु माँगोगे वही मैं दूँगा। विदुरजी! भगवान् की ऐसी बात सुनकर महाराज पृथु कुछ भी नही बोले। वे भगवान् के श्रीमुख को एक टक भाव से निहारते के निहारते ही रह गये।

छप्पय

पृथु पकरे प्रभु पाद पद्म पावन अति मनहर ।
स्रवे सदा मधुमत्त होहिँ पी भक्त भ्रमर वर ॥
पलकनि पौंछि पराग नयन पयतें पुनि धोये ।
नखद्युति के आलोक माहि प्रिय पुनि पुनि जोये ॥
प्रभु प्रभुपन कूँ भूलिकें, पग पृथिवी परसत भये ।
भक्त और भगवान् ऊ, दोनो वेसुधि वनि गये ॥

महाराज पृथु का प्रभु से विचित्र वरदान

(२७२)

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचित्,
न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो—
विधत्स्व कर्णायुतमेप मे वरः ॥*

(श्री भा० ४ स्क० २० अ० २४ श्लो०)

छप्पय

भक्त वछल भगवान् कहे नृपवर वर माँगो ।
मोइ कृतारथ करो निस्पृहा ऐसी त्यागो ॥
अश्रु पोंछि पृथु कहेँ प्रभो ! अब यह वर दीजे ।
होहिँ सहस दश कान, प्रतिज्ञा पूरी कीजे ॥
घर बैठे सब ठौर तें, सुयश तुम्हार सुन्यो करूँ ।
सुनत श्रवन गुन थकित नहिँ, होहिँ हिये तव छवि धरूँ ।

जिस सुरा मे उत्कट और बुरी गंध आती है, उसे पीने मे क्या सुख होता होगा' इसे सुरापी के अतिरिक्त दूसरे लोग जान नही सकते । जिसे देखने से उल्टी हो जाती है जिसका

*मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! जब भगवान् ने महाराज पृथु से बार बार वरदान माँगने को कहा, तब महाराज बोले—"हे स्वामिन् ! मैं आपसे ऐसी कोई भी सासारिक वस्तु नही चाहता, न

स्मरण आते ही जी मिचलाने लगता है, उस मास मे क्या स्वाद होगा, इसे मामाशी के सिवाय दूसरा जान नही सकता। जिन अगों से सदा दुर्गन्धि-युक्त मल मूत्र आदि अशुचि पदार्थ सदा स्रवित होते रहते हैं उनके सेवन स्पर्शादि से क्या सुख होता होगा ? इसका अनुभव ससारी कामियो के अतिरिक्त कौन कर सकता है। इसी प्रकार भगवान् की नित्य कथा सुनने से क्या सुख होता है, इसे भगवद् भक्तो के अतिरिक्त दूसरा समझ नही सकता। प्रायः लोग यह प्रश्न करते हैं, क्यो जी, वे ही हिरण्याक्ष हिरण्य कशिपु, वे ही सूकर नृसिंह, वे ही रावण विभीषण, वे ही राम लक्ष्मण। वे ही कस शिशुपाल, वे ही कृष्ण बलराम। एक बार सुन ली, दो बार सुन ली, दस बार सुन ली। अब उसे ही बारबार क्या सुनना, पिसेको क्या पीसना। तुम्हारी तृप्ति क्यो नही होती।" इसका सरल सा उत्तर यही कि जिसका जो आहार बन गया है, उसकी उससे कभी तृप्ति नही हुआ करती। उस उस वस्तु का व्यसन पड़ जाता है। भोजन से कभी किसी को तृप्ति हुई है ? प्रातः भली प्रकार ठूँस ठूँस कर पेट को भर लिया, शाम को फिर भूख लग आती है। अफीमची को एक दिन अफीम न मिले, व्याकुल हो जाता है, भँगेडी को भाँग के बिना, गजेड़ी को गाजे के बिना, शराबी को शराब के बिना सम्पूर्ण ससार सूना सा दिखाई देता है।

कोई ऐसा स्थान प्राप्त करना चाहता हूँ जहाँ महापुरुषो के मुख से निकला हुआ सुयश सुधारूपी मधुर मकरन्द पान करने को न मिले। यदि आप वर देना ही चाहते हैं, तो मुझे यही वर दीजिये, कि आपके गुण श्रवण के निमित्त मेरे दस हजार कान हो जायें, यही मेरा श्रेष्ठतम वर है।

अपनी इष्ट वस्तु से जिसे तृप्ति हो जाय, तो समझो वह उसका इष्ट ही नहीं। रुपया कमाने वालों की कभी रुपयों से तृप्ति हुई है। वे ही सोने चाँदी, तावे कागज के सिक्के है अपने पास दस रहे तो भी वैसे, सौ रहे तो भी वैसे, हजार लाखों कितने भी रहे, तृप्ति किसी को नहीं। हजारपति लखपति होना चाहता है, लखपति करोडपति बनने का उत्सुक है। करोडपति पद्मपति बनना चाहता है। इसी का नाम है व्यसन। विशेषरूप से निरन्तर खाते रहना और तृप्ति न होना यही व्यसन का तात्पर्य है। ससारी व्यसनों मे फँसे लोग तो सर्वत्र दिखाई देते है, किन्तु जिन्हे भगवन्नाम कीर्तन, भगवत् कथा श्रवण का व्यसन है, जो इनके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते, ऐसे पुरुष ससार मे दुर्लभ है। जिन्हे ससारी कथा रुचिकर प्रतीत न होकर "भागवती कथाओ मे ही सदा रमे रहें ऐसे पुरुष तो ससार मे दुर्लभ हैं। उनकी कोई आन्तरिक इच्छा रहती भी है, तो यही कि सर्वत्र भागवती कथाओ का प्रचार और प्रसार हो सर्वत्र हरिनाम-सकीर्तन की सुमधुर ध्वनि गूँजती रहे। कोई क्षण ऐसा न बीते जिसमे कृष्ण कथारूपी पुनीत पीयूष पान करने को प्राप्त न हो सके। वे सबसे इसी की याचना करते हैं, सब से इसी के सम्बन्ध मे बाते करते हैं, सभा से कथा कीर्तन के प्रसार का ही आग्रह करते हैं। ऐसे पुरुष नहीं, वे तो नर रूप-धारी हरि ही हैं।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी! भक्त और भगवान् के मिलने मे एक अपूर्व सुख होता है। अब उस सुख की उपमा किससे दूँ, यो समझिये कि पहिले ही पहिले जैसा सुख आपको श्री विदुरानीजी से मिलने मे हुआ होगा, उससे लाखो करोड़ो गुना सुख भक्त को भगवान् से मिलने मे होता है।"

यह सुनकर विदुरजी हँस पड़े और लजाते हुए बोले—'महाराज, आपने भी कैसी बेढंगी उपमा दे डाली।"

यह सुनकर मुस्कराते हुए मैत्रेय मुनि बोले—"अब विदुर जी! मैं क्या बताऊँ। संसार में और कोई इतनी सरस उपमा है ही नहीं। दो मन से मिले हुए हृदय जब संयोग-वश शरीर से मिलते हैं तो उस मिलन में एक अपूर्व सुख का प्रादुर्भाव होता है। महाराज पृथु भगवान् को पाकर अपने आपे को भूल गये। भगवान् भी अपनी भगवत्ता को विसार कर पृथ्वी के पुरुषों के समान भूमि पर खड़े हो गये। विदुर जी! आदान प्रदान से प्रेम चमक उठता है। जितना ही दोनों के बीच में संकोच होगा, उतनी ही प्रेम की न्यूनता समझनी चाहिये। भगवान् ने महाराज से कहा—तुम मुझ से वरदान माँगो। महाराज पृथु चुप हो गये, इसका कुछ उत्तर ही न दिया। माँगना तो अभाव में होता है, जो वस्तु हमारे पास नहीं होती, उसकी हम दूसरों से याचना करते हैं। पृथ्वीपति पृथु के समीप किसी वस्तु का अभाव ही नहीं था, वे भगवान् से माँगें भी तो क्या माँगें। वे कुछ माँगना नहीं चाहते थे, भगवान् देने पर तुले हुए थे। अतः वे बड़े मधुर स्वर में बोले—"राजन्! देखो, तुमने मेरी पूजा की, नाना उपहार मुझे अर्पण किये, तुम्हारी प्रीति के निमित्त मुझे किसी वस्तु की इच्छा न रहने पर भी वे सब उपहार मैंने स्वीकार कर लिये, अब तुम भी मेरी प्रसन्नता के निमित्त मुझ से कुछ वरदान माँग लो। जो भी तुम्हारी इच्छा हो, संकोच का काम नहीं। कोई भी इन्द्रलोक तथा परलोक सम्बन्धी वस्तु नहीं है जो मेरे पास न हो और जिसे मैं तुम्हारे माँगने पर दे न सकूँ। तुम्हें जो भी अभीष्ट हो उसे ही माँग लो, इससे मुझे देने में बड़ा सुख होगा। देना

लेना खाना खिलाना यही तो प्रेम प्रदर्शित करने के उपाय है।"

यह सुनकर महाराज पृथु सकोच के साथ वाले—"भगवन्! आप मुझ से वरदान माँगने को कह रहे है। यह मेरा सौभाग्य है, आप सभी वरदानियो मे श्रेष्ठ है। आपके लिये कुछ भी अदेय नही। आप अविनाशी, सत्यस्वरूप, अज, निर्गुण और अक्षर है। आप जिस पर अपनी करुणावश प्रसन्न हो जायँ और वह आप से इन नाशवान्, असत्य, क्षणभगुर सासारिक तुच्छ विषय भोगो को माँगे, तो उससे बढकर मूर्ख ससार मे और कौन होगा?"

भगवान् ने कहा—"नही! इस लोक के सुखो के लिये मै नही कहता, स्वर्गीय सुख माँगो, इन्द्रपद, ब्रह्मपद, शिवलोक, विष्णुलोक जिस लोक का भी आधिपत्य तुम चाहो माँगलो।"

इस पर पृथु बोले—"महाराज, यह तो सब एकही बात है। मिट्टी और सुवर्ण मे अन्तर क्या है? वह चमकीली मिट्टी है, मिट्टी मटमैली मिट्टी है। जैसा ही यह लोक वैसा ही स्वर्गलोक ब्रह्मलोक। यहाँ साधारण स्त्रियाँ है, वहाँ दिव्य अप्सराये है। ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी नाशवान् है सभी क्षयिष्णु है।"

इस पर भगवान् ने कहा—"तब फिर मोक्ष माँगलो भैया, जिससे सदा को आना जाना बद हो जाय।"

महाराज पृथु बोले—"उस राड रुड मुड मोक्ष को लेकर मैं क्या करूँगा। जिसमे आपके गुण श्रवण करने का सुअवसर प्राप्त न हो।"

भगवान् बोले—"तो भैया, और जो भी तुम्हे अच्छा लगे वही माँगलो। कुछ कहो भी तो।"

महाराज पृथु ने कहा—"अच्छा, महाराज! मैं मागता हूँ, फिर देना पडेगा, फिर टाल मटूल मत कर देना।"

भगवान् बोले—"यह भी कोई बात हुई। माँगते तो हो नहीं। माँगो, तुम जो भी माँगोगे वही मैं दूँगा।"

महाराज पृथु ने कहा—"प्रभो! मैं आपसे यही वरदान माँगता हूँ, कि आपके सुयश श्रवण करने के लिये मेरे दश हजार कान हो जायँ।"

यह सुनकर भगवान् बडे जोरोसे हँस पडे और बोले-"इतनी सी बात के लिये ही तबसे इतना सकोच कर रहे थे। यह क्या बडी बात है। मेरे यहाँ कानो की तो कमी है ही नही। योग माया को आज्ञा दे दूँगा, आपके सिर मे कान ही कान लगादे। कानो मे कान, आँखो मे कान, नाक मे नथुनो मे कान, कनपुटी पै कान, कपोलो मे कान, गले मे कान, कधो पै कान, बाहुओ मे कान, हृदय मे कान, पेट मे कान, पीठ मे कान, अगलो मे कान, बगलो मे कान, कटि मे कान जघाओ मे कान, उरुओ मे कान, पैरो मे कान। तुम्हारे शरीर भर मे कान ही कान लगवा दूँगा।

यह सुनकर हँसते हुए महाराज पृथु बोले—"तो प्रभो आप मुझे कुरूप बनाना चाहते है। लोग देखते ही कर्ण गिरि कहने लगेगे।

भगवान् बोले—"भाई, तुमने ही तो दस हजार कानो का वरदान माँगा है।"

महाराज पृथु बोले—"नही, भगवन्! मेरा तात्पर्य यह है कि सुनने को कान तो दो ही रहे, किन्तु उन दो मे ही इतनी शक्ति हो, कि दस हजार कोश पर भी आपके गुणानुवादो का गायन हो रहा हो, तो मैं यहाँ बैठे ही बैठे सुनता रहूँ। कोई क्षण ऐसा न व्यतीत हो, जिसमे आपके गुणानुवाद श्रवण करने को न मिलें।"

भगवान् ने कहा—"राजन् ! आप मेरे लीला गुण श्रवण के लिये इतने उत्सुक क्यो हैं ? स्वय ही आप पढ लिया करे।"

इस पर महाराज पृथु बोले—"महाराज, वस्तु तो एक ही है, वह पात्र भेद से अच्छी और बुरी हो जाती है। वर्षा का जल वही है, गङ्गाजी मे पडते ही पापो का नाश करने वाला गङ्गाजल हो जाता है, वही मोरी मे मल मूत्र के गड्ढे मे पडे तो अस्पृश्य हो जाता है, समुद्र मे पडते ही खारी हो जाता है। गाली एक ही है, उसी को कोई दूसरा दे तो क्रोध और रोष आता है, वही यदि ससुराल मे साली सरहजो के मुख से निकलती है तो हृदय मे सरसता का सचार करती है। भोजन उसी अन्न का बनता है उसी को रसोया बनाकर खिलावे तो दूसरा स्वाद है और यदि वही घर वाली के हाथ का बना हो और तिरछी चितवन के साथ परसा गया हो, तो वह अमृतोपम बन जाता है ! सो, महाराज आपके गुण तो वे ही है किन्तु महत् पुरुषो के मुखारविन्द से निसृत होने के कारण उनका रस और भी बढ जाता है, वह और भी अत्यधिक आकर्षक और कर्ण प्रिय बन जाता है। आपके चरणकमल मकरन्द के कमनीय कणो से युक्त जो तापत्रय नाशक पाप हारा पवन है, वह तत्व मार्ग से भ्रष्ट भूले भटकते पतित प्राणियो की योग भ्रष्ट अवस्था को पुन उज्जीवित करने वाला है। वे पुन परमार्थ पथके पथिक बन जाते हैं, जहाँ से भूले हैं, वहाँ फिर आ जाते हैं, अत मुझे तो आपके सुयश श्रवण के अतिरिक्त अन्य किसी भी अनुपम वर की आवश्यकता नही। आप मुझे सर्वदा अपनी कथा श्रवण की शक्ति प्रद न कीजिए। देखिये, लक्ष्मीजी तो धन की अधिष्ठातृदेवी ही हैं, यदि धन मे ही सुख होता तो वे आपके सुयश श्रवण के लिये सदा उत्सुक क्यो बनी रहती। उन्हे सदा आप

की कथा सुनने की ही चटपटो लगी रहती है, क्योंकि आपकी कथामे रस ही ऐसा है, कि जिसने साधु-समाज के मध्य मे, कथा मडप मे बैठकर श्रद्धा सहित एकबार भी आपकी कमनीय कथा सुन ली, भूल से भी भागवती कथा उसके कानो मे पड गई, तो फिर ऐसा कौन सहृदय, गुणज्ञ, रसज्ञ पुरुष होगा, कि फिर उन्हे छोड दे। आप मुझसे कथा का महत्व क्यो पूछते हैं। इन माता लक्ष्मीजी से पूछो इसमे क्या स्वारस्य है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! महाराज पृथु की ऐसी बात सुनकर भगवान् बडे प्रसन्न हुए और इसी प्रसग को ससार मे प्रकट करने को महाराज से इसी सम्बन्धमें और भी प्रश्नोत्तर करने लगे।"

छप्पय

सुयश सुधा मकरद धरम कमलनि तें निसृत।
साधु सग करि पान होहि सबरो जग विस्मृत॥
कमला जाके पान हेतु पगली सी डोलें।
सज्जन पीवे सतत दूसरी बात न बोलें॥
साश्रु नयन गद्गद गिरा, कहे परस्पर सतजन।
इहि बिधि हरि गुन श्रवन करि, अनत जाहि नहिं मोर मन॥

महाराज पृथु का पाद-सेवन सम्बंधी वर

(२७३)

भजन्त्यथ त्वामत एव साधवो,
व्युदस्तमाया गुणविभ्रमोदयम् ।
भवत्पदानुस्मरणादृते सताम्,
निमित्तमन्यद् भगवन्न विद्महे ॥*
(श्री भा०, ४ स्क०, २० अ० २९ श्लो०)

छप्पय

पद्मा प्रभु के पाद पद्म प्रतिपहर पलोटें ।
सन्त पुरुष ऊ सदा धूरि पग की महँ लोटें ॥
इच्छा मेरी जिहीं पलोटूँ तिनि पाइनि कूँ ।
करुणासागर ! कृष्ण ! कृतारथ करूँ करनिकूँ ॥
लक्ष्मी मोतें लड़िङ्गी, प्रभु तिनि कूँ समुझाइलें ।
जग माता कूँ घुड़कि के, सुत कूँ हिये लगाइलें ॥

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन इस प्रकार भक्ति के ९ अंग बताये हैं ।

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! महाराज पृथु कहते हैं 'हे भगवन् ! आप मायिक गुणों के कार्यों से रहित हैं, इसीलिए साधु पुरुष आपका भजन करते हैं । क्योंकि प्रभो ! संसार में आपके

वैसे तो इनमे से किसी भी एक का निष्ठा पूर्वक सेवन करने से परमपद की प्राप्ति हो सकती है, किन्तु इनमे श्रवण को प्रधान बताया गया है, जब तक भगवद्गुण-श्रवण मे अनुराग न होगा, तब तक भक्ति की उपलब्धि कठिन है, असभव है दुस्साध्य है। भगवद् गुणलीला श्रवण करते-करते कीर्तन और स्मरण स्वतः होने लगते हैं। जिस प्रकार श्रवणसे कीर्तन स्मरण की उपलब्धि होती है उसी प्रकार पाद-सेवन से आत्म समर्पण तक साधक पहुँचता है। पाद-सेवन का सौभाग्य सभी को प्राप्त नही हो सकता। जब तक पादपद्मो मे अनुराग न होगा, तब तक उनके सेवन मे सुख भी न होगा। ससार मे पैर तो प्राय. सभी पुरुषो के एक से हैं, किन्तु हमे उन्ही के पैर छूने मे पैरो की सेवा करने मे सुख का अनुभव होता है, जिनके प्रति हृदय मे भक्ति भाव हो। अत भक्त के लिये प्रधानतया दो ही साधन हैं भक्त और भगवान् के गुणो का श्रवण करे और उनके पादपद्मो की परिचर्य्या करे। इन दो साधनो से ही साध्यतत्व की उपलब्धि हो सकती है। पुरुष कृतार्थ हो सकता है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! जब महाराज पृथु ने भगवान् से उनके गुण श्रवण करने के लिये दश सहस्र कानो की शक्ति माँगी तब भगवान् ने उनसे कहा—"राजन् ! इतना ही या कुछ और भी चाहते हो ?"

महाराज बोले—"हाँ, भगवन् ! इतना ही बहुत है, एक और इच्छा थी, किन्तु वह तो लडाई झगड़े की बात है। आपको भी सकोच मे पडना पडेगा।"

चरण कमलों के स्मरण करने के अतिरिक्त सज्जन पुरुषो का कोई और प्रयोजन हम समझते ही नहीं।"

भगवान् शीघ्रता के साथ बोले—"नही, नही, नही। सकोच की कौन सी बात है। तुम माँग लो जो तुम्हे माँगना हो। मेरे समीप भक्तो के लिये कुछ भी अदेय नही है।"

इस पर पृथु महाराज बोले—"भगवन्! मैं देखता हूँ, ये लक्ष्मीजी अपनी सुडौल जघाओ पर रखकर आपके चरणारविन्दो को सदा अपने कोमल कर कमलो से पलोटती रहती हैं, इसलिये मुझे बडी उत्सुकता हो रही है, कि न जाने इन मृदुल मनोहर चरणो मे ऐसा कौन सा मादक आसव भरा हुआ है, कि जिनकी गध से ही जगत मे सबसे अधिक चचला आप पुराण पुरुष की ये प्रिय पत्नी सदा उन्ही मे लिपटी रहती हैं, कभी उन्हे छोड़ती ही नहो।"

भगवान् हँस पडे और बोले—'तो क्या तुम्हारी भी इच्छा है, कि लक्ष्मीजी की भाँति तुम भी सदा मेरे परो पर लोटा करो।"

पृथु महाराज सरलता के साथ बोले—'महाराज! इच्छा क्या है उत्सुकता है, कि इस रस का मैं भी आस्वादन करके देख लूँ। किन्तु मुझे भय इन जगज्जननी लक्ष्मीजी से ही है। एक वस्तु को जहाँ दो चाहने वाले हो जाते हैं, वहाँ सौतिया डाह लड़ाई झगडा निश्चित ही है, इसीलिये हम दोनो मे परस्पर कलह छिड जानेका भय है,इसीलिये कुछ हिचकता हूँ।"

भगवान् बोले—"अरे भाई, इसमे लडाई झगडे का क्या काम है? तुम दो जने हो, मेरे पैर भी दो हैं, एक एक बाँटलो। लडाई झगडे का अवसर ही न रहेगा।"

पृथु महाराज बोले—"तो भी महाराज! लडाई रुकेगी नहीं, अवश्य ही होगी।"

भगवान् बोले—"क्यो, फिर लडाई का क्या काम भाई,

जब तक बटवारा नही होता तभी तक लडाई है। बटवारा हो गया, अलग-अलग हो गये, तो झगडा समाप्त हो गया।"

महाराज पृथु बोले—"नही, महाराज बटवारा कहाँ हुआ आपने मुझे दायाँ पैर सेवा के लिये दिया, लक्ष्मीजी बायें की सेवा करने लगी। मैं तो बच्चा ही ठहरा, मेरी इच्छा हुई, देखूं बाय पैर की सेवा मे क्या स्वाद है, लक्ष्मीजी ने नही माना, तो फिर हम दोनो मे झगडा होगा ही।

भगवान् बोले—"भैया झगडा टटा ठीक नही। आपस में राजी-नामा कर लेना।"

इस पर पृथु अपनेपन के स्वर मे बोले—"महाराज, राजी-नामा तो असभव है, झगडा टटा अवश्य होगा, किन्तु उसकी मुझे चिंता नही। क्योकि मेरा पक्ष प्रबल है।"

भगवान् बोले—"क्यो भाई, तुम्हारा पक्ष प्रबल कैसे है? शीघ्रता के साथ पृथु बोले—"इसलिये महाराज, कि न्यायाधीश मेरे अनुकूल है, वह मेरे पक्ष मे ही निणय देगा। वह मेरे साथ पक्षपात करेगा। लक्ष्मीजी की और मेरी बराबरी ही क्या है। वे तो जगज्जननी जगदीश्वरी ही ठहरी। उनके समान धन सम्पत्ति ऐश्वर्यशाली ससार मे कौन है। वे सबसे बडो हैं, मैं सबसे छोटा हूँ। वे अपने बडप्पन के अभिमान मे मुझे डाटेंगी डुपटगी तो मैं आपकी शरण मे आजाऊँगा।"

भगवान् हँस पडे और कुछ विनोद के स्वर मे बोले—"तो तुम्हे यह कैसे निश्चय है कि मैं अपनी प्यारी घर वाली को छोडकर तुम्हारा पक्ष लूँगा।"

यह सुनकर महाराज पृथु दृढता के स्वर मे बोले—'महाराज, मैं क्या इसे तो सम्पूण ससार जानता है, कि आप अभिमानी धनिको की अपेक्षा निर्धन दीनो पर अधिक स्नेह करते

हैं। इसीलिये ससार मे आपके दीनानाथ, अशरण शरण, दीन-बन्धु अकिंचन प्रिय आदि नाम प्रसिद्ध हैं। अकिंचन दीन भक्तो के सम्मुख आप मानिनी लक्ष्मीजी का आदर नही करते। अत मुझे विश्वास है हम दोनो के झगडे मे आप मेरा ही पक्ष लेंगे। मुझे ही बालक समझकर जिता देंगे।'

यह सुनकर भगवान् हँस पडे और बोले—' अरे यह तुमने वरदान क्या मांगा, हमारे घर मे कलह का बीज बो दिया। भैया, कोई और वस्तुएँ मांगो। पाद सेवन तो तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। उसके लिये मांगना क्या ? अपनी वस्तु मागी थोडे ही जाती है।

पृथु बोले-' तब महाराज,अब मांगने को शेष रहा ही क्या ? जब मैं आपका हूँ और सबके स्वामी आप हैं तो पिता की वस्तु तो पुत्र की होती ही है। कोई ससार मे ऐसी वस्तु नही जिसके स्वामी आप न हो। तब सभी वस्तुएँ मेरी ही हैं। यह जो आप वरदान मांगो वरदान मांगो बार-बार कह रहे है यह मैं आपकी जगत का मोहित करने वाली वाणी ही मानता हूँ। इसी के प्रलोभन मे फँसकर तो जीव वेद-वाणी रूपी रस्सी मे बँध कर नाना कर्मों को कर रहे है और कर्मों के कारण ही उन्हे आवागमन जन्म मरणके चक्रमे फँसना पडता है। बार बार पैदा होकर बार बार मृत्यु के मुख मे घुसना पडता है। कैसी आपकी जाल मे फँसा देने वाली माया है, जीव आत्मस्वरूप आपको भूल कर यह मेरा घर है यह मेरा कुटुम्ब है यह मेरी स्त्री है ये मेरे बच्चे है ये दूसरे के हैं मेरा इनसे कोई सम्बन्ध नही इसी मैं मेरी तू मरी मे फँसा हुआ है। अब महाराज! मैं क्या वरदान मांगू । अबोध पुत्र पिता से कुछ भी नही मांगता तो भी यह ला, वह ला, यह दे, वह दे, सदा इसी म लगा रहता है, सदा

उसके हित की ही चिन्ता करता रहता है। इसलिये मेरा जिसमे कल्याण हो, जिस वर से मेरा भला हो, उसे आप पिता के नाते स्वय ही सोच समझ कर दे दें।"

यह सुनते ही भगवान् खिल खिलाकर हँस पडे और बोले—"अरे भैया! हम तो समझते थे कि भक्त बावरे होते हैं। किन्तु तुमने तो न मांगने पर भी सब कुछ मांग लिया। अच्छी बात है। तुम्हारी मुझ मे सदा अनपायिनी अव्यभिचारिणी भक्ति बनी रहेगी। यह तो बडे ही सौभाग्य की बात है कि तुम्हारी मुझ मे निष्काम दृढ भक्ति है। कुछ भी न चाहने वाले भक्त विरले होते हैं, वे ही मेरी दुस्तर माया को जिसका पार करना ब्रह्मादिक देवताओ को भी दुर्लभ है उसे बात की बात मे पार कर जाते हैं। मैंने जो तुम्हें प्रजा पालन रूप धर्म सिखाया है, निष्काम भाव से स्वधर्म पालन रूप कर्तव्य बताया है उसे मेरी सेवा समझ कर करते रहना। तुम्हारा सर्वत्र कल्याण होगा। तुम सर्वदा सुखी होगे। जो मेरी आज्ञाओ का पालन करता है उसके सम्मुख सभी सिद्धियाँ हाथ जोडे खडी रहती हैं। उसका सर्वत्र मगल होता है। वह परम पद को सुगमता के साथ प्राप्त कर लेता है।

महामुनि मैत्रेय कहते है—"विदुरजी, इस प्रकार महाराज पृथु ने एक कम १०० यज्ञ करके यज्ञ मे स्नान किया। यज्ञ मे आये देवता, ऋषि, पितृगण, गन्धर्व, सिद्ध चारण, नाग, किन्नर अप्सरा, मनुष्य, पशु, पक्षी, सभी का यथोचित यथायोग्य स्वागत सत्कार किया। ये सब लोग महाराजसे पूजित तथा सत्कृत होकर अपने-अपने धामो को चले गये। भगवान् भी देखते ही देखते वही के वही अन्तर्धान हो गये। यज्ञ के उपाध्यायो सहित महाराज पृथु स्वप्न के अनन्तर खुले नेत्रो के समान भौचक्के से हुए देखते ही रह गये। उन्होने उस दिशा को प्रणाम किया जिधर

भगवान् अन्तर्धान हुए थे। फिर सब यज्ञीय कार्यों से निवृत्त होकर उन्होंने अपने नगर को प्रस्थान करने का विचार किया।

छप्पय

निज विषयनि कूँ छोडि भूमिपति वन कूँ भागे।
तिनकूँ तुमरे दास भला क्यों तुमते मागे॥
जगदीश्वर तुम जनक तनय हम नाथ तिहारे।
तो फिरि जग के भोग आपुई भये हमारे॥
हौं वर मागूँ जिही प्रभु! तव पद पद्मनि प्रीति हो।
सत्संगति हरि कथा रुचि, जग भोगनि तैं भीति हो॥

यज्ञों के अन्त में महाराज पृथु का पुर प्रवेश

(२७४)

शङ्खदुन्दुभिघोषेण ब्रह्मघोषेण चर्त्विजाम् ।
विवेश भवनं वीरः स्तूयमानो गतस्मयः ॥
पूजितः पूजयामास तत्र तत्र महायशाः ।
पौराञ्जानपदांस्तांस्तान्प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥*

(श्री भा० ४ स्क० २१ अ० ५, ६ श्लो०)

छप्पय

पृथु कूँ सब वर दये, भये अन्तर्हित श्रीपति ।
करि सबको सम्मान, चले पुर कूँ पृथिवी पति ॥
सुनत आगमन प्रजा, गई लवे कूँ आगे ।
वीणा वेणु मृदग वाद्य बहु बाजन लागे ॥
ध्वजा पताका तें सजे, नगर माहि आये नृपति ।
निज पति लखि चिर काल महँ, भये मुदित नर नारि अति ॥

वियोग जीवन मे एक नूतनता का प्रवेश करता है। नित्य मिलने से स्नेह बँटता रहता है, किन्तु वियोग मे वह जम ही

*मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! यज्ञो से निवृत्त होकर अभिमानशून्य शूरवीरो मे श्रेष्ठ महाराज पृथु ने ब्राह्मणो के वेद-ध्वनि तथा दुन्दुभि के घोष तथा वन्दियो की स्तुतियो को सुनते-सुनते

जाता है और फिर सयोग की सभावना होते ही फिर उमड पडता है। तभी तो जिसकी जितनी ही अधिक उत्कठा से प्रतीक्षा की जाती है, उसके मिलने मे उतना ही अधिक आनन्द आता है। हमारा हृदय अधीर हो उठता है, इसीलिये हृदय के प्रेम को व्यक्त करने के लिये अपने मन से वाणी से तथा कर्मों से उसे स्वागत सत्कार करके व्यक्त करते हैं।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजो ! महाराज पृथु यज्ञ के समस्त कार्यों से निवृत्त हो गये। अब उन्होने अपने पुर मे प्रवेश करने का विचार किया। महाराज ने एक ही स्थान पर रहकर एक के पश्चात् एक इस प्रकार ६६ यज्ञ किये थे। यज्ञ मे दीक्षा लेने के कारण नियमित भू प्रदेश को परित्याग करके अन्यत्र नियमानुसार जा नही सकते थे। अत वे जब से नगर से आये थे तब से अब तक एक दिन भी अपनी राजधानी मे नही गये थे। अब यह प्रथम ही अवसर था। इस सवाद को सुनते ही नगर-निवासियो और देशवासियो मे आनन्द छागया। महाराज जहाँ जहाँ होकर जायँगे, वहाँ वहाँ स्वागत सत्कार की तैयारियाँ होने लगी। आस पास की प्रजा एकत्र होकर मार्ग के दोनो ओर खडी हो गई। झाड बुहार कर पथ परिष्कृत किया गया, उसमे सुगन्धित जल का छिडकाव किया गया। स्थान स्थान पर फाटक बनाये गये, जिनमे मोटे-मोटे अक्षरो मे भगवान् वासुदेव के सुयश सम्बन्धी वाक्य लिखे थे। महाराज की जय और आशीर्वाद सूचक शब्द थे। उस सजे सजाये पथ से महाराज

अपने राजभवन मे प्रवेश किया। मार्ग मे सर्वत्र पुरवासियो और देशवासियो ने उनका पूजन सत्कार किया। महाराज ने भी प्रसन्नता पूर्वक उन्हें इच्छित वर दिये।"

की सवारी नगर की ओर चली। मार्ग में समस्त प्रजा के चारों वर्ण के नर नारी अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार यथोचित महाराज का स्वागत सम्मान करते। उन्हें भाँति-भाँति के उपायन भेंट करते। महाराज भी उन्हें स्वीकार करते हुए सब यथोचित सम्मान अभिवादन आदि करते सबसे कुशल पूछते। इस प्रकार सबसे सत्कृत होते हुए महाराज अपनी राजधानी के निकट पहुँचे। पुरवासियों ने आज राजधानी को भली भाँति सजाया था मोतियों की लड़ियों से; सुरभियुक्त सुन्दर सुमनोंके गजराओं से; रङ्ग विरङ्गे रेशमी सूती आदि वस्त्रों से, सुवर्ण के सुहावने तोरणों से सड़क सजाई गई थी। विस्तृत राजपथ, साधारणपथ, गलियाँ, वीथियाँ, सभी सुन्दर सुगंधित सलिल से स्वच्छ की गईं थीं। उनमें स्थान-स्थान पर अगरु जलाया गया था। स्थान-स्थान पर स्वागत सम्बन्धी जल कलश, पुष्प, अक्षत, फल, जवांकुर, दीपक आदि मंगल द्रव्य रखे थे। कदलीस्तम्भ, आम्रपल्लव, तथा और भी फल वाले शुभ वृक्ष इधर उधर लगाये गये थे। सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हुई कुमारी कन्यायें खील बताशे पुष्प-मालायें,दूर्वा तथा अंकुर आदि लिये खड़ी थीं। वेदज्ञब्राह्मण ब्रह्मघोष कर रहे थे, वंदीजन वंश की विरुदावली गा रहे थे, विविध भाँति के वीणा वेणु आदि वाद्य बज रहे थे। इस प्रकार बड़े ठाट वाट और स्वागत सत्कार के सहित महाराज ने अपने सजे सजाये मणिमय दिव्य राजभवन में प्रवेश किया। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, कि भवन की प्रत्येक दीवाल सजीव होकर अपने स्वामी का सत्कार कर रही है। निर्जीव भवन से दिखाई देने लगे। अतुलनीय सम्पत्तिशाली वह राजभवन और भी श्रीयुक्त हो गया, सर्वत्र उसमें एक प्रकार की अपूर्व आभा सी छा गई, एक विचित्र कान्ति सी

छिटकने लगी। अन्त पुर की दास दासियो और महारानिया ने महाराज के प्रति आदर प्रदर्शित किया, उनके चरणो म श्रद्धा-ञ्जलि समर्पित की।

महामुनि मैत्रेय कहते हैं—"विदुरजी! इस प्रकार आदि राजा महाराज पृथु बडे ही सुख से जिस प्रकार इन्द्र देवताओ तथा ऋषियो से घिरे हुए अमरावती मे निवास करते हैं उसी प्रकार मत्री, अमात्य, पुरोहित तथा वेदज्ञ ब्राह्मणो से घिरे हुए बड़े आनन्द के साथ अपनी राजधानी मे आनन्द विहार करते हुए सुख से रहने लगे।

इस बात को सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए विदुरजी आगे का प्रसग चालू रखने के लिये कहने लगे—"भगवन्! आपने आदि राजा भगवान् पृथु का बडा ही सुन्दर चरित्र सुनाया। उनके पराक्रम के सम्बन्ध मे कुछ कहना मानो सूर्य को दीपक दिखाना है। जिन्होने अपने बाहुबल से इस मेदिनी को पृथ्वी बना लिया, सभी को उसके अनुरूप दुह कर अन्न प्रदान किया, भविष्य के राजाओ के लिए शासन का पथ परिष्कृत किया, राज काज की एक मनोहर मर्यादा स्थापित की उनके यदि आप उचित समझें तो मुझे और भी पावन चरित सुनाइये, उनके सम्बन्ध मे और भी कुछ बताइये, उनके गुणो का और भी माधुर्य्य चखाइये, पृथु कीर्ति सुनाकर इन कर्ण कुहरो को सायक बनाइये। भगवन्! पृथु चरित्र सुनते-सुनते मेरी तृप्ति नही हो रही है।

इस पर भगवान् मैत्रेय बोले—'विदुरजी! क्यो न हो, आप तो सज्जन प्राणी हो! सज्जन पुरुषो को भागवती कथाओ के श्रवण म उसी प्रकार रस आता है, जिस प्रकार बच्चो को मीठे आम चूसने मे रस आता है। महाराज पृथु के चरित्र का

अन्त नही। वे स्वय अनन्तावतार हैं, अतः उनके चरित्र भी अनन्त हैं।

महाराज पृथु की राजधानी गगा यमुना के मध्य मे ब्रह्मर्षियो से सेवित इस ब्रह्मावर्त देश मे थी। वैसे तो वे समस्त सप्तद्वीपवती पृथिवी के एकमात्र शासक थे। अच्युत गोत्रीय वैष्णवो और ब्राह्मणों को छोड़ कर सभी पर उनका राज शासन चलता था। सभी के वे स्वामी थे। उनका शरीर सुन्दर सुडौल और शोभायुक्त था। वे देखने मे बड़े ही मनोहर लगते थे। शरीर उनका ऊँचा था। बाहुएँ मोटी गोली और जानु पर्यन्त लटकने वाली थी। गौरवर्ण, विशाल विकसित नेत्र; शुक के समान सुघड नासिका, उन्नत, भरे हुए सिंह के समान कधे। मन्मथ के समान सुन्दर-सलौना शोभायुक्त मुखारविन्द, दाडिम के दोनो के सदृश स्वच्छ, मोतियों के समान चमकीली उनकी दन्तावली थी। ग्रीवा शख के समान सुन्दर और उतार चढाव की थी। केश बहुत लम्बे तो नही थे, किन्तु काले-काले घुंघराले, अत्यन्त स्निग्ध, कोमल और चमकीले थे। छाती विशाल थी, नाभि गम्भीर गगाजी के वर्षा कालीन आवर्तों के समान थी, उदर त्रिवली से युक्त, कटि प्रदेश स्थूल, मासल और भारी था। जघन सुडौल, सुवर्ण के समान देदीप्यमान और पैरों के पजे उन्नत तथा चढाव उतार के थे। उनके चरण-कमलो की उँगलियो के नखों की द्युति से पृथिवी चमकने लगती थी। ऐसे सौदर्य मे, सद्गुणो मे, धर्म कर्म मे अद्वितीय राजा को पाकर प्रजा अत्यन्त ही प्रसन्न रहती, वह अपने भाग्य की सराहना करती।

महाराज वेन के समय मे सर्वत्र नास्तिकता का बोल-बाला था। जो नास्तिको की तरह शुष्क तर्क करें, खडन मडन करके

नास्तिकता का प्रचार करें ऐसे ही नास्तिकतार्किको को तब पडित माना जाता था, उन्ही का राज सभा मे सम्मान होता था। विदुरजी! ससार मे कुछ अक्षर ज्ञान वाले वाक्पटु ऐसे गगा यमुनी लोग होते हैं, कि जिनका कोई धर्म कर्म निश्चित सिद्धात नही होता। गगा गये तो गगादास, यमुना गये तो यमुनादास। येन केन प्रकारेण अपना स्वार्थ साधना चाहिए। जिधर की लहर देखी उधरही बहने लगे। जिधर का पक्ष भारी देखा उधर ही गुन गाने लगे। ऐसे नास्तिका का अभी तक मूलोच्छेदन नही हुआ था। प्रजा मे अभी तक नास्तिकता के भाव कुछ कुछ भरे ही थे। इसीलिये महाराज ने एक बडा भारी सत्र कराया जिसमे यज्ञ याग कथा कीर्तन हो। देश देशके लोग आवे,सब अपने-अपने भावोको व्यक्त करे। देश देशान्तरो के सभी वर्णों के लोग बुलाये गये। ऋषि मुनियो को भी आमन्त्रित किया गया। इस प्रकार एक बड़ा भारी समाज एकत्रित हुआ। महाराज ने उस महासत्र की दीक्षा स्वय ली। यज्ञ हुए, ब्राह्मणो के उपदेश हुए। कथावार्ता आदि सभी प्रकार के धार्मिक समारोह हुए।

यज्ञ के अन्त मे महाराज पृथु ने स्वय उठकर एक बडा प्रभावशाली भाषण दिया। जिस समय वे भाषण देने के निमित्त मच के समीप आकर खडे हुए उस समय की उनकी शोभा दर्शनीय थी। वे सीधे खडे थे, मुख पर मन्द-मन्द मुस्कान छिटक रही थी, उनके नेत्रो के तारे बडे शात गम्भीर और चमकीले थे, सब की ओर स्नेह भरी दृष्टि से देख रहे थे। वे यज्ञ की दीक्षा मे थे, इसलिये एक अधो वस्त्र एक उत्तराय वस्त्र ये दो ही अति सूक्ष्म पीले रेशमी वस्त्र पहिने थे। दीक्षित होने के कारण आभूपणो को उतार दिया था। एक कृष्ण मृगचर्म ओढे थे, हाथ मे कुशा का बना हुआ मूठा (ब्रह्म दण्ड) लिये हुए थे। उस

समय उनमें क्षात्र और ब्राह्म दोनो ही तेज स्पष्ट झलक रहे थे। जिस समय वे भाषण करने खडे हुए, चारो ओर से पुष्पो की वृष्टि होने लगी। समुपस्थित सभी जनता शान्त हो गई। सर्वत्र निस्तब्धता छा गई। तब उन्होने अपना भाषण आरम्भ किया। उनका भाषण अत्यन्त मनोहर था, विषय वर्णनकी शैली चित्ताकर्षक थी, शब्दावली चित्र विचित्र पदो से सयुक्त थी। वाणी अत्यन्त गम्भीर, सुन्दर, सारयुक्त, अति मधुर और ओजस्विनी थी। उनका भाषण क्या था मानो अपने सम्पूर्ण अनुभव को मथकर उसका मक्खन निकाल कर जनता के सम्मुख रख दिया हो।"

शौनकजी ने कहा—सूतजी! आप जिस बात का वर्णन करते है, ऐसा करते है, कि श्रोता की उत्सुकता अत्यधिक बढा देते हैं। महाराज पृथु के भाषण की इतनी अधिक प्रशसा तो करदी, किन्तु अभी तक भाषण का एक शब्द भी नही सुनाया। कुछ सुनाइये भी तो क्या भाषण किया, कौन सी बात कही। महाराज पृथु का भाषण श्रवण करने की हमारी बडी उत्कण्ठा हो रही है।

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाभाग! वह भाषण तो है बडा। उसे यहाँ कथा-प्रसङ्ग मे सुनाऊँगा, तो कथा-प्रसङ्ग रुक जायगा।"

इस पर शौनकजी बोले—"अजी, सूतजी! आप प्रत्येक प्रसङ्ग पर ऐसी ही बात कह देते हैं। ऐसा क्या प्रसङ्ग रुकेगा। बहुत विस्तार न कीजिये, सक्षेप मे ही सुना दीजिये इस भाषण को सुनने की तो सूतजी! हमारी बडी इच्छा है। इसके लिये आप टाल-मटोल न करें। इसे आप अवश्य सुनावे।"

सूतजी सरलता के साथ वोले—"महाराज! जैसी आज्ञा। मैं तो सुनाने को तैयार ही हूँ, किन्तु कैसा भी सक्षेप करूँ, विषय कुछ वढ तो जायगा ही। फिर भी मैं सार रूप से ही सुनाऊँगा। आप सब सावधानो के साथ समाहित चित्त से श्रवण करने की कृपा करें।

छप्पय

प्रविशे पुर पृथु करें, प्रजा सवको यो पालन।
ज्यो माता पितु करें, नेह तें सुत को लालन॥
महा सत्र इक रच्यो धर्म की वृद्धि करन कूँ।
फले नास्तिक भाव धराते तिन्हे हरन कूँ॥
देश देश त सभ्यगन, आये जुरयो समाज वर।
तिनके सम्मुख कहन कछु, उठे भूप ज्यो दिवाकर॥

महाराज पृथु का महासत्र में अभिभाषण

(२७५)

सभ्याः शृणुत भद्रं वः साधवो य इहागताः ।
सत्सु जिज्ञासुभिर्धर्ममावेद्यं स्वमनीपितम् ॥*

(श्रीभाग० ४ स्क० २१ अ०२१ श्लो०

छप्पय

अति सुन्दर अति मधुर भ्रान्ति तें रहित वचन वर ।
बोले सबहिं सुनाइ धर्म सम्मत अति हितकर ॥
सुनो शास्त्र को सार सत-मुख सुनी सुनाऊँ ।
सेवा सोपी सबनि पुरुष कर्तव्य बताऊँ ॥
वेद विहित सब यज्ञ तप, दान धर्म मिलि करहु अब ।
पितर अतिथि गुरुदेव द्विज, पूजा सबकी करहु सब ॥

एक कहावत है, गाना रोना कौन नहीं जानता ।" यह ठीक है, सभी कुछ न कुछ गुन गुनाते हुए गा लेते हैं, सभी आँसू

---

*महामुनि मैत्रेय कहते हैं—"विदुरजी ! जब महाराज पृथु अपने महासत्र में व्याख्यान देने खड़े हुए तो सबको सम्बोधन करके उन्होंने कहा—"हे सभ्यगण, हे दूर दूर से पधारे हुए महात्माओ ! आप सबका कल्याण हो। आप मेरी बात को श्रवण करें, क्यों कि धर्म के जिज्ञासुओं को साधु पुरुषों की सन्निधि में अपने मनोगत भावों को निवेदन कर देना चाहिये।"

वहाकर रो लेते हैं। किंतु जैसे चाहिये वैसे कलापूर्ण गाने रोने वाले पुरुष कम होते हैं। इसी प्रकार बोलकर या सकेत आदि से अपने भावो को दूसरो पर सभी व्यक्त करते है, किन्तु सभा मे भाषण देना, समाज मे सबके सम्मुख अपने भावो को कुशलता-पूर्वक समझाना, सबके हृदयो को अपने भाषण से प्रभावान्वित कर देना, यह किसी विरले का ही कार्य है। वक्तृत्व शक्ति भी एक कला है। वैसे तो यह शक्ति जन्म से ही किसी-किसी मे होती है, किन्तु अभ्यास से यह वढाई जा सकती है।

व्याख्यान देने वाले को सबसे पहिले तो दृढता की आवश्यकता है। जो दृढ नही बात-बात पर विचलित हो जाता है वह सम्माननीय वक्ता नहीं समझा जाता। जिस विषय पर बोलना हो, उसका पहिले विचार कर लें। पहिले उपस्थित सज्जनों को सम्बोधन करने के अनन्तर अपनी हीनता दिखाते हुए विषय की गम्भीरता का दिग्दर्शन करावे। फिर सक्षेप मे अपने विषय को जनता के सम्मुख उपस्थित करे। दूसरे लोगो का इस विषय मे क्या मत है, उसमे पहिले विपक्षियो की युक्तियो को बतावे कि कुछ लोग इस विषय मे ये ये दोष बताते है इस पर पहिले पूर्व-पक्ष की स्थापना करे। जब पूर्व पक्ष को दृढता के साथ बतादे, तब क्रम-क्रम से उन विपक्षियो के मत मे दोष दिखावे। बडे मधुर और सौम्य शब्दो मे उनकी युक्तियो का खण्डन करे, अपने पक्ष की पुष्टि मे शास्त्रो का आप्त पुरुषो का प्रमाण देता जाय। बीच-बीच मे सुन्दर दृष्टान्त उपाख्यान भी प्रसगानुसार कह दे। बहुत जोर से भी न बोले, बहुत धीरे-धीरे न बोले, बोलते समय इन बातो पर विशेष ध्यान रक्खे।

१—अपने विषय को छोडकर विषयान्तर न करे।

२—जनता भाषण से ऊबती दिखाई दे तो कोई चुटकुला मनोरंजक उपाख्यान कह दे।

३—विषय को बहुत बढावे नही जिससे लोग ऊबने न लगें। बहुत सक्षेप भी न करे कि विषय भली भाँति लोगो की समझ मे ही न आवे।

४—भाषण करते समय मुह को न बनावे, आँखो को मिचमिचाना भौंहो को चढाना, गालो को पिचका देना, सैन चलाना, मुह मटकाना ये भाषण के दोष हैं। इनसे जनता पर बुरा प्रभाव पडता है।

५—भाषण मे किसी पर व्यक्तिगत नाम लेकर आक्षेप न करे। यदि कहना आवश्यक ही हो तो सौम्यता के साथ मधुर शब्दो मे शिष्टाचार की रक्षा करते हुए कहे।

६—व्याख्यान देते समय भय न करे, निर्भय होकर भाषण दे। यही अनुभव करे ये सब बच्चे बठे हैं, मैं इन्हे समझा रहा हूँ। किन्तु इस भाव की गध भाषण मे व्यक्त न होने पावे।

७—व्याख्यान देते समय किसी एक व्यक्ति को अपना लक्ष्य बनाले जो अपने भाषण को अत्यन्त ध्यान से सुन रहा हो। इधर उधर दृष्टि घुमाकर बार बार उसे ही देखकर उसी की चेष्टाओ का अध्ययन करते हुए उसे ही समझावे।

८—जैसे रस का वर्णन करना हो वैसे ही भाव, वैसे ही सकेत प्रदर्शित करे।

९—कोई हँसी की बात हो तो पहिले से स्वय ही न हँसने लगे, जब सब जनता हस पडे तो पीछे से स्वय भी मुस्करा दे।

१०—करुणा के प्रसङ्ग पर हृदय मे स्वय करुणा को उत्पन्न

करे, जिससे नेत्रादिका मे स्वय करुणा के भाव स्पष्ट दिखाई देने लगें।

इन बातो को ध्यान मे रखकर जो भाषण करता है वह सुवक्ता कहाता है जनता मे उसका आदर होता है और उसके द्वारा अनेका जीवो का उपकार हाता हे, किन्तु बनावट से दूर रहे जो कहे स्वय भी भरसक उसक पालन की चेष्टा करे। बनावटी बाता का स्थाई प्रभाव नही होता।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी! महाराज पृथु भाषण करने वालो मे सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। एक तो वे चक्रवर्ती राजा थे, धर्मात्मा थे, सुन्दर स्वरूपवान थे, प्रजा के हितैषी थे, भगवान् के अशावतार थे, अत उनके भाषण का जनता पर बडा प्रभाव पडता था।"

इस पर विदुरजी ने कहा—"भगवन्! उस महासत्र मे जो महाराज पृथु ने भाषण दिया उसे आप कृपा करके मुझे सुनाइए

यह सुनकर मैत्रेय मुनि बोले—'विदुरजी! सुनिये। मैं महाराज पृथु के भाषण का साराश सुनाता हूँ। महाराज पृथु खडे हुए। उन्होने ऋषि मुनियो को अभिवादन किया और फिर शनै शनै अपना भाषण आरभ किया। वे बोले—

"समुपस्थित साधु सन्तो और सभ्य महानुभावो। आप सब महानुभाव इतना कष्ट करके यहाँ पधारे है, यह आपने मेरे ऊपर बडी कृपा की। मुझे अपने दर्शनो से कृतार्थ किया। भगवान् आपका भला करें। मगलमय श्री हरि आप सब पर कृपा की दृष्टि करे। सभ्यगण! मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ, उसे आप ध्यानपूर्वक श्रवण करे। मैं आप सब को शिक्षा देना नही चाहता। शिक्षा देने की मुझमे योग्यता भी नही, मेरा अधिकार भी नही। शिक्षा तो आपको ये ब्रह्मज्ञानी ऋषि मुनि

सन्त महात्मा ही दे सकते हैं । मैं तो अपने मनोगत भावो को आपके सम्मुख निवेदन भर कर देना चाहता हूँ, क्योकि साधु पुरुषो की सन्निाध मे जिज्ञासु पुरुषो के सम्मुख अपने मनोगत भावो को व्यक्त कर देने से श्रोता वक्ता दोनो का ही कल्याण होता है। यदि वक्ता के कथन मे कुछ त्रुटि देखगे तो साधु पुरुष उसका सशाधन कर देगे उसे सुधार देंगे । यदि वह बात वक्ताओ के हित की हुई, तो पुष्टि कर देंगे ।

मैं अपने मे इतनी योग्यता नही देखता, कि स्वत इतनी बडी वसुन्धरा का धर्मपूर्वक पालन कर सकूँ । किन्तु स्नेह वश या मेरे पूर्वजा के पुण्यवश, ऋषि मुनियो ने मिलकर मुझे राजा वना दिया है । जब उन त्रिकालज्ञ ऋषियो ने मुझे इस अधिकारपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित कर ही दिया है, तो मेरा उत्तरदायित्व वहुत वडा हो जाता है। इस पद पर वठने से मेरे प्रधान चार कर्तव्य हो जाते हैं । सबसे पहिला कर्तव्य तो मेरा यह हो जाता है, कि मैं उन दुष्टो को दड दू जो धर्म की मर्यादा का परित्याग करके अधर्म का आचरण करते हैं । जो भी नियमो के पालन मे शिथिलता करे, वह फिर चाहे अपना सगा पुत्र ही क्यो न हो, सबको समान रूप से दण्ड देना । यह राजा का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है ।

दूसरा कर्तव्य राजा का यह है, कि प्रजा की सभी ईतिभीति से रक्षा करना । अपनी प्रजा के मार्ग मे जो भी कष्ट उपस्थित हो, उसे हटाना । कैसा भी दुख प्रजा मे हो उसे दूर करना ।

तीसरा कर्तव्य राजा का यह है, कि सबकी आजीविका का प्रबन्ध करना। यदि किसी राजा क राज्य मे एक पुरुष भी भूखा या अधपेट सो जाता है, तो वह राजा का पाप है, शासन का

दोष है। राजा को चाहिये कि सबके भोजन का प्रबन्ध करे, सबकी आजीविका की चिन्ता रखे।

चौथा कर्तव्य यह है कि सबकी योग्यता देखकर सबको पृथक् पृथक् कार्यों में नियुक्त करके धर्म की मर्यादा को स्थिर बनाये रखे। यदि मैं इन चारों कर्तव्यों को धर्म बुद्धि से, प्रभु सेवा समझकर पालन कर सका, तो समझो मैंने प्रभुकी प्रसन्नता प्राप्त कर ली। जिस पर प्रभु प्रसन्न हो गये, उसके लिये और कर्तव्य शेष ही क्या रहा। उसे उन पुण्यप्रद अक्षय लोकों की प्राप्ति होती है, जिनका पुण्य कल्पान्त में भी नष्ट नहीं हो सकता। यदि मैं धर्मपूर्वक परलोक का ध्यान रखते हुए आप सबका पालन करूँगा, तो महर्षियों के कथित वे सब लोक मुझे स्वतः ही प्राप्त हो जायँगे।

राजा दो प्रकार के होते हैं,एक तो धर्मात्मा दूसरे अधर्मात्मा। धर्मात्माओं की गति तो मैंने आप से वर्णन कर ही दी। अब जो अधर्मात्मा हैं, प्रजा से राजकर के रूप में षष्ठांश तो ग्रहण करते हैं, किन्तु प्रजा का पालन धर्मपूर्वक नही करते, उनके रक्षाकार्यों में प्रमाद करते हैं, ऐसे राजा को प्रजा पापाचरण में प्रवृत्त हो जाती है, सर्वत्र पाप होने लगता है, यह पाप वृद्धि राजा को शिथिलता के ही कारण उसके विषयासक्त होने के कारण ही होती है, अतः उन सबके पाप का भागी राजा ही होता है, उसका परलोक नष्ट हो जाता है और इहलोक के ऐश्वर्य से भी वह भ्रष्ट हो जाता है।

महानुभावो! यह मैंने आपको धर्माचरण और अधर्माचरण करने वाले राजाओं को गति बताई। अब आप सब लोग मेरे ऊपर कृपा करें, मुझे पाप से बचावें। आप सब धर्माचरण करें, श्रद्धा भक्ति से प्रभु की आराधना करें, नास्तिक भावों को त्याग

दे, शुष्कतर्कों को स्थान न दें। मैं जैसा भी कुछ हूँ आपका ही चुना हुआ राजा हूँ, आपका ही बनाया हुआ शासक और स्वामी हूँ. आप लोग मेरे दोषो की ओर न देखते हुए मेरा परलोक सुधारने के निमित्त सदा सर्वदा भगवत्‌चिन्तन करते रहे। आप कह सकते है, कि हम यदि भगवत्‌चिन्तन करेंगे, तो अपने लिए करेगे, इसमे आपके ऊपर क्या कृपा हुई। सो महानुभावो! इसमे आपका तो कल्याण होगा ही मेरा भी हित है। यह तो मैं पहिले ही बता चुका हूँ, कि प्रजा के पुण्य पाप मे राजा का भी भाग होता है। आप धर्माचरण करेंगे, तो उसमें से मुझे स्वतः ही मिल जायगा, आपकी कृपा से मेरा भी भला हो जायगा।

अब एक बात मैं आपको और बताना चाहता हूँ। कुछ लोग कहते हैं परलोक कुछ है ही नही। देह आत्मा है। देह जहाँ नष्ट हुई सब कुछ नष्ट हो गया। फिर उसका आवागमन नही होता। अतः जब तक जीवे खूब ऋण ले और घी पीवे। कौन जाने कब सास निकल गई। अतः भूख प्यास सह कर इस कायाको क्लेश न पहुँचावे। मर कर कोई कहने तो आता नही कि हमने क्या सुख या दुख पाया। कोई होता तो आता। करने वाला तो शरीर है, शरीर अग्नि मे जला दिया गया, सड़ा दिया गया अथवा नदी आदि मे फेंक दिया गया। अब आवे कौन ? कुछ स्वार्थियो ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने को, मूर्ख लोगों को ठगने को, अपनी तोदो का बढ़ाने को, नित्यनूतन माल उडाने को कुछ कल्पित शास्त्रो की रचना करली है, यो श्राद्ध करो, ऐसे पिंड करो, रोज तर्पण करो। ये सब झूठी बातें हैं, परलोक परलोक कुछ नही। जो है सो यही लोक है।" ऐसी नास्तिकता पूर्ण अनेक बातें सुन्दर सुन्दर वाक्यो को बनाने वाले वाचाल वक्ता करते हैं और भोले भाले लोगो को धर्म-भ्रष्ट करते हैं। परलोक

है, अवश्य है। इसे मैं ही नही कहता आपके सम्मुख जो ये इतने बडे बडे ऋषि, महर्षि, तेजस्वी, तपस्वी, पूजनीय मुनिगण विराजमान हैं, ये सभी मेरी बात का अनुमोदन करगे। आप इनके द्वारा अपनी शकाओ का निवारण कर।

कुछ लोग कहते हैं, गुणही गुणो मे बर्त रहे है, कमही सुख दुख देते हैं, जो जैसा कर्म करेगा वह वैसा फल पावेगा। यह तो ठीक ही है, कर्मों का फल तो होता ही है, किन्तु जड कर्म स्वय फल को देने मे समथ नहीं। एक कोई यज्ञपति है, जो कर्मों के शुभा-शुभ का फल देते है। ऐसा कुछ महर्षियो का मत है। ऐसा न होता तो फिर इस लोक मे परलाक मे जो तेजोमय स्थान दिखाई देते हैं, सब व्यथ हो जाते। शरीर ही को आत्मा मान ले तब ता परलोक का अस्तित्व ही मिट जायगा, किन्तु परलोक को तो त्रिकालज्ञ मुनियो ने स्वय साक्षात्कार किया है। आप देवता पितर और ऋषि गण! मेरी इन बातो का अनुमोदन कर। जनता को शिक्षा दें, उसे कुमाग से हटाकर सुमार्ग मे लगाव। ऐसा करने से परलोक मे कर्ता को जो फल होता है, वही अनुमोदनकर्ता, शिक्षक और प्रेरक को भी होता है।

अब आप लोग कह सकते हैं, कि य सब कार्य भगवत् प्रेरणा से ही होते हैं, इसमे क्या प्रमाण ? भगवान् नामक कोई है इसी मे क्या प्रमाण ? इस विषय मे ईश्वर को न मानने वाला का कहना है कि हम सत्य को ही प्रमाण मानते हैं। जो हम दीखे नही देख न सके उसे प्रमाण नही मानते। आप सोच क्या यह बात ठीक है। प्रत्यक्ष के मानी क्या ? यही न कि जिन्हे आंखे साक्षात् देख, किसी अनुमान उपमान अथवा अन्य उपकरण साधन की अपेक्षा न हो। तो आप सोचें—'क्या आँख

प्रत्यक्ष देख सकती है। जब तक चक्षुगोलक न हो तब तक आँखो मे देखने की शक्ति नही। यह जो दा पलको के बीच मे काले तिलवाली सफेद शीशा के युक्त तिरछी-तिरछी भौहो वाली हमे दिखाई देती है, क्या ये आँखे है? नही ये आँखे नही है, आखा के गोलक हैं। इन गोलको के ज्यो के त्यो बने रहने पर भी यदि चक्षु-शक्ति नष्ट हो जाय, इनमे प्रकाश प्रदान न करे, इनमे बैठकर न दखे, तब तक हम देख ही नही सकते। अत चक्षु भी किसी के द्वारा ही देखती है। तब फिर प्रत्यक्ष कहाँ रहा। प्रत्यक्ष सत्य ही हो यह भी बात नही। आकाश प्रत्यक्ष तो नीला दिखाई देता है, क्या वास्तव मे वह नीला है? इन्द्र धनुष प्रत्यक्ष एक रगो वाला धनुप सा दीखता है, क्या वह ऐसा कोई धनुप आकाश मे रखा है? गन्धर्व नगर प्रत्यक्ष दिखाई देता है क्या ऐसा नगर कोई आकाश मे बसा है? इस लिये प्रत्यक्षादि की तब तक कोई सत्ता नही जब तक उसका अनुमोदन आदि पुरुप न करदें। मेरे हाथ मे यह क्या है? आप कहेगे कुशाओ का मूठा ब्रह्मदण्ड है? तो मैं पूछूँगा, इसमे क्या प्रमाण कि ये कुशा ही है? आप कहेगे हम प्रत्यक्ष देख रहे है, तो में पूछूँगा इन पर कहाँ लिखा है ये कुशा हैं। लिखा भी होता तो यह शब्द "कु" है यह 'शा" है इस मे क्या प्रमाण? मैं जिसे ओढे हूँ, इसका नाम कृष्ण मृग चर्म है इसमे क्या प्रमाण? आप मनुष्य है ये पशु हैं ये पक्षी हैं, ये वृक्ष है, इसमे क्या प्रमाण? प्रमाण से ही वस्तु की सिद्धि होती है। इस प्रमाण के प्रमाणत्व मे क्या प्रमाण? ये ब्राह्मण है, ये ऋषि हैं, मैं राजा हू, इस मे क्या प्रमाण? महानुभावो! आप मेरी बात पर विश्वास करें। ये सब धूर्तों की श्रुति मधुर वेदविरुद्ध व्यर्थ की बहकाने वाली बात है। सब से अधिक प्रमाण है शिष्ट लोगो का वचन।

सबने इस अक्षर का नाम 'अ" रख दिया, अब हमे मानलेना चाहिये यह "अ" ही है। ये मनुष्य है, ये पशु हैं, ये पक्षी है ये सरीसृप हैं ये ब्राह्मण ह, ये स्त्रियां है ये पुरुप हैं, ये इसके लडके हैं, ये इसके माता पिता है, ये गहूँ है ये जौ है। इन सब म बडे लोगों के वचन ही प्रमाण है। इसी प्रकार ईश्वर है इसमे त्रिकालज्ञ ऋषि तथा हमारे धर्मात्मा पूर्वज ही प्रमाण है। यदि ईश्वर परलोक आदि न होते तो हमारे प्रथम पूर्वज भगवान् स्वायम्भुवमनु भगवान की आराधना क्यों करते। कैसे वे अपने पौत्र ध्रुव को परलोक से पधार कर शिक्षा देते। इतने बडे यशस्वी हमारे पूर्वज राजर्षि उत्तानपाद इतने समृद्धि-शाली राज्य को तृण के समान त्याग कर वन मे क्यो जाते, क्यो भगवत् आराधना मे निमग्न होकर अपने समय को कद-मूल फल खाकर तपस्या करते हुए बिताते। क्यो मेरे जगत् विख्यात पूर्वज प्रातस्मरणीय महाराज ध्रुव घर छोड कर मधुवन जाते। कैसे ५ ही वर्ष की अवस्था मे भगवान् का साक्षात् कार करते। कैसे वे एक रथ से ही इतने बली उपदेवो-यक्षो को जीत लेते। हमारे पितामह राजर्षि अङ्ग इतना धर्माचरण क्यो करते ? किसलिये वे धर्म को ही सर्वस्व समझते। ये सब इतने बडे बडे तेजस्वी राजर्षि ब्रह्मर्षि देवर्षि क्या सब बुद्धिहीन थे। ये त्रिकालज्ञ थे। ईश्वर न होता तो ये इतने परलोक संबधी साधन क्यो करते। परलोक न होता तो ये यज्ञभाग आदि धार्मिक कृत्यो मे इतना श्रम क्यो करते। इन्द्रादि देव, ब्रह्मा, विष्णु आदि जगत् पूज्य ईश्वर क्यो भगवान् विष्णु की आरा-धना करते। देवो मे ही नहीं दैत्यो मे प्रह्लाद वलि आदि भगवत् भक्त उनकी निरन्तर आराधना मे क्यो लगे रहते। ये सब आस्तिक थे, धर्मात्मा थे, परमात्मा और परलोक को मानने

वाले थे, धार्मिक कृत्यो पर विश्वास करने वाले थे।

हाँ कुछ ऐसे भी मृत्यु की पुत्री के पुत्र आदि हुए हैं जो धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदि समस्त पुरुषार्थों के दाता श्रीहरि को नही जानते थे। वे अपने आपको ही सब कुछ समझते थे। अङ्ग सम्बन्ध से वे मेरे पिता थे, अत. ऐसे लागो की मैं निन्दा तो क्या करूँ किन्तु इतना अवश्य कहूँगा, ऐसे धर्मविमूढ नास्तिक लोग अत्यन्त शोचनीय हैं।

आपही बताइये, जो भक्तो के ऊपर अनुग्रह करने को सदा व्यग्र बने रहते है, जिनके अरविन्द-सदृश कोमल कमनीय चरणो मे बढी हुई भक्ति तपस्वियो तथा भक्तो के अनेको जन्मो के सञ्चित मनोमल को क्षण भर मे तत्काल ही नष्ट कर देती है, जो भक्तो के एक मात्र आश्रय हैं, उन चरणो की शरण कौन बुद्धि-मान पुरुप न लेगा।

उनके चरणो की महिमा को तो जाने दीजिये। जिन चरणो के अँगूठे के नख के स्पर्श हाने के कारण श्री गगाजी त्रैलोक्य-पावनी कलि कल्पप-हारिणी बन गई हैं, जो अपनी शरण मे आये हुए जीवो के सभी दुरितो को दूरकर देती हैं, उन गङ्गाजी मे इतना प्रभाव कहाँ से आया, क्यो आया ? तो कहना पडेगा यह सब उन अमल कमल सरिस पाद-पद्मो का ही पुण्य प्रभाव है। जिन चरणो का आश्रय लेने से कर्म वासनाओ मे आबद्ध पुरुप अपने सम्पूर्ण मनोमल से मुक्त होकर निर्मल बन जाते हैं तथा असग होकर ज्ञानार्जन करते हुए विशेप बल प्राप्त करके इस कोलाहलपूर्ण दु खमय जगत् को पार कर जाते हैं, फिर इस ससार-चक्र मे नही फँसते उन चरणो का आश्रय कौन मुक्ति की इच्छा वाला प्राणी न लेगा।

इसलिये भाइयो ! प्रजा के सभ्य महानुभावो ! आप मेरी

बात मानें। आप उन सर्वेश्वर हरि का नित्यप्रति विविध उपायो से भजन करें जिनके चरणकमल सम्पूर्ण कामनाओ को पूर्ण करने वाले हैं। उनकी यज्ञो के द्वारा पूजा करके स्तुति प्रार्थना के द्वारा आराधना करें। अपनी वर्णोचित वृत्ति द्वारा न्याय से उपार्जित धन से उनका भजन पूजन करें। जैसा जिसका अधिकार हो, जैसी जिसकी शक्ति हो उसी के अनुसार यथालब्धोपचारो से उन चारु चरित्र वाले चितचोर भगवान् वासुदेव की परिचर्या करें।

आप कह सकते है कि भगवान् तो गुणो से रहित है निर्गुण, निराकार, निर्लेप, निरीह और निरवलम्ब है, उनकी नानाद्रव्यो, गुणो, क्रियाओ और उक्तियो के द्वारा की हुई पू-ा से लाभ क्या ? उनके निमित्त अर्थ, आशय, लिंग और इन्द्र वरुण आदि नामो से युक्त अनेक-गुण-सम्पन्न राजसूय, अश्वमेध वाजपेयादि यज्ञ करने से क्या लाभ होगा। इन सबसे उनका पूजन कैसे होगा, सो भैया। वे विशुद्ध विज्ञानघन प्रभु भावमय है, सबकी भावनाओ को जानते हैं, जा उन्हे जिस भावना से भजता है जो उनकी जिस भाँति से शुद्धचित्त होकर आराधना करता है, उसे वे वैसा ही उसी रूप मे फल देते हैं। इसे यो समझो। अग्नि एक है और सर्वव्यापक है, निराकार भी है, उसका न कोई आकार है न रूप। फिर भी वह जिस वस्तु मे जैसे ईंधन मे प्रवेश करती है, वैसा ही उसका रूप दिखाई देने लगता है। यदि ठेढी लकडी मे लग जाती है, तो अग्नि टेढी दिखाई देती है। यदि स्थूल मे प्रवेश करती है तो स्थूल दीखती है, पतली लकडी मे पतली, मोटी मे मोटी, छोटी मे छोटी, धोती मे धोती-सी, लँगोटी मे लँगोटी-सी, दीखती है। उसी प्रकार वे सर्व व्यापक प्रभु ही प्रकृति, काल, अन्त करण और ~.

समूह रूप इस देह मे चेतना को प्राप्त करके नाना रूपोमे दिखाई देते है। वे ही भावना के अनुसार यज्ञादि कियाओ के फल रूप से भिन्न भिन्न प्रकार से प्रतीत होते हैं। ऐसे प्रभु ही सबके पूजनीय है वन्दनीय है, आदरणीय हैं, यजनीय और भजनीय हैं। जो बन्धु उन जनबन्धु का बन्दन करते हैं, जो प्रजा जन उन परात्पर प्रभु का प्रेमपूर्वक पूजन करते हैं, जो भक्त जन उन भवमय भजन, भक्त भयहारी भजनीय भगवान् का भजन करते हैं, जो अमल पुरुप उन अनादि अज अच्युत का एकाग्रचित्त से अर्चन करते है, वे सब मेरे ऊपर बडी कृपा करते है, उनके द्वारा समार का बडा उपकार हो रहा है, वे ससार मे भव्य भावो का स्रोत बहा रहे है, वे अपना परलोक तो बना ही रहे है, जनता को भी सुख पहुँचा रहे है। आप सब मेरे ऊपर ऐसी ही कृपा करें, मुझे यही भिक्षा द कि आप निरतर उन अखिल विश्व के त्राता ससार के सुखदाता उन अखिलेश का अव्यग्र भाव से आराधन करें।

मेरे पिता ने अपने को ही सब कुछ समझकर प्रधानतया दो कार्य किये। एक तो उन्होने सर्वत्र ईश्वराराधन बद कराया था दूसरा ब्राह्मणो का अपमान किया था। जिसके कारण उनकी मृत्यु हुई। आप इन दोनो कामो से सदा दूर रहे। जैसे आप ईश्वर को मानें उसी प्रकार श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणो का भी आराधन करे। वेदो को धारण करने वाले ब्रह्म को बताने वाले परलोक को लखाने वाले ये भूसुर ही हैं। ये ही हमारे इष्ट हैं, ये ही हमारे देवता है। तपस्या सहनशीलता और विद्या के द्वारा देदीप्यमान तथा अच्युत की ही अनन्य भाव से आराधन करने वाले विप्रो पर कोई अपना राजापने का, ऐश्वर्यपने का, तेज न दिखावे। ब्राह्मण हमारे कुलदेवता है। आप लोग सोचें-भगवान्

तो सबके पूजनीय तथा वन्दनीय है, ऐसा होने पर भी वे ब्राह्मणो की भक्तिपूर्वक वन्दना करते है, इसीलिये वे ब्रह्मण्य देव कहलाते है। जिनकी पूजा निरन्तर ब्रह्मा, रुद्र आदि बड़ी भाव भक्ति से करते हैं, वे श्रीहरि ब्राह्मण के पादचिह्न को भक्ति सहित अपने हृदय मे धारण करते हैं। वे बार बार कहते है, ब्राह्मणो के प्रसाद से मैं लक्ष्मीवान् तथा जगद्वन्द्य बना हुआ हूँ। मै उनकी पादधूलि को सिर पर चढाकर कृतार्थ होता हूँ। ऐसे भगवान् से भी पूजित ब्रह्मकुल का कभी स्वप्न म भी अपमान न करना चाहिये। भगवान् के दो मुख बताये हैं, एक तो अग्नि और दूसरा ब्राह्मण। फिर भी भगवान् अग्नि मे हवन करने से उतने प्रसन्न नही होते, जितने ब्राह्मणो के मुख मे हवन करने से प्रसन्न होते है। गरमागरम मोहन भोग जिसमे से घृत चू रहा हो ऐसे सवाव हलुए को जो ब्राह्मणो के वद से परमपावन हुए मुख मे हवन करता है, उसके तो भगवान् किंकर बन जाते है। उसने मानो भगवान् को इतने ही मूल्य म सदा के लिये मोल ले लिया। जितने चाव से भगवान् वदज्ञ ब्राह्मणों के मुख मे हवन किये हुए पदार्थों का ग्रहण करते है, उतने चाव से विधि विधान पूर्वक अग्नि मे हवन किये हुए यज्ञ भाग को स्वीकार नही करते।

आप कहेंगे, कि यह तो आप पक्षपात कर रहे हैं, ब्राह्मणों मे ऐसी क्या विशेषता है, जो उनका हम ईश्वरबुद्धि से पूजा करे, जैसे ही हाथ पैर उनके, वैसे ही हमार। जसा हो हाड मास का शरीर उनका, वैसा ही हमारा। जैसा ही लाल रक्त उनका, वैसा ही हमारा। फिर हम उनका इतना आदर क्यो करें सो भैया, यह बात नहीं। देखो भैया, ब्राह्मण लोग शरीर से सब के समान होते हुए भी सबसे विलक्षण हैं। जो प्रत्येक धाम,

नित्य, शुद्ध सनातन वेद को श्रद्धा, तप, सदाचार, मौन, सयम और समाधि के सहित धारण करते है उनकी बराबरी ससार मे कौन कर सकता है।

आप कह सकते है, कि जो ब्राह्मण इन गुणो से हीन है, जो सयम सदाचार से रहित है उसकी हम पूजा क्यो करें? वह तो जैसे काठका घोडा नाम मात्र का घोडा है उसी प्रकार नाम-मात्र का ब्राह्मण है। जो ब्रह्म को नही जानता वह ब्राह्मण नही। यह ठीक है, फिर भी आपको ऐसे निर्गुण ब्राह्मण का भी निरादर न करना चाहिये। ऐसा ब्राह्मण तो साहस हीन स्वय ही भय-भीत बना रहता है, किन्तु तुम्हारे द्वारा कुल परम्परा की मर्यादा के निमित्त ऐसे नाम मात्र के ब्राह्मण का भी अपमान ठीक नही। देखो, भगवान् का अवतार गौ और ब्राह्मण की रक्षा के ही निमित्त होता है। गौ ब्राह्मण भगवान् के अग ही हैं। अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नही। सारा सिद्धान्त यही है, कि आप भगवान् को मानें। भगवान् की सिद्धि वेद शास्त्रो के ही द्वारा होती है, अत· वेद शास्त्रो के धारण करने वाले ब्राह्मणो को भी मानें और सदा सर्वदा, यज्ञ-याग, जप, तप, पूजा, पाठ, कथा श्रवण भगवन्नाम सकीर्तन आदि शुभ साधन करते रहें।

महानुभावो! अब अधिक कहने की आवश्यकता नही। अन्त मे मैं आप सबसे पल्ला पसार कर यही भीख माँगता हूँ, कि मेरी भगवान् के चरणारविन्दो मे अहैतुकी भक्ति बनी रहे, मैं ब्राह्मणो की चरण धूलि को सदा अपने सुवर्ण मडित मुकुट मे श्रद्धा सहित धारण किये रहूँ, जो निष्पाप पुरुष विप्र पद रज को भक्ति-सहित सेवन करते हैं गुरु सुश्रूषु सकल गुणो के धाम, कृतज्ञ और परम सुशील हो जाते हैं, उन पर भगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं। अतः मेरी गोविन्द मे, गो वृन्द में और

विप्र पादारविन्दो मे एक सी भक्ति बनी रहे। आप सब मिलकर मुझे हृदय से यही आशीर्वाद द कि मेरे प्रत्येक काय भगवत् सेवा के ही निमित्त हो। सर्वेश्वर भगवान मेरे ऊपर सदा प्रसन्न रहे। मुझे अपने चरणो की अव्यभिचारिणी भक्ति प्रदान कर।

मैंने जो कुछ कहा है, आपके हित की दृष्टि से कहा है, राजा होने के अभिमान से नहीं आपने जो सेवा मुझे समर्पित की है, उसी भाव से भावित होकर मैंने अपने कतव्य का पालन किया है। इसमें जो आपको कुछ सार प्रतीत हो उसे आप ग्रहण करें और कोई धमविरुद्ध बात हो तो उसका त्याग कर द। धम का यथाथ मर्म तो ये ब्राह्मण बतावगे इन्ही से आपको धम की जिज्ञासा करनी चाहिये। मैंने तो इन्ही के मुख से सुनी हुई बातें आपको इनके समक्ष सुनादी है। यदि मेरे कहने मे कुछ त्रुटि रह गई होगी तो ये गुरुजन उसका सशोधन कर दगे।

सबसे अन्त मे मेरी यही प्राथना है कि यदि भूल से प्रमाद-वश मैंने किसी पर अनुचित आक्षेप कर दिया हो, किसी के हृदय को चोट पहुँचाई हो, तो वे मुझे क्षमा करद। मेरा उद्दश्य किसी का खडन मडन न करके धम की स्थापना और आस्तिक भावो का प्रचार मात्र ही था। मगलमय भगवान् हमारा तुम्हारा सब का मगल कर, सबकी बुद्धि धम मे लगाव, सब के हृदय मे अपनी भक्ति का सचार करें। शाति शाति शाति शुभ भूयात्।

सूतजी कहते है—'मुनियो। महाराज का भाषण समाप्त होते ही चारो ओर से 'साधु साधु जय जय नमोनम" का तुमुल घोष होने लगा। सर्वत्र आनद और उल्लास छा गया। महाराज के ऊपर देवताओ ने पुष्पो की वृष्टि की। दुन्दुभी आदि बाजे

बजने लगे। सूत मागध आदि स्तुति करने लगे। महाराज ऋषि मुनियो और ब्राह्मणो को प्रणाम करके अपने आसन पर जा बैठे।

छप्पय

धन्य प्रजा के पुरुष करहिं जे पूजा प्रभु की।
ते अति आदरणीय करहिं जे अर्चा विभु की।
धर्ममूल हैं धेनु यज्ञ हित घृत जे देवें।
दूसर भूसुर कहे वेद जे विधिवत सेवें॥
विप्र कमल पद रेणु कूँ, नित सिरत धारन करहुँ।
कृष्णार्पण करि करहुँ सब, कर्क व्यथा सब की हरहुँ।

प्रजा द्वारा महाराज पृथु के उपदेश का अभिनन्दन

(२७८)

अहो वयं ह्यद्य पवित्रकीर्ते,
त्वयैव नाथेन मुकुन्द नाथाः ।
य उत्तमश्लोकतमस्य विष्णो,
ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति ॥*
(श्री भा० ४ स्क० २१ अ० ४९ श्लो०)

छप्पय

सुने वेन सुत बैन नैन सबके भरि आये।
सुनि अभिभाषण साधु साधु सबई चिल्लाये ॥
उठे वृद्ध से पुरुष एक प्रतिनिधि परजाके।
धन्यवाद बहु दये मच के ढिंग महँ जाके ॥
पिता पुत्र द्वारा परम, प्राप्त पुण्य लोकनि करहिँ।
भई सत्य वेदोक्ति जिह, पृथु पितु के पापनि हरहिँ ॥

वह प्राचीन शिष्टाचार है, कि जो अपने प्रति उपकार करे, उसके उस उपकार के बदले मे हम उसके आभारी हो, उसे

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! महाराज पृथु का उपदेश श्रवण करके प्रजा के पुरुष कहने लगे—हे पवित्र कीर्ति वाले महाराज

धन्यवाद दें, उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करें,उसके छोटे से उपकार को बडे से बडा मानकर आदर करें और सदा उसके उपकार के लिये हृदय मे आदर के भाव बनाये रखे। जो उपकार कर्ता के प्रति मनसा वचसा तथा कर्मणा कृतज्ञता प्रकट नही करता, उसके आभार को नही मानता वह कृतघ्नी कहलाता है। वसुन्धरा का कहना है मैं इतने बडे हिमालय, सुमेरु आदि पर्वतो को सरलताके साथ धारण किये रहती हूँ। लाखो करोडो बडे बडे पर्वतो के धारण से मुझे उतना कष्ट नही होता, जितना एक कृतघ्न के धारण करने से होता है। कृतघ्नता एक महान् पाप है। इसीलिए हमारे यहाँ स्वल्प उपकार के प्रति भी सम्मान करने की आज्ञा है। जो हमे एक भी अच्छी बात बतादे, एक भी अक्षर पढा दे, उसका अपमान करने वाला करोडो वर्ष तक नरको मे पचता रहता है। अन्त मे वह विष्टा का कीडा होता है।

महामुनि मैत्रेयजी कहते है—'विदुरजी! जब महाराज पृथु अपना भाषण समाप्त कर चुके तो चारो ओर हर्ष ध्वनि होने लगी। सब एक स्वर मे गगन भेदी वाणी मे 'साधु साधु' 'धन्य धन्य' कहने लगे। सब पूरी शक्ति लगा कर महाराज पृथु की जय, नर रूप धारी श्रीहरि की जय, इस प्रकार जय घोष करने लगे। जब चारो ओर कोलाहल हो गया, सभी प्रेम के आवेग मे अपने आपे को भूल गये, तो सब के सकेत करने पर

आज हम आपको अपना स्वामी पाकर यथार्थ मे भगवान् की प्रजा बनगये। मुकुन्द ही हमारे नाथ हो गये। क्योकि आप हमारे सम्मुख उत्तम श्लोक भगवान् ब्रह्मण्यदेव की कथाओ को कहते हैं। हमें भागवती कथा सुनाते हैं।

एक वृद्ध से अनुभवी पुरुष उठे। उन्होंने उपस्थित ऋषि महर्षियो को प्रणाम किया, महाराज का आदर किया और सबकी ओर से अपने सम्राट के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने को उद्यत हुए। मुनियो की अनुमति पाकर मच के समीप पहुँचकर जिस प्रजा की भीड मे समुद्र के समान हर्ष की ऊर्मियाँ उठ रही हैं, उसे शान्त करते हुए तथा सबका ध्यान अपनी ओर अकर्षित करते हुए, वे तेजस्वी वृद्ध पुरुष बोले—"ऋषि महर्षियो तथा प्रजा के समुपस्थित भाइयो! सब लोगो की ओर से मुझे आज्ञा हुई है, कि हमारे सम्राट ने जो हमे अनुपम उपदेश दिया है, उसके प्रति मैं सबकी ओर से कृतज्ञता प्रकट करूँ। महाराज के उपकार के प्रति हम शब्दो मे अपनी कृतज्ञता कैसे प्रकट कर सकते हैं। जो माता सतान को नाना कष्ट सहकर ६ महीने उदर मे धारण करती है, जो पिता पाल पोस कर स्वय कष्ट सहकर बच्चे को इतना बडा बनाते है, उन माता पिता के ऋण से कोई भी पुत्र कभी भी सेवा करके उऋण नही हो सकता। जीवन भर भृत्य के समान सेवा करने पर भी उनके उपकारो का बदला नही चुका सकता। माता पिता तो थोडे ही समय तक पालन करते है,किंतु ये हमारे पृथिवी पति पिता तो जीवन भर हमारी सभी सुविधाओ का ध्यान रखते है, हमे सदा भयसे बचाते हैं, हमारी आजीविका का प्रबन्ध करते है, तिस पर भी ऐसे अनुपम उपदेश देकर हमे परमार्थ पथकी ओर प्रेरित करते हैं। ऐसे पिता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हमारी शक्ति के बाहर की बात है। आज हम अपने ऐसे स्वामी को पाकर साक्षात् परमेश्वर को ही प्रजापति रूप मे प्राप्त करके कृतकृत्य हो गये, हमारा जीवन सफल होगया, हम धन्य धन्य हो गये।

एक सुप्रसिद्ध वेद वाक्य है, जिसका भाव है "पिता पुत्र

द्वारा पुण्य लोको की प्राप्ति करता है।" आज यह श्रुति अक्षरशः सत्य होगई। महाराज वेन के क्रूर कर्मों को बताने की आवश्यकना नही उसे सभी जानते हैं, वे वेद विरुद्ध आचरण करने के कारण तथा भगवान् की निन्दा करने के कारण श्रीहीन होगये थे, इसी लिए ब्राह्मणो की शाप रूपी क्रोधाग्नि में भस्म हो गये। शास्त्र का सिद्धान्त है कि और चाहे किसी प्रकार की अपमृत्यु वाले पुरुष की सद्गति हो भी सकती है, किन्तु ब्रह्म शाप से दग्ध हुए प्राणियो की निष्कृति का कोई भी उपाय नही। भूतपूर्व महाराज ने इतने अन्याय किये थे, कि कोटि कल्पो तक नरक की अग्नि मे पचते रहने पर भी उनका उद्धार नही हो सकता था किन्तु आज इन श्रीहरि स्वरूप नरनाथ को पुत्र रूपमे पाकर वे भी विमुक्त बन गये। उनका भी नरक से उद्धार हो गया। सत्पुत्र वही है जो अपने पितरो के पापो का प्रायश्चित्त करके उन्हें नारकीय यातनाओं से बचा सके।

हम सुनते आये है, कि प्राचीन काल में हिरण्यकशिपु दैत्य ने भी ऐसे ही पापाचार किये थे, वह भी भगवान् से द्वेष रखता था, वह भी अखिलात्मा श्रीहरि की निन्दा करता था। वह भी श्रीमन्नारायण की नित्य निन्दा करके अपने पाप रूपी घट को भरता जाता था, किन्तु उसके पुत्र महाभागवत प्रह्लाद जी ऐसे हुए कि उन्होंने उसके समस्त पापों का परिमार्जन कर दिया, उसे नरक की अग्नि के ताप से बचा लिया, नरक रूपी सागर मे निमग्न होते हुए पिता को उबार लिया। सत्पुत्र का कार्य ही यह है।

हे हमारे हृदयेश्वर, हे हमारे हृदय सम्राट ! हम किन शब्दों मे आपकी स्तुति करें। क्या वस्तु समर्पित करके आपके प्रति भक्ति प्रदर्शित करें। हम पर आपके अनुरूप भेंट करने को कोई

वस्तु नही है। हम सब दो हस्तक और एक मस्तक नवाकर आपके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते परम पिता परमात्मा के पाद पद्मो मे पुन पुन यही पुनीत प्रार्थना करते है, कि आप अनन्त-काल तक जीवित रह कर, इसी प्रकार हमे सदुपदेश देते रहे, इसी प्रकार हमारा प्रेमपूवक पालन करते रहे।

हे नरनाथ! हे पवित्र कीर्ति वाले यशस्वी सम्राट! हे हमारे जीवन सर्वस्व! आज हम पृथिवी पर रह कर भी वैकुण्ठ के सुख का अनुभव कर रहे हैं। हे ब्रह्मण्य देव! हम उस स्वर्ग को तुच्छ समझते है, जहाँ श्रीहरि के गुणगण निरन्तर श्रवण करने को न मिलें। इसके विपरीत हम उस नरक मे अनन्त काल तक रहने को तैयार हैं, जहाँ श्रीहरि के गुणानुवाद होते रहते हो। आज नरनाथ होकर, इतन ऐश्वर्य सम्पन्न होकर भी आप हमे उत्तम श्लोक श्रीपुरुषोत्तम की कमनीय कथा सुना रहे हैं उनकी अनुपम लीलाओ को व्यक्त कर रहे हैं। हे स्वामिन्! आज हम आप मुकुन्द को अपने स्वामी रूप मे पाकर यथाथ मे प्रजा कहलाने के अधिकारी बन गये, हम कृतार्थ हो गये, धन्य धन्य हो गये।

हम आपकी इस अहैतुकी कृपा को प्राप्त करके भौचक्के से रह गये, कि क्या हम सब इतनी कृपा के अधिकारी हो सकते हैं? फिर सोचते है, हम चाहे अधिकारी न भी हो, किंतु आश्रितों पर कृपा करना, भूले भटको को सुपथ दिखाना, यह तो आप जैसे परोपकार व्रती पुरुषा का सहज स्वभाव ही होता है, इसम आश्चर्य करन को कोई बात भी नही। अपना अयोग्य पुत्र भी प्यारा होता है, अपनापन जिसम हो जाता है, उसकी योग्यता की ओर ध्यान नही जाता। उसे तो निबाहना ही होता है, इसी प्रकार हम योग्य अयोग्य जैसे भी हैं, आपके हैं और आप हमी

नाते अयोग्य होने पर भी हमारा पुत्र के समान पालन कर रहे है, हमे देवताओ को भी दुर्लभ कृष्ण कथा सुनाकर कृतार्थ कर रहे हैं। अब तक हम दैव नामक प्रारब्ध के अधीन होकर अधो के समान घोर निविडान्धकार मे भटक रहे थे, आपने आज बलपूर्वक हाथ पकडकर हमे उस अज्ञानान्धकार से अपनी कृपा वश उबार लिया। हमे कुपथ से हटाकर सुपथ पर लाकर रख दिया। अधिक हम क्या कहे, कहने योग्य कोई बात भी नही, कहने की हम मे शक्ति भी नही। केवल क्षत्रिय रूप धारण किये सत्यमूर्ति ब्रह्मण्यदेव जगत्पति आप पुरुषोत्तम के पूजनीय पादपद्मो मे प्रणाम करते हुए इन टूटे फूटे शब्दो मे अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते है।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! उन वृद्ध पुरुष ने ज्यो ही अपना भाषण समाप्त किया, त्योही जय हो, जय हो। 'महाराज की जय हो, पृथिवी पति पुरुषोत्तम की जय हो, प्रजा पालक पृथु भगवान् की जय हो, जय हो, जय हो, जय हो, ऐसे जय घोष चारो ओर से होने लगे। सभी ने उस वृद्ध पुरुष के कथन का अनुमोदन और समर्थन किया।

छप्पय

भये कृतारथ आजु हमनि अच्युत पति पाये।
प्रभो! धन्य सुनि भये अवहिँ जो हरि गुन गाये॥
जुग जुग जीवेँ नाथ सदा अस सीख सिखावेँ।
सुनि श्रीमुख हरि सुयश हृदय हमरे हुलसावेँ॥
मति मलीन अति दीन हम, नही भेँट सम्मान है।
केवल श्रद्धा सहित प्रभु! पद पद्मनि परनाम है॥

—:※:—

महाराज पृथु की सभा में सनकादि सिद्धों का प्रादुर्भाव

(२७७)

जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथुं पृथुलविक्रमम् ।
तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः ॥*

(श्री भा० ४ स्क० २२ अ० १ श्लो०)

छप्पय

सभा माहिँ सनकादि तबहिँ नभ मारग आये ।
प्रजा सहित पृथु उठे सबनि चरननि सिर नाये ॥
सिंहासन बैठाइ विविध विधि पूजा कीन्हीं ।
राज, कोष, सम्पत्ति, देह अर्पन करि दीन्हीं ॥
हाथ जोरि गद्गद गिरा, कहत वचन विह्वल भये ।
करे कृतारथ कृपानिधि ! सुर दुरलभ दरसन दये ॥

इस भूमंडल मे बहुत से सिद्ध सूक्ष्म रूप से घूमा करते है, बहुत से विविध वेष बना कर अपने को छिपाये हुए स्थूल रूप से भी घूमते हैं। वे अधिकारी पुरुषों को उपदेश देते हैं। भक्तों को विपत्तियों से सहसा बचाते हैं। कभी कभी तो प्रत्यक्ष

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—विदुरजी ! इस प्रकार प्रजा के पुरुष परम पराक्रमी पुरुषोत्तम पृथु की स्तुति कर ही रहे थे कि उसी समय सूर्य के समान कान्ति वाले सनकादि चारों महर्षि राज-सभा में पधारे।

देखा गया है, कि नौका पानी से भर गई है, अव डूवी, अब डूबी हो रही है, किसी अव्यक्त हाथ ने ऐसे जोर का धक्का मारा कि वह पार लग गई और पृथिवी पर टिक गई। कुछ तो प्राचीन चिरजीवी सिद्ध पुराणो मे प्रसिद्ध ही है। जैसे सनक, सनन्दन सनतकुमार, सनातन, नारद, ऋभु,अगिरा, देवल, शुक, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, आरुणि, रोमश,च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरी पतञ्जलि, वेदशिरा, वोध्य, पञ्चशिरा, हिरण्यनाभ, कौशल्य, श्रुतदेव, ऋतध्वज आदि आदि। इनमे से बहुत से ऐसे हैं जिनके सामने अनेको ब्रह्मा वदल गये। ये ससार के कल्याणाथ, दीन दुखियो के दुख दूर करने तथा अधिकारियो को उपदेश देने के लिए विचरते रहते हैं। इसलिये पहिले शम, दम, यम, नियम आदि सद्‌गुणो और पुण्य कार्यो द्वारा पात्र का सम्पादन करना चाहिये। पात्रता प्राप्त होने पर सिद्ध स्वय ही आकर तुम्हे उपदेश देगे। जितना साधक सद्‌गुरु की प्राप्ति के लिये व्यग्र रहता है उस से शत सहस्र अनन्त गुणा गुरु सत् शिष्य के लिये अधीर रहता है। पात्रता होने पर ही दोनो का सयोग होता है। अपात्र उपदेश ठहरता नही। फूटे घड़े मे पानी भर कर रख दो, वह जायगा, नष्ट हो जायगा।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! महाराज पृथु वैसे तो ईश्वर ही थे, फिर भी उन्होने नरपति का वेप वनाया था, अत. उन्होने दान, धर्म, जप, तप तथा यज्ञो द्वारा अपने अन्त करण को पवित्र किया, पात्रता का सम्पादन किया। जब पूर्ण पात्रता आ गई तब उन्हे भगवान् के दर्शन हुए। दर्शन होन पर भी भगवान् ने आज्ञा दी कि तुम्हे उपदेश देने सनकादि महर्षि स्वय तुम्हारे यहाँ पधारेंगे! वे तुम्हारे सशयो का छेदन करेंगे।

महाराज पृथु को तो सशय होने ही क्या थे, फिर भी लोक शिक्षा के निमित्त उन्हे योग्य अधिकारी समझकर सनकादि सिद्ध महर्षि उनके समीप आये।

सभा खचाखच भरी थी, सभी श्रेणी के पुरुषो का जमाव था। ऋषि मुनि विप्र और पूजनीय पुरुष सभी को सुशोभित कर रहे थे। महाराज पृथु अपना भाषण समाप्त कर चुके थे, प्रजा की ओर से आभार प्रदर्शित हो चुका था, सभा के पुरुष हर्ष ध्वनि कर रहे थे कि सभी को ऊपर से पीली पीली जटा फैलाये चार देवताओ के समान दिव्य पुरुष आकाश से उतरते हुए दिखाई दिये। उनके तेज से दशो दिशायें आलोकित हो रही थी। महाराज पृथु की ज्यो ही दृष्टि ऊपर की ओर गई त्यो ही उन्हे भगवान् की बात स्मरण हो आई कि भगवान् ने कहा था तुम्हे उपदेश करने सनकादि चारो सिद्ध आदि ऋषि आवेगे। महाराज सभ्रम के सहित हाथ जोडे हुए उठकर खडे हो गये। महाराज के उठते ही समस्त प्रजा के पुरुष उठ खडे हुए। ऋषि मुनियो ने भी अपने आसन छोड दिये। बात की बात मे अपने प्रकाश से सभा-मडप को प्रकाशित करते हुए चारो सनकादि कुमार आकर महाराज के समीप खडे हो गये।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"ऋषियो ! सभा मे जब कोई श्रेष्ठ सम्माननीय पुरुष पधारते हैं तो छोटे पुरुषो के प्राण उनकी ओर उत्क्रमण करने लगते हैं। जब अभ्युत्थान आदि के द्वारा उनका स्वागत सत्कार करते है तो प्राण पुन अपने स्थान पर हो जाते हैं। सनकादिको का सम्मान करते ही सबके प्राण यथा स्थान हुए। महाराज पृथु ने कधो को झुका कर हाथो की अञ्जलि बाँधकर अत्यन्त विनयावनत होकर उनका आदर किया। दिव्य सुवर्ण के सिंहासनो पर जिन पर मखमली गुल गुले बहुमूल्य

तोसक तकिया लगे हुए थे उन पर सबको सत्कार पूर्वक बिठाया पाद्य अर्घ्य आचमनीय आदि से उनकी विधिवत् पूजा की। अपने सम्मुख सुख से सिंहासन पर विराजमान पूर्वजों के भी पूर्वज भगवान् रुद्रदेव के भी अग्रज उन कुमारों से शिष्टाचार युक्त वचन बोले।

महाराज ने अत्यंत नम्रता के साथ दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधे हुए कहा—"हे मंगलमूर्ते! हे सम्पूर्ण लोकों द्वारा नमस्कृत ऋषिश्रेष्ठो! पता नहीं आज मेरा कौन सा पुण्य उदय हो उठा। कौन से सुकृत कर्मों का आज सहसा फल प्रकट हो गया जो आपका देवदुर्लभ दर्शन मुझ दीन हीन को अकस्मात् हो गया। इतना भारी पुण्य इस जन्म में तो मुझ से हुआ नहीं, जिसके फल स्वरूप आपके दर्शन हो सकें।

इस पर सनत्कुमार बोले—"राजन्! आप तो बड़े धर्मात्मा हैं, आपने अपने पुण्य-प्रभाव से परात्पर प्रभु परमेश्वर को प्रसन्न कर लिया है। स्वयं उन्होंने आपके यज्ञ में पधारकर आपको कृतार्थ किया है।"

इस पर महाराज पृथु बोले—"हाँ, भगवन्! यह ठीक है भगवान् ने मुझे दर्शन दिये थे, किन्तु वह किसी पुण्य का फल नहीं था। कौन सा ऐसा पुण्य है जिसके वश में भगवान् हो सकें। भगवान् ने तो कृपावश मुझे दर्शन दिया था, उन्होंने तो दया करके मेरे इन नेत्रों को पवित्र किया था। ब्राह्मणों के आशीर्वाद से मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो सका था जिस पर ब्राह्मणों की कृपा हो, भगवान् भूतनाथ का अनुग्रह हो और श्रीहरि दया करके जिसे दर्शन दे दें, उसके लिये संसार में दुर्लभ ही क्या है। प्रतीत होता है भगवद्दर्शन का ही यह फल है, कि आपके दुर्लभ दर्शन का मुझे आज सौभाग्य प्राप्त हुआ। भगवद्

दर्शन भगवत् कृपा का फल है) और साधु सतो का दशन भगवद् दर्शनो का फल है।

सनत्कुमारजी ने कहा—"अरे भैया ! हमारा क्या दशन हम तो ऐसे घूमते ही फिरते है।"

इस पर महाराज बोले—'नही भगवन् ! यह बात नही। आप अवश्य ही वायु की भाँति सम्पूर्ण लोको मे सदा स्वेच्छानुसार घूमते रहते हैं, सवसाधारण लोग समीप आने पर भी आपको जान नही सकते। जैसे इस दृश्य प्रपञ्च के कारण भूत महत्तत्वादि गुण सब साक्षी आत्मा को सब मे समान रूप से व्याप्त होने पर भी पहिचान नही सकते। वे धनहीन पुरुष भी धन्य हैं जिन्हे आपकी परिचर्या करने का, सुयोग प्राप्त हो जाता है। और कुछ घर मे न हो तो आपको तृण का आसन दे दे। आसन न हो, तो हाथ से बहार कर पृथिवी ही बता दे। जल दे। इतने से ही व कृत कृत्य हो जाते हैं। इतन से ही वे मनुष्य जीवन का फल प्राप्त कर लेते हैं। इसके विरुद्ध जिनके घर मे अटूट धन भरा है जो सर्व सम्पत्तियो से युक्त हैं। फिर भी जिन पर आपकी कृपा नही हुई, आपके पादपद्म की पुनीत पराग और पयके ससर्ग से पक न हुई तो वह घर तो शमशान के तुल्य, सर्प की बामी के तुल्य कबूतरो के खोतरो के तुल्य, तथा जुआरियो के आवास के तुल्य है।"

इस पर सनत्कुमारजा ने कहा—"राजन् ! बहुत शिष्टाचार हो गया अब कुछ काम की बातें करो।'

महाराज बोले—'नही भगवन् ! मैं शिष्टाचार से नही कह रहा हूँ। आपकी प्रशसा कोई कर ही क्या सकता है ? सहनशीलता धैर्य ज्ञान, वैराग्य आदि षट्सम्पत्ति जिन्हे मुमुक्षु पुरुष साधन करते करते चिरकाल के अनन्तर प्राप्त करत है, प

सद्गुण आप मे जन्म से ही स्वाभाविक हैं। आप तो ब्रह्माजी के आदि पुत्र हैं। माया मोह आपको स्पर्श भी नहीं कर सके है।"

यह सुनकर सनातन जी वाले—हाँ, ये सब बात तो हो गई। अब राजन्! कुशल क्षेम कहिये।

महाराज वोले—"भगवान्! इस कोलाहल-पूर्ण ससार मे कुशल कहाँ? कुशल तो आपके चरणो मे है। कर्मो के वशीभूत हुए हम नाना प्रकार के दुःख भोग रहे हैं। ऐसी अवस्था मे हमारी कुशल तो तभी हो सकती है जब आप अनुग्रह करें। रही आप से कुशल पूछने की बात सो भगवन्! आप सब तो कुशल स्वरूप ही हैं। आपको तो कभी स्वप्न मे भी अकुशल नहीं। अमृत के सागर से खारी पानी की बात क्या पूछना। आप तो साक्षात् भगवत् स्वरूप हैं। मैं तो यही पूछना चाहता हूँ कि हम जैसे इन्द्रिय परायणो का कल्याण कैसे हो? ससार मे फँसे हुए प्राणी किस सरल सुगम साधन के द्वारा श्रेय की प्राप्ति कर सकते है? हम जैसे अज्ञो के हित का कोई उपाय बतावें।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—' विदुरजी! महाराज पृथु के ऐसे प्रश्न को सुनकर उन चारो कुमारो मे से सनतकुमार कुछ हँसते हुए महाराज के प्रश्न का उत्तर देने को उद्यत हुए।

छप्पय

अब हे दीनदयाल! मोक्ष को मार्ग बताओ।
कस होवे कल्यान सरलता तें समझाओ॥
भटके भव मग माहिँ प्रभो! अवलम्बन देवें।
भवजल डूबत नाव आप नाविक बनि खेवें॥
तीना तापनि ते तपित कब ते जग महँ भ्रमि रहे।
दुखित देखि दरशन दये, भई शांति तव पद गहे॥

कीर्तनीयो सदा हरि

सचित्र

भागवत चरित

(सप्ताह)

रचयिता—श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी

श्रीमद्भागवत के १२ स्कन्धों को भागवत सप्ताह के क्रम से ७ भागों में बाँट कर पूरी कथा छप्पय छन्दों में वर्णन की है। श्रीमद्भागवत की भाँति इसके भी साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पारायण होते हैं। सैकड़ों भागवतचरित व्यास बाजे तबले पर इसकी कथा कहते हैं। लगभग हजार पृष्ठ की सचित्र कपड़े की सुदृढ़ जिल्द की पुस्तक की न्योछावर ६)५० मात्र है। थोड़े ही समय में इसके २३००० के ५ संस्करण छप चुके हैं। दो खंडों में हिन्दी टीका सहित भी छप रही है। प्रथमखंड प्रकाशित हो चुका है; उसकी न्योछावर ८) है। दूसरा खंड प्रेस में है।

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

१– संकीर्तन भवन, वशीवट, वृन्दावन (मथुरा)
२– संकीर्तन भवन, झूसी, (प्रयाग)
३– भागवत प्रेस, ८५२, मुट्ठीगंज, प्रयाग
४– संकीर्तन भवन, बसन्त गाँव, मोतीबाग नं० १ कैन्ट १० नई देहली
५– भागवती कथा प्रचार कार्यालय, १३ गोपाल घोस लैन मलकिया हावडा
६– सेठ सूरजरतन जी मेहता, ५।२ रामकृष्ण लैन, वाग बाजार, कलकत्ता–३
७– भागवती कथा प्रचारक सघ १६ ६६४८ देहली सराय रोहिल्ला नई देहली–५
८– सेठ जगत नारायण, भागवती कथा प्रचारक संघ, मऊ छीबो (जि० बाँदा)
६– परमानंद पाडेय भागवती कथा प्रचार कार्यालय, मीठापुर, पटना
१०– श्री अशोक मुनिजी, संकीर्तन भवन, लालपुर (जि० रामपुर)

नोट—हमारे यहाँ की प्रकाशित पुस्तकों की सूची कवर के अन्तिम पृष्ठ पर देखें।

मुद्रक—राजाराम शुक्ल, संकीर्तन प्रेस, वंशीवट, वृन्दावन